विशेष अध्ययन: छायावाद

एम. ए. , हिन्दी

Semester-IV, Paper- V

पाठ के लेखक

डॉ. सूर्य कुमारी. पी.
एम.ए., एम.फिल., पीएच.डी.
हिन्दी विभाग
हैदराबाद विश्वविद्यालय
हैदराबाद।

डॉ. एम. मंजुला
एम.ए., एम.फिल., पीएच.डी.
हिन्दी विभाग
रामकृष्ण हिन्दू हाई स्कूल
अमरावती, गुंटूर।

संपादक

डॉ. एम. मंजुला
हिन्दी विभाग
रामकृष्ण हिन्दू हाई स्कूल
अमरावती, गुंटूर।

निर्देशक

डॉ . नागराजु बट्टू
MBA., MHRM., LLM., M.Sc. (Psy).,MA (Soc)., M.Ed., M.Phil., Ph.D
दूरस्थ शिक्षा केंद्र, आचार्या नागार्जुना विश्वविद्यालय
नागार्जुना नगर – 522510
Phone No-0863-2346208, 0863-2346222
0863-2346259 (अध्ययन सामाग्री)
Website : www.anucde.info
E-mail : anucdedirector@gmail.com

एम. ए., हिन्दी

First Edition :2023

© Acharya Nagarjuna University

This book is exclusively prepared for the use of students of M.A. (Hindi) Centre for Distance Education, Acharya Nagarjuna University and this book is meant for limited circulation only.

Published by:

Dr. NAGARAJU BATTU,

Director

Centre for Distance Education

Acharya Nagarjuna University

Printed at:

FOREWORD

Since its establishment in 1976, Acharya Nagarjuna University has been forging ahead in the path of progress and dynamism, offering a variety of courses and research contributions. I am extremely happy that by gaining 'A' grade from the NAAC in the year 2016, Acharya Nagarjuna University is offering educational opportunities at the UG, PG levels apart from research degrees to students from over 443 affiliated colleges spread over the two districts of Guntur and Prakasham.

The University has also started the Centre for Distance Education in 2003-04 with the aim of taking higher education to the door step of all the sectors of the society. The centre will be a great help to those who cannot join in colleges, those who cannot afford the exorbitant fees as regular students, and even to housewives desirous of pursuing higher studies. Acharya Nagarjuna University has started offering B.A., and B. Com courses at the Degree level and M.A., M. Com, M.Sc., M.B.A., and L.L.M., courses at the PG level from the academic year 2003-2004onwards.

To facilitate easier understanding by students studying through the distance mode, these self-instruction materials have been prepared by eminent and experienced teachers. The lessons have been drafted with great care and expertise in the stipulated time by these teachers. Constructive ideas and scholarly suggestions are welcome from students and teachers involved respectively. Such ideas will be incorporated for the greater efficacy of this distance mode of education. For clarification of doubts and feedback, weekly classes and contact classes will be arranged at the UG and PG levels respectively.

It is my aim that students getting higher education through the Centre for Distance Education should improve their qualification, have better employment opportunities and in turn be part of country's progress. It is my fond desire that in the years to come, the Centre for Distance Education will go from strength to strength in the form of new courses and by cateringtolargernumberofpeople.MycongratulationstoalltheDirectors,AcademicCoordinators, EditorsandLesson-writersoftheCentre who have help edit the seen devours.

Prof. Raja SekharPatteti
Vice-Chancellor
Acharya Nagarjuna University

M.A (Hindi)

Semester-IV, Paper - V

405HN21: SPECIAL STUDY - CHAYAVAD

विशेष अध्ययन : छायावाद

Syllabus

पाठ्यांश

इकाई -1 : स्वच्छन्द और छायावाद-छायावाद में रहस्यानुभूति का स्वरूप, छायावादी कविता में स्वच्छन्द कल्पना-छायावदी कवियों के राष्ट्रीय गीत-छायावादी कवियों का सौन्दर्य-बोध छायावादी काव्य बिम्बविधान-छायावादी काव्यभाषा की विशेषताएँ-छायावादी प्रबन्धकल्पना की नवीनता।

इकाई -2 : प्रसाद का जीवन-दर्शन-समरसता और अनन्दवाद- सौन्दर्य-बोध-कामायनी की प्रतीक-पद्धति-कामायनी का महाकाव्यत्व।

इकाई-3 : निराला के काव्य में क्रांति चेतना-सरोज-स्मृति और शोक-गीत- "राम की शक्ति पूजा" की विशेषताएँ-कुकुरमत्ता का ऐतिहासिक महत्वमुक्तछंद ।

इकाई 4 : पंत के विम्ब - पन्त की काव्ययात्रा के विविध सोपान "पल्लव" की भूमिका प्रकृति चित्रण कल्पनाशीलता पन्त की काव्य भाषा पन्त की सौन्दर्य चेतना।

इकाई 5: महादेवी के काव्य में गीति तत्व रहस्यवाद वेदना का स्वरूप - महादेवी की काव्य-भाषा।

CONTENT

1.	छायावाद- पृष्ठभूमि	1.1-1.17
2.	छायावाद विकास-स्वरूप	2.1-2.16
3.	छायावाद - युग	3.1-3.15
4.	जयशंकर प्रसाद - कामायनी	4.1-4. 22
5.	कामायनी - दार्शनिक तत्व	5.1- 5.13
6.	कामायनी की प्रतीक - पद्धति – महाकाव्यत्व	6.1-6. 12
7.	निराला जीवन काव्य गत विशेषताएँ	7.1-7.14
8.	निराला - राम की शक्ति पूजा	8.1-8.14
9.	सुमित्रानंदन पंत	9.1- 9.13
10.	महादेवी वर्मा-पृष्ठभूमि	10.1-10.13
11.	महादेवी वर्मा काव्य-भाषा	11.1-11.16

1. छायावाद- पृष्ठभूमि

1.0. उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप

- छायावाद- पृष्ठभूमि का विस्तृत परिचय प्राप्त करेंगे ;
- छायावाद का परिचय प्राप्त करेंगे ;
- छायावाद और रहस्यवाद – भाव को समझेंगे ;
- छायावाद की मूल प्रवृत्तियों के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे ;
- छायावाद शिल्पगत विशेषताएँ को जान पायेंगे ; और
- छायावाद युग के रचनाकारों के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त कर पायेंगे।

रूप रेखा

1.1. प्रस्तावना

1.2. छायावाद- पृष्ठभूमि

1.2.1. द्विवेदीयुगीन काव्य और छायावाद

1.2.2. छायावादकालीन परिस्थितियाँ

1.2.3. छायावाद का अभिप्राय

1.3. छायावाद-सामान्य परिचय

1.4. विभिन्न विद्वानों द्वारा- छायावाद की परिभाषा

1.5. छायावाद और रहस्यवाद

1.6. छायावाद की मूल प्रवृत्तियाँ

1.7. शिल्पगत विशेषताएँ

1.8. छायावाद के प्रमुख रचनाकार

1.जयशंकर प्रसाद

2. सूर्यकान्त त्रिपाठी ‘निराला’

3.सुमित्रानंदन पंत

4.महादेवी वर्मा

1.9. सारांश

1.10. बोध प्रश्न

1.11. सहायक ग्रंथ

1.1. प्रस्तावना

आधुनिक हिन्दी काव्य-धारा के विकास में छायावाद का महत्वपूर्ण स्थान है। इस काव्य धारा ने छायावाद युग के चार प्रमुख आधार स्तंभ जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, सुमित्रनंदन पंत और महादेवी वर्मा जौसे महान रचनाकार हैं। छायावाद ने न केवल अंतर्वस्तु को समृद्ध किया है और उसे उत्कर्षता प्रदान की है। इस इकाई में हम आपको छायावादी कवियों के साहित्यिक अवदान का उल्लेख करेंगे। अंत में इस इकाई पढ़ने के बाद में आपको यह बात स्पष्ट होगा कि हिन्दी काव्य के विकास में छायावाद की क्या भूमिका है।

1.2. छायावाद- पृष्ठभूमि

छायावाद का आरंभ कब हुआ यह बताना असंभव है। कोई इसका आरंभ निराला की कविता 'जूही की कली' के प्रकाशन से मानता है, तो कोई पंत के काव्य-संग्रह से। 'जूही की कली' का प्रकाशन 1916 ई. में हुआ था और 'वीणा' 1918 में प्रकाशित पंत का पहला काव्य संग्रह है। मुकुटधर पांडेय की कविता 'कुररी के प्रति' से भी कई लोग छायावाद का आरंभ मानते हैं। प्रसाद और पंत की आरंभिक कविताएं जिस सत्य की ओर इंगित करती है वह यह है कि 20वीं शती के दूसरे दशक के उत्तरार्द्ध में हिंदी कविता में एक नयी प्रवृत्ति का उदय हो रहा था, जो पूर्व की काव्य प्रवृत्तियों से भिन्न थी। यह प्रवृत्ति उन नये रचनाकारों के माध्यम से सामने आ रही थी जिन्होंने अपना लेखन अभी आरंभ ही किया था। इसी नयी काव्य प्रवृत्ति का नाम छायावाद क्यों और कैसे पड़ा, यह पूर्ववर्ती काव्य-प्रवृत्तियों से किस रूप में भिन्न थी।

1.2.1. द्विवेदीयुगीन काव्य और छायावाद

वीरगाथा काव्य, भक्ति काव्य और शृंगार काव्य की मध्ययुगीन परंपरा से भिन्न आधुनिक युग में हिंदी काव्य में नवीन काव्य-प्रवृत्तियों का उदय हुआ। भारतेन्दु युग मध्ययुगीन काव्य-प्रवृत्तियों और आधुनिक काव्य-प्रवृत्तियों के बीच संघर्ष का युग था। एक ओर भक्तिपरक और श्रृंगारिक रचनाएँ लिखी जा रही थीं, तो दूसरी ओर राष्ट्रीय भावना, सामाजिक सुधार और नये जीवन-मूल्यों का जगह काव्य भी रचा जा रहा था। आधुनिक काल के आरंभ होने से पूर्व हिंदी में साहित्य ब्रजभाषा में लिखा जा रहा था, जबकि अब गद्य की भाषा खड़ी बोली थी और कविता अब भी ब्रज में लिखी जा रही थी। लेकिन भारतेन्दु युग में यह प्रश्न उठ खड़ा हुआ कि गद्य और पद्य की भाषा अलग-अलग क्यों हो। यह द्वंद्व बीसवीं शताब्दी में प्रवेश के साथ समाप्त हो गया। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' के माध्यम से यह दृढ़तापूर्वक स्थापित कर दिया कि गद्य और पद्य की भाषा एक ही होनी चाहिए और इसके लिए खड़ी बोली ही सर्वथा उपयुक्त है।

भारतेन्दु युग के साहित्य में जिन प्रवृत्तियों के अंकुर फूटे थे, द्विवेदी युग में उनका ही विकास हुआ, तथापि द्विवेदी युग की परिस्थितियाँ और समस्याएं वही नहीं थीं। द्विवेदी युग में राष्ट्रीय भावना पहले से अधिक प्रबल हुई। यह स्पष्ट रूप में स्वीकार किया गया कि रीतिवादी काव्य-परंपरा का पूर्ण अस्वीकार आवश्यक है। रूढ़िवाद के प्रति

विरोध की ही यह अभिव्यक्ति थी। इसका प्रतिफल द्विवेदी युग के साध्य में सामाजिक उत्थान की भावना के रूप में हुआ। वर्तमान की दीन-हीन दशा (गुलामी का एहसास), अतीत के प्रति गौरव भाव और भविष्य को बेहतर बनाने का संकल्प द्विवेदी युग की कविता का आधार बना।

परंतु इस युग के काव्य में स्वतंत्रता और मुक्ति की कोई स्पष्ट भावना नहीं उभर सकी। गुलामी का अनुभव तो हुआ परंतु मुक्ति की प्रबल चाह उसका स्थान न ले सकी। स्थूल यथार्थ तो कवि की नजरों में आया, लेकिन उसमें निहित सत्य को देखने की अंतर्दृष्टि विकसित न हो सकी। यही कारण है कि द्विवेदी युग के काव्य को इतिवृत्तात्मकता और उपदेशात्मकता का काव्य कहा गया। द्विवेदी युग में खड़ी बोली में काव्य रचा जाने लगा, लेकिन छंदयुक्त होने पर भी भाषा गद्यात्मक ही रही। काव्य के अनुकूल उसमें कोमलता, लयात्मकता और संवेदनात्मकता का समावेश न हो सका।

लेकिन दूसरे दशक में ही मुकुटधर पांडेय, श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी, मैथिलीशरण गुप्त, सियाराम शरण गुप्त आदि कवियों में स्वच्छंदतावादी प्रवृत्ति का उदय होने लगा था। ये कवि भाव और भाषा दोनों स्तरों पर द्विवेदी युग की इतिवृत्तात्मकता और गद्यात्मकता से मुक्त होने की कोशिश कर रहे थे। प्रकृति और मानव-जीवन को आत्मगत, आत्मीय और रूमानी दृष्टि से देखने की ललक कवियों में उत्पन्न हो रही थी। द्विवेदी युग की वस्तुवादी-नैतिकतावादी दृष्टि से यह दृष्टि भिन्न थी। इसी उदित होती नयी प्रवृत्ति, जिसे स्वच्छंदतावाद (रोमांटिसिज्म) कहा जाता है, ने छायावाद के लिए पृष्ठभूमि तैयार की।

1.2.2. छायावादकालीन परिस्थितियाँ

प्रथम युद्ध (1914-1918) की समाप्ति के समय राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्थितियाँ तेजी से बदल रही थीं। प्रथम विश्वयुद्ध ने साम्राज्यवाद के समूचे ढाँचे पर स्थायी और जबरदस्त प्रहार किया। सन् 1917 की रूसी क्रांति ने भी संपूर्ण विश्व पर अपना प्रभाव जमाया। विशेष रूप से उन देशों पर जो परतंत्र थे। भारत में भी इसी दौर में जन आंदोलनों का सूत्रपात हुआ। इससे पहले तक भारत में ब्रिटिश शासन के विरुद्ध असंतोष केवल चिट्ठियों, आवेदनों और लेखों से ही अभिव्यक्त हो रहा था, और वह भी केवल कुछ अधिक अधिकारों की ही माँग की जा रही थीं।

लेकिन सन्1916 में गांधीजी के भारत आगमन के बाद कांग्रेस का आंदोलन शहर में रहने वाले शिक्षित उच्च मध्यवर्ग से निकलकर गरीब किसानों और मजदूरों के बीच भी फैल गया। इसके साथ ही यह भावना भी प्रबल होने लगी कि केवल स्वतंत्रता और मुक्ति ही एकमात्र लक्ष्य हो सकता है। दासता से मुक्ति की यह भावना इतनी प्रबल हो रही थी कि एकमात्र लक्ष्य हो सकता है। दासता से मुक्ति की यह भावना इतनी प्रबल हो रही थी कि यह केवल राजनीति के क्षेत्र तक ही सीमित नहीं थी बल्कि प्राचीन रूढ़ियों, मान्यताओं और रीति-रिवाजों से मुक्ति की कामना भी उभर रही थी। जाति, धर्म, संप्रदाय आदि के भेदभाव अब लोगों को खलने लगे थे।

नये शिक्षित मध्यवर्ग को अब नये जीवन-मूल्यों और आदर्शों की जरूरत महसूस होने लगी। इसी चाह ने उसे यूरोप के पुनर्जागरण कालीन आदर्शों और विचारधाराओं को जानने समझने की ओर प्रेरित किया। पुनर्जागरण से प्रेरित यूरोप के स्वच्छंदतावादी साहित्यिक आंदोलन ने उसे सोच और संवेदना का नया धरातल दिया। वस्तुतः उस युग में भारत का बुद्धिजीवी जिन सामाजिक परिस्थितियों के बीच जी रहा था, जय वैसी ही परिस्थितियाँ सौ साल पहले के यूरोपीय समाज में भी थी। जैसी मुक्ति की इच्छा और छटपटाहट भारत का मध्यवर्ग इस समय कर रहा था, वैसी ही भावना तत्कालीन यूरोपीय समाज में मौजूद थी। इसलिए ये स्वाभाविक था कि नये कवि उनके काव्य से प्रेरणा लेते।

कीट्स, बॉयरन, वर्ड्सवर्थ, कालरिज, शैली आदि रोमांटिक कवियों के काव्य और उनके लेखन ने उन्हें सोचने-समझने का नया क्षितिज प्रदान किया।

1.2.3. छायावाद का अभिप्राय

प्रसाद, निराला, पंत प्रभृति कवियों की कविताएँ सन् 1915-16 के आसपास सामने आने लगी थी। इन नयी तरह की कविताओं ने लोगों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया। पत्र-पत्रिकाओं में इनकी चर्चा होने लगी। डॉ. नामवर सिंह के अनुसार सन् 1920 ई. तक इन कविताओं के लिए 'छायावाद' नाम रूढ़ हो गया। जबलपुर की पत्रिका 'श्रीशारदा' में मुकुटधर पांडेय के 'हिंदी में छायावाद' नाम से चार निबंधों की एक लेख-माला प्रकाशित हुई जिसमें पहली बार छायावाद के बारे में विधिवत विचार किया गया था। सन् 1921 में 'सरस्वती' पत्रिका में सुशील कुमार नामक किसी लेखक ने 'हिंदी में छायावाद' शीर्षक एक संवादात्मक निबंध लिखा। इन निबंधों से स्पष्ट है कि नयी तरह की कविताओं के लिए 'छायावाद' शब्द सन् 1920 तक स्वीकृत हो चुका था। 'छायावाद' नाम कैसे प्रचलित हुआ, इस संबंध में विद्वानों में मतभेद है। सुशाल कुमार के लेख से स्पष्ट है कि उनके लिए ये कविताएं टैगोर स्कूल की चित्रकला के समान 'अस्पष्ट' होने के कारण छायावादी कही जाने लगीं।

मुकुटधर पांडेय ने अपनी लेखमाला के दूसरे निबंध 'छायावाद क्या है?' में इस प्रश्न पर विचार किया है। उनके अनुसार "अंग्रेजी या किसी पाश्चात्य साहित्य अथवा बंग साहित्य की वर्तमान स्थिति की कुछ भी जानकारी रखने वाले तो सुनते ही समझ जाएंगे कि यह शब्द 'मिस्टिसिज्म के लिए आया है।" केवल चल पड़ने के जोर से ही स्वीकारणीय हो सका है, नहीं तो इस श्रेणी की कविता की प्रकृति को प्रकट करने में यह शब्द एकदम असमर्थ है। बहुत दिनों तक इस काव्य का उपहास किया गया है और बाद में भी इसे या तो चित्रभाषा-शैली या प्रतीक पद्धति के रूप में माना गया या फिर रहस्यवाद के अर्थ में। बहरहाल यह स्पष्ट है कि उस युग की नयी तरह की कविताओं के लिए छायावाद नाम सोच-विचार कर नहीं रखा गया, शायद उपहास उड़ाने के लिए यह नामकरण किया गया।

परंतु जब एक बार यह नाम प्रचलित हो गया तो इसे स्वीकार कर लिया गया। 'छायावाद' नाम स्वीकृत होने के बाद भी यह समस्या बनी रही कि इसका अभिप्राय क्या है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के अनुसार- "छायावाद से लोगों का क्या मतलब है कुछ समझ में नहीं आता। शायद उनका मतलब है कि किसी कविता के भावों की छाया यदि कहीं अन्यत्र जाकर पड़े तो उसे छायावादी कविता कहना चाहिए।"

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने छायावाद के दो अर्थ किये हैं-एक रहस्यवाद के अर्थ में और दूसरा काव्य शैली के अर्थ में। उन्हीं की शब्दों में- "छायावाद शब्द का प्रयोग दो अर्थों में समझना चाहिए। एक तो रहस्यवाद के अर्थ में, जहाँ उसका संबंध काव्य-वस्तु से होता है अर्थात् जहां कवि उस अनंत और अज्ञात प्रियतम को आलंबन बनाकर अत्यंत चित्रमयी भाषा में प्रेम की अनेक प्रकार से व्यंजना करता है।" 'छायावाद' शब्द का दूसरा प्रयोग काव्य शैली या पद्धति विशेष के व्यापक अर्थ में है। उनके अनुसार, छायावाद का पहला अर्थ लेकर तो हिंदी काव्य क्षेत्र में चलने वाली महादेवी वर्मा ही हैं। छायावाद की कविताओं के संदर्भ में ईसाई धर्म, पश्चिम के स्वच्छंदतावादी कवियों और रवींद्रनाथ की कविताओं की विशेष रूप में चर्चा हुई।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के बाद भी छायावाद की आध्यात्मिक परिभाषा होती रही। यह अवश्य हुआ कि छायावाद में निहित रहस्य भावना को उसका भावपक्ष मान लिया गया और शैलीगत विशेषताओं को उसका कला पक्ष। आचार्य नंददुलारे वाजपेयी यद्यपि छायावाद के आध्यात्मिक पक्ष को स्वीकारते हैं परंतु उनके अनुसार उसकी मुख्य

प्रेरणा धार्मिक न होकर मानवीय और सांस्कृतिक है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी छायावाद में 'मानवतावादी दृष्टि की प्रधानता' स्वीकार की है। लेकिन वे यह भी कहते हैं कि –"छायावादी कविता बाह्य ऐंद्रियबोध तथा चेतन मन की सीमाओं को पार कर अचेतन के रहस्य लोक में पहुंचती है और जाने-अनजाने उसका मर्मोद्घाटन करती है।" छायावाद को कई कवियों-आलोचकों ने स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह भी कहा है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि छायावाद के संदर्भ में स्वच्छंदतावाद और रहस्यवाद की चर्चा होती रही है। उसमें रहस्यभावना की प्रमुखता स्वीकार की गयी तो दूसरी ओर उसके मानवतावादी दृष्टिकोण को भी स्वीकार किया गया। उसके नवीन कला पद्धति की पहचान की गयी परंतु छायावाद के भावपक्ष और कला पक्ष के अंतः संबंधों की सुविचारित व्याख्या नहीं की गयी। छायावाद को तब तक सही ढंग से नहा समझा जा सकता था, जब तक उसे तत्कालीन स्थितियों के संदर्भ में नहीं देखा जाता। यह काम बाद में डॉ. रामविलास शर्मा, डॉ. नामवर सिंह, प्रभृति आलोचकों ने किया। इन्होंने छायावाद को राष्ट्रीय आंदोलन और पूंजीवाद के विकास के साथ जोड़ा।

पश्चिम के स्वच्छंदतावादी कवियों, टैगोर के काव्य और निराला आदि छायावादी कवियों के काव्य की समानता के कारण पर विचार करते हुए डॉ. रामविलास शर्मा ने कहा है कि "शैली, ठाकुर और निराला के युगों की परिस्थितियों में एक बात समान रूप से विद्यमान है और वह है पूँजीवाद का प्रारंभिक विकास।" छायावाद को राष्ट्रीय जागरण से जोड़ते ऐसे कह सकते है कि छायावाद उस राष्ट्रीय जागरण की काव्यात्मक अभिव्यक्ति है जो एक ओर पुरानी रूढ़ियों से मुक्ति चाहता था और दूसरी ओर विदेशी पराधीनता से। इस जागरण में जिस तरह क्रमशः विकास होता गया, इसकी काव्यात्मक अभिव्यक्ति भी विकसित होती गई और इसके फलस्वरूप 'छायावाद' संज्ञा का भी अर्थ-विस्तार होता गया।

1.3. छायावाद-सामान्य परिचय

द्विवेदी युग के पश्चात हिन्दी साहित्य में जो कविता धारा प्रवाहित हुई, वह छायावादी कविता के नाम से प्रसिद्ध हुई। छायावाद की कालावधि सन् 1918 से 1936 तक मानी गई है। वस्तुतः इस कालावधि में छायावाद की इतनी प्रमुख प्रवृत्ति रही है कि सभी कवि इससे प्रभावित हुए और इसके नाम पर ही इस युग को छायावादी युग कहा जाने लगा। छायावाद के स्वरूप को समझने के लिए उस पृष्ठभूमि को समझ लेना आवश्यक है, जिसने उसे जन्म दिया। साहित्य के क्षेत्र में प्रायः एक नियम देखा जाता है कि पूर्ववर्ती युग के अभावों को दूर करने के लिए परवर्ती युग का जन्म होता है।

छायावाद के मूल में भी यही नियम काम कर रहा था। इससे पूर्व द्विवेदी युग में हिन्दी कविता कोरी उपदेश मात्र बन गई थी। उसमें समाज सुधार की चर्चा व्यापक रूप से की जाती थी और कुछ आख्यानों का वर्णन किया जाता था। उपदेशात्मकता और नैतिकता की प्रधानता के कारण कविता में निरसता आ गई।

कवि का हृदय उस निरसता से ऊब गया और कविता में सरसता लाने के लिए वह छटपटा उठा। इसके लिए उसने प्रकृति को माध्यम बनाया प्रकृति के माध्यम से जब मानव-भावनाओं का चित्रण होने लगा, तभी छायावाद का जन्म हुआ और कविता इतिवृत्तात्मकता को छोड़कर कल्पना लोक में विचरण करने लगी।

1.4. विभिन्न विद्वानों द्वारा- छायावाद की परिभाषा

• आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

शुक्ल जी ने छायावाद को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि- "छायावाद का प्रयोग दो अर्थों में समझना चाहिए एक तो रहस्यवाद के अर्थ में जहाँ उसका संबंध काव्य-वस्तु से होता है अर्थात् जहाँ कवि उस अनंत और अज्ञात प्रियतम को आलम्बन बनाकर अत्यंत चित्रमयी भाषा में प्रेम की अनेक प्रकार से व्यंजना करता है। छायावाद शब्द का दूसरा प्रयोग काव्य शैली या पद्धति विशेष के व्यापक अर्थ में है। छायावाद एक शैली विशेष है, जो लाक्षणिक प्रयोगों, अप्रस्तुत विधानों और अमूर्त उपमानों को लेकर चलती है।" दूसरे अर्थ में उन्होंने छायावाद के चित्र-भाषा-शैली कहा है।

• महादेवी वर्मा

महादेवी वर्मा ने छायावाद का मूल सर्वात्मवाद दर्शन में माना है। उन्होंने लिखा है कि "छायावाद का कवि धर्म के अध्यात्म से अधिक दर्शन के ब्रह्म का ऋणी है, जो मूर्त और अमूर्त विश्व को मिलाकर पूर्णता पाता है।" अन्यत्र वे लिखती है कि छायावाद प्रकृति के बीच जीवन का उद्गीथ है।

• डॉ. रामकुमार वर्मा

डॉ. रामकुमार वर्मा ने छायावाद और रहस्यवाद में कोई अंतर नहीं माना है। छायावाद के विषय में उनके शब्द है- "आत्मा और परमात्मा का गुप्त वाग्विलास रहस्यवाद है और वही छायावाद है।" एक अन्य स्थल पर वे लिखते हैं- "छायावाद या रहस्यवाद जीवात्मा की उस अंतर्निहित प्रवृत्ति का प्रकाशन है जिसमें वह दिव्य और अलौकिक सत्ता से अपना शांत और निश्चल संबंध जोड़ना चाहती है और यह संबंध इतना बढ़ जाता है कि दोनों में कुछ अंतर ही नहीं रह जाता है। परमात्मा की छाया आत्मा पर पड़ने लगती है और आत्मा की छाया परमात्मा पर। यही छायावाद है।"

• आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी

आचार्य नंददुलारे वाजपेयी शुक्ल जी के बाद छायावाद की व्याख्या करने वाले पहले महत्त्वपूर्ण विद्वान हैं, जिन्होंने बेहद सूक्ष्म व सुचिंतित तर्कों के माध्यम से छायावाद की सकारात्मक व्याख्या की। वाजपेयी जी के अनुसार- "मानव अथवा प्रकृति के सूक्ष्म किंतु व्यक्त सौंदर्य में आध्यात्मिक छाया का भाव मेरे विचार से छायावाद की एक सर्वमान्य व्याख्या हो सकती है। छायावाद की व्यक्तिगत विशेषता दो रूपों में दीख पड़ती है एक सूक्ष्म और काल्पनिक अनुभूति के प्रकाश में और दूसरी लाक्षणिक और प्रतिकात्मक शब्दों के प्रयोग में और इस आधार पर तो यह कहा ही जा सकता है कि छायावाद आधुनिक हिन्दी कविता की वह शैली है जिसमें सूक्ष्म और काल्पनिक सहानुभूति को लाक्षणिक एवं प्रतीकात्मक ढंग पर प्रकाशित करते हैं।"

• आचार्य शांतिप्रिय द्विवेदी

आचार्य शुक्ल जी की व्याख्या के विरुद्ध पहली महत्त्वपूर्ण व्याख्या आचार्य शांतिप्रिय द्विवेदी ने की और दावा किया कि छायावादी काव्य गांधीवाद का साहित्यिक संस्करण है। द्विवेदी जी का तर्क है कि छायावादी काव्य गाँधीवाद की स्थूल नहीं, सूक्ष्म अभिव्यक्ति है, इसलिए इसमें गांधीवादी आंदोलन की घटनाएँ नहीं, मूल्य उपस्थित है।

उनके तर्क के अनुसार "गाँधी आध्यात्मवादी दार्शनिक थे और मानते थे कि सम्पूर्ण आर्थिक, राजनीतिक विकास का लक्ष्य आध्यात्मिक तथा आत्मिक विकास है। छायावाद की आध्यात्मिकता भी इसी संदर्भ में है। यह आध्यात्मिक लौकिक चिंताओं के विरुद्ध नहीं बल्कि उसका चरम उद्देश्य है। इस तर्क के बावजूद द्विवेदी जी का मत पूर्णतः उचित नहीं है कि छायावाद गांधीवाद का साहित्यिक संस्करण है क्योंकि छायावाद के रहस्यवाद और शक्ति काव्य जैसे प्रसंगों को गांधीवाद से सीधे जोड़ना संभव नहीं है। यह मत इस अर्थ में महत्त्वपूर्ण है कि इसने पहली बार छायावाद की सकारात्मक व्याख्या की।

- **डॉ. नगेन्द्र**

डॉ. नगेन्द्र छायावाद को 'स्थूल के प्रति विद्रोह' मानते हैं। इस मत में निहित तर्क को दो आधारों पर समझा जा सकता है। संवेदना तथा शिल्प। संवेदना के स्तर पर स्थूल का तात्पर्य है- द्विवेदी युगीन सामाजिकता। द्विवेदी युग में समाज के स्तर पर नवजागरण की चेतना व्यापक रूप से दिखाई दे रही थी किंतु व्यक्ति की वैयक्तिकता का हनन हो रहा था। छायावाद में नवजागरण का अगला तथा सूक्ष्मतम रूप व्यक्त होता है तथा नवजागरण की चेतना व्यक्ति और उसके भावों को मूल इकाई के स्तर पर धारण कर लेती है।

शिल्प के स्तर पर भी छायावादी काव्य स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह है। द्विवेदी युग में शिल्प की जो अभिधात्मक एवं इतिवृत्तात्मक संरचना विकसित हुई थी, वह काफी स्थूल थी। छायावादी कविता अपनी अनुभूतिपरकता एवं तन्मयता के कारण ऐसे शिल्प को धारण नहीं करती। वह बाहरी जगत को स्थान पर व्यक्ति के भितरी जगत को कविता का विषय बनाती है। इसी दृष्टि से इस शिल्प को द्विवेदी युग के अभिधात्मक शिल्प की तुलना में सूक्ष्म कहा जाता है।

डॉ. नगेन्द्र यह भी स्वीकार करते हैं कि "छायावाद एक विशेष प्रकार की भाव पद्धति है। जीवन के प्रति एक विशेष प्रकार का भावात्मक दृष्टिकोण है। उन्होंने इसकी मूल प्रवृत्ति के विषय में लिखा है कि वास्तव में अंतर्मुखी दृष्टि डालते हुए, उसको वायवी अथवा अतीन्द्रीय रूप देने की प्रवृत्ति ही मूल वृत्ति है।" उनके विचार से, युग की उबुद्ध चेतना ने बाह्य अभिव्यक्ति से निराश होकर जो आत्मबद्ध अंतर्मुखी साधना आरंभ की वह काव्य में छायावाद के रूप में अभिव्यक्त हुई। वे छायावाद को अतृप्त वासना और मानसिक कुंठाओं का परिणाम स्वीकार करते हैं।

उपर्युक्त परिभाषाओं से छायावाद की अनेक परिभाषाएँ स्पष्ट होती है, किन्तु एक सर्वसम्मत एक मत नहीं बन पाया। उपर्युक्त लिखी गयी परिभाषाओं से यह भी व्यक्त होता है कि छायावाद स्वछंदतावाद (रोमांटिसिज्म) के काफी समीप स्वछंदतावाद और छायावाद : छायावाद के आगमन और इसकी प्रवृत्तियों के कई विद्वानों ने इसे पश्चिम में विकसित रोमेंटिसिज़्म से प्रभावित माना तथा कुछ ने यह माना कि छायावादी प्रवृत्ति का विकास भारतीय काव्य परंपरा के विकास के विभिन्न चरणों में से एक है। प्रमुख रूप से छायावादी काव्य को यदि ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखा जाए तो कुछ ऐसे तत्त्व मिलते हैं जिसे छायावाद के उदय का कारण माना जा सकता है। खासतौर पर रोमेंटिसिज़्म के संदर्भ में देखा जाए तो यह एक तरह की पश्चिमी अवधारणा है।

आचार्य शुक्ल ने इसका हिन्दी अनुवाद स्वछंदतावाद के नाम से किया। कालांतर में जब छायावादी कविताओं की तुलना अंग्रेजी रोमैंटिक कवियों के साथ की गयी है तो छायावादी काव्य को पश्चिम के रोमैंटिसिज़्म के साथ जोड़कर देखा गया इस संदर्भ में नामवर सिंह जी कहते हैं कि: 1930 के आसपास हिन्दी छायावादी कविताओं

को आलोचना के सिलसिले में अंग्रेजी के रोमैंटिक कवि 'वर्डसवर्थ', 'शेली', 'कीट्स' आदि का नाम लिया जाने लगा और इस तरह छायावाद के साथ रोमैंटिसिज़्म का नाम जुड़ गया। आचार्य शुक्ल ने रोमैटिसिज़्म के लिए हिन्दी में स्वछंदतावाद शब्द चलाया और वह चल भी पड़ा, किंतु उनके स्वछंदतावाद की परिभाषा इतनी सीमित थी कि वह संपूर्ण छायावादी कविताओं को घेर ना सकी, सीमा में केवल श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी, गुरुभक्त सिंह, सियारामशरण गुप्त, सुभद्राकुमारी चौहान, उदयशंकर भट्ट और संभवतः नवीन और माखनलाल चतुर्वेदी ही आ सके। उनके अनुसार "प्रकृति प्रांगण के चर-अचर प्राणियों का सम्पूर्ण परिचय उनकी गतिविधि पर आत्मीयता व्यंजक दृष्टिपात, सुख-दुख में उनके साहचर्य की भावना से सब स्वाभाविक स्वछंदता के पदचिन्ह हैं।" इस प्रकार शुक्ल जी तो स्वछंदतावाद में छायावाद के रहस्यवाद के लिए कोई जगह नहीं थी। फलतः स्वछंदतावाद अंग्रेजी के रोमैंटिसिज़्म का हिन्दी अनुवाद होते हुए भी छायावादी कविता का केवल एक अंग बनकर रह गया और धीरे-धीरे छायावाद संपूर्ण रोमैंटिसिज्म का वाचक बन गया।

इस तरह छायावाद एक ऐसी प्रवृत्ति है जिसने रोमैंटिसिज़्म को अपने में समाहित कर लिया। यह एक ऐसी प्रवृत्ति है जो हिन्दी साहित्य के विकास में द्विवेदी युग तथा प्रगतिवाद के बीच एक कड़ी के रूप में विकसित हुयी।

1.5. छायावाद और रहस्यवाद

छायावादी रहस्यवाद की विवेचना करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के इस कथन को कि छायावाद को रहस्यवाद के अर्थ में लेना चाहिए, इस ढंग से देखा जाना चाहिए कि छायावाद पर किस प्रकार रहस्यवादी प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। शुक्ल जी ने एक ओर तो छायावाद को मध्ययुगीन रहस्य-भावना का नया संस्करण कहा : "कबीरदास किस प्रकार हमारे यहाँ जानवाद और सूफीवाद के भावात्मक रहस्यवाद को लेकर चले यह हम पहले दिखा आए हैं। उसी भावात्मक रहस्य-परंपरा का यह नूतन भाव-भंगी और लाक्षणिकता के साथ आविर्भाव है। दूसरी ओर उन्होंने छायावाद को वेदांत के प्रतिबिम्बवाद का नया संस्करण माना: "जो 'छायावाद' नाम से प्रचलित है वह वेदांत के पुराने 'प्रतिबिम्बवाद' का है।" वस्तुतः यह प्रतिबिम्बवाद सूफियों के यहाँ से होता हुआ यूरोप में गया जहाँ कुछ दिनों पिछे 'प्रतिकवाद' से संश्लिष्ट होकर धीरे-धीरे बंग साहित्य के एक कोने में आ निकला और नवीनता की धारणा उत्पन्न करने के लिए 'छायावाद' कहा जाने लगा। इस तरह यह शब्द काव्य में "रहस्यवाद' के लिए गृहित दार्शनिक सिद्धांत का द्योतक शब्द है।

आचार्य शुक्ल की स्थापनाओं की उपेक्षा करना समकालीन कवियों के लिए संभव नहीं था। शुक्ल जी ने 'छायावाद' शब्द का संबंध वेदांत के प्रतिबिम्बवाद से जोड़कर उसे दार्शनिकता प्रदान की पर साथ ही रहस्योन्मुखता को इस काव्यधारा की निजी विशेषता न माकर बाहरी प्रभाव कहा। उन्होंने छायावाद की पहली सुसम्बद्ध व्याख्या करते हुए छायावाद शब्द का प्रयोग दो अर्थों में माना। उसका एक अर्थ उन्होंने रहस्यवाद लिया जिसका संबंध "काव्य-वस्तु से होता है अर्थात् जहाँ कवि उस अनंत और अज्ञात प्रियतम को आलम्बन बनाकर अत्यंत अत्यंत चित्रमयी भाषा में प्रेम की अनेक प्रकार से व्यंजना करता है। उनके अनुसार छायावादी कविता मन बुद्धि से परे एक अज्ञात प्रदेश में ले जाता है।

छायावाद में रहस्यवादी तत्त्वों की पुनर्व्याख्या का यह क्रम जयशंकर प्रसाद के चिंतन में आगे बढ़ा। उन्होंने भी छायावाद की विचार-पद्धति को रहस्यवाद ही माना पर उसकी व्याख्या शक्ति के रहस्यवाद के रूप में कर दी। शुक्ल

जी जिसे मध्ययुगीन संतों के साम्प्रदायिक रहस्यवाद का आधुनिक संस्करण मानते थे, प्रसाद ने उसे 'सौंदर्य लहरी' में वर्णित शक्ति के रहस्यावाद से जोड़ दिया।

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी छायावाद में रहस्यवाद का प्रयोग व्यापक अर्थ में स्वीकार करते थे। उन्होंने स्पष्ट किया कि अंग्रेजी की रोमैंटिक कविता में रहस्यवादी प्रवृत्ति को अत्यंत उदार अर्थ और व्यापक रूप में देखा जाता था। उन कवियों के लिए सत्य और सौंदर्य अभिन्न हो गए थे। इसलिए वहाँ प्रकृति-प्रेम, उसमें आध्यात्मिक सत्ता के भाव आदि को रहस्य-वृत्ति के अंतर्गत ही मान लिया गया था। यह रहस्यवृत्ति साम्प्रदायिक या धार्मिक नहीं थी। वाजपेयी जी का मानना था कि "छायावाद किसी साम्प्रदायिकता या साधना परिपाटी का अनुगमन नहीं करता।" छायावाद की आध्यात्मिकता की विशिष्टता यही है कि वह न किन्हीं सीमा निर्देशों से बँधती है और नहीं भावना के क्षेत्र में किसी प्रकार का प्रतिबंध स्वीकार करती है।

शुक्ल जी ने छायावाद में साम्प्रदायिक रहस्यवाद की बात कहकर बाद के आलोचकों को इस शब्द-मात्र के प्रति इतना आशंकित कर दिया कि वे छायावाद में प्राकृतिक रहस्य-भावना को स्वीकार करके भी रहस्यवाद से उसका भेद निरूपित करते रहे। रहस्यानुभूति आध्यात्मिक होते हुए भी लौकिक हो सकती है। छायावाद रहस्योन्मुख होते हुए भी इसी धरातल की आध्यात्मिक अनुभूति है, यह न कहकर, छायावाद और रहस्यवाद के बीच भेद करके चलने की प्रवृत्ति ही अधिक लोकप्रिय हुई। यह सही है कि छायावाद बहुमुखी काव्य-सृष्टि है और उसका केन्द्रीय भाव रहस्यवाद नहीं है। परंतु रहस्योन्मुखी वृत्ति छायावाद की विशेषताओं में से एक महत्त्वपूर्ण प्रवृत्ति है, इससे इंकार नहीं किया जा सकता।

समग्रतः छायावाद व रहस्यवाद के सम्बन्धों के विषयों में यही कहा जा सकता है कि छायावादी कविता का एक अंश ही रहस्यवादी है, न कि संपूर्ण छायावाद। जो अंश रहस्यवादी है, उसका एक पक्ष अलौकिक रहस्यवाद का है किन्तु वह मध्ययुगीन रहस्यवाद की अन्य विशेषताओं को धारण नहीं करता। जो शेष अंश है, वह अपनी विषयवस्तु व चेतना दोनों स्तरों पर आधुनिक है और उसका जन्म या तो अतिशय जिज्ञासा से हुआ है या सामाजिक दबावों से।

1.6. छायावाद की मूल प्रवृत्तियाँ

छायावादी काव्य का विश्लेषण करने पर हम उसमें निम्नलिखित प्रवृत्तियाँ पाते हैं :

(क) वैयक्तिकता

छायावादी काव्य में वैयक्तिकता का प्राधान्य है। कविता चिंतन और अनुभूति की परिधि में सीमित होने के कारण अंतर्मुखी हो गई, कवि के अहम् भाव में निबद्ध हो गई। कवियों ने काव्य में अपने सुख-दुःख, उतार-चढ़ाव, आशा-निराशा की अभिव्यक्ति खुल कर की। उसने समग्र वस्तुजगत को अपनी भावनाओं में रंग कर देखा। जयशंकर प्रसाद का 'आंसू तथा सुमित्रानंदन पंत के उच्छावास व्यक्तिवादी अभिव्यक्ति के सुंदर निदर्शन हैं। इसके व्यक्ति के स्व में सर्व सन्निहित है। डॉ. शिवदान सिंह चौहान इस संबंध में लिखते हैं कि "कवि का मैं प्रत्येक प्रबुद्ध भारतवासी का मैं था, इस कारण कवि ने विषयगत दृष्टि से अपनी सूक्ष्मातिसूक्ष्म अनुभूतियों को व्यक्त करने के लिए जो लाक्षणिक भाषा और अप्रस्तुत रचना शैली अपनाई, उसके संकेत और प्रतीक हर व्यक्ति के लिए सहज प्रेषणीय बन सके।" छायावादी

कवियों की भावनाएँ यदि उनके विशिष्ट वैयक्तिक दुःखों के रोने-धोने तक ही सीमित रहती, उनके भाव यदि केवल आत्मकेंद्रित ही होते तो उनमें इतनी व्यापक प्रेषणीयता कदापि ना आ पाती। निराला ने लिखा है-

मैंने मैं शैली अपनाई,
देखा एक दुःखी
निज भाई
दुख की छाया पड़ी हृदय में
झट उमड़ वेदना आई।

इससे स्पष्ट है कि व्यक्तिगत सुख-दुःख की अपेक्षा अपने से अन्य के सुख-दुःख की अनुभूति ने ही नए कवियों के भाव-प्रवण और कल्पनाशील हृदयों को स्वछंतावाद की ओर प्रवृत्त किया।

(ख) विषयिनिष्ठता

वैयक्तिकता के कारण छायावादी काव्य में विषय के स्थान पर विषयी की प्रधानता हुई। छायावाद को जब द्विवेदी युगीन कविता की इतिवृत्तात्मकता की प्रतिक्रिया कहा गया तो उसका अर्थ था कि उसमें वस्तुनिष्ठता के स्थान पर व्यक्तिनिष्ठता और विषयनिष्ठता की जगह विषयिनिष्ठता का आग्रह था। छायावाद को स्थूल के विरुद्ध सूक्ष्म का विद्रोह कहने का भी एक अभिप्राय यही था। इसी विषयिनिष्ठता के कारण छायावाद की 'छाया' के विरोध में 'प्रकाशवाद' के नाम से एक विनोदपूर्ण वाद भी प्रस्तुत किया गया। छायावाद की विषयिनिष्ठता को लक्ष्य करके अज्ञेय ने लिखा था "विषयीप्रधान दृष्टि ही छायावादी काव्य की प्राणशक्ति है। इस विषयिनिष्ठता का प्रतिफल स्पष्ट रूप से छायावादके प्रकृति-चित्रण में देखा जा सकता है, जिसमें जड़ प्रकृति पर चेतना के आरोप की ही नहीं, बल्कि मानवीकरण की व्यापक प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है।

(ग) अनुभूति की प्रतिष्ठा

छायावादी कवियों का दावा है कि कविता विचारों या तथ्यों से नहीं वरन् अनुभूति से होती है। विषयी की प्रधानता के कारण स्वभावतः छायावाद में अनुभूति के महत्व की प्रतिष्ठा हुई। प्रसाद जी ने तो कविता की परिभाषा ही 'आत्मा की संकल्पनात्मक अनुभूति' के रूप में की और छायावाद की अन्य विशेषताओं के बीच 'स्वानुभूति की विकृति' पर विशेष बल दिया।

हिन्दी कविता को छायावाद की वह महत्त्वपूर्ण देन है कि उसने कविता में कोरे वस्तु वर्णन के स्थान पर अनुभूति का महत्व प्रतिष्ठित किया। यह बात अलग है कि इस प्रयास में छायावाद कभी-कभी भावोच्छवास और कोरी भावुकता की रसवर्जिनी सीमा तक चला गया। बाद में छायावाद के पतन के अनेक कारणों में भावों की यह अधिव्यक्ति भी एक कारण बनी।

(घ) वेदना की निवृत्ति

छायावादी कविता में वेदना की अभिव्यक्ति करुणा और निराशा के रूप में हुई है। हर्ष-शोक, हास-रुदन, जन्म-मरण, विरह-मिलन आदि में उत्पन्न विषमताओं से घिरे हुए मानव-जीवन को देखकर कवि हृदय में वेदना और करुणा उमड़ पड़ती है। जीवन में मानव-मन की आकांक्षाओं और अभिलाषाओं की असफलता पर कवि-हृदय क्रन्दन

करने लगता है। छायावादी कवि सौंदर्य प्रेमी होता है, किंतु सौंदर्य की क्षणभंगुरता को देख उसका हृदय आकुल हो उठता है। हृदयगत भावों की अभिव्यक्ति की अपूर्णता, अभिलाषाओं की विफलता, सौंदर्य की नश्वरता, प्रेयसी की निष्ठुरता, मानवीय दुर्बलताओं के प्रति संवेदनशीलता और प्रकृति की रहस्यमयता आदि अनेक कारणों से छायावादी कवि के काव्य में वेदना और करुणा की अधिकता पाई जाती है। प्रसाद ने 'आसू' में वेदना को साकार रूप दिया है। पंत तो काव्य की उत्पत्ति ही वेदना को मानते हैं-

वियोगी होगा पहला कवि,
आह से निकला होगा गान।
उमड़ कर आँखों से चुपचाप,
वही होगी कविता अनजान ।।

संसार में दुःख और वेदना को देखकर छायावादी कवि पलायवादी भी हुआ। वह इस संसार में ऊब चुका है और कहीं और चला जाना चाहता है।

इसका मुख्य कारण यह है कि वह इस संसार में दुःख ही दुःख देखता है, यहाँ सर्वत्र सुख का अभाव दृष्टिगोचर होता है। इस विषय में कवि पंत की अभिव्यक्ति द्रष्टव्य है-

यहाँ सुख सरसों, शोक सुमेरु
अरे जग है जग का कंकाल
वृधा रे, यह अरण्य चीत्कार
शांति, सुख है उस पार

(ङ) प्रेमानुभूति

छायावाद को आधुनिक काल की सबसे सशक्त प्रेम कविता कहा जाता है। आचार्य शुक्ल ने आरंभ में ही इस प्रवृत्ति को लक्ष्य करते हुए छायावादी कविता को अधिकतर प्रेम गीतात्मक' कहा था। यह सही है कि छायावाद में जीवन के अन्य क्रियाव्यापारों एवं समस्याओं का समावेश करते हुए भी प्रेम को सर्वोपरि स्थान दिया गया है। छायावाद में प्रेमानुभूति की अधिकता से कहीं अधिक ध्यान आकर्षित करने वाली विशेषता प्रेम के प्रति इन कवियों का दृष्टिकोण है।

छायावाद के आलोचकों में इस बारे में व्यापक सहमति है कि छायावाद का प्रेम प्रायः अशरीरी है और उसमें रीतिकालीन भोगवादी दृष्टि के स्थान पर मानसिक रागात्मकता की प्रतिष्ठा की गई है। रीतिकालीन शृंगारिकता के विरुद्ध प्रतिक्रिया तो द्विवेदीयुगीन काव्य में भी दिखाई पड़ी थी, परंतु अपने नैतिक-शुद्धवादी आग्रहों के कारण जहाँ द्विवेदी युग का काव्य शृंगार के लगभग बहिष्कार की सीमा का स्पर्श करने लगा था, वहाँ छायावाद ने वैसा निषेधपरक कट्टर दृष्टिकोण नहीं अपनाया। शुद्धतावाद के स्थान पर छायावाद ने आदर्शवाद का रास्ता अपनाया और प्रेम का उन्नयन करने का प्रयास किया।

छायावाद की कविता प्रेम की अनुभूति को नए रूप-रंगों में प्रस्तुत करने के कारण तो ध्यान आकर्षित करती ही है, इससे अधिक इस बात के कारण महत्त्वपूर्ण है कि उसमें प्रेम एक गंभीर जीवन-दर्शन के रूप में प्रकट हुआ।

(च) सौंदर्यबोध

सौंदर्य की अभिव्यक्ति कविता की सामान्य विशेषता मानी जाती है पर छायावादी कविता का सौंदर्यबोध अपनी सामान्यता में नहीं, विशिष्टता में ध्यान आकर्षित करता है । छायावादी कवियों की दृष्टि निश्चित रूप से सौंदर्यवादी थी, इसमें संदेह नहीं। इतना ही नहीं छायावादी कवियों की दृष्टि अखिल विश्व से सौंदर्य चयन की ओर थी, बल्कि वे जीवन को भी सुंदर बनाने के अभिलाषी थे। छायावाद के विषय में, कलावाद के जिस प्रभाव की चर्चा प्रायः की गई है, वह और किसी रूप में हो न हो, सौंदर्यवाद के रूप में अवश्य प्रतिफलित हुआ है। छायावादी कवि क्रमशः प्रकृति-सौंदर्य से चलकर मानव-सौंदर्य तक पहुँचते हैं। पंत के शब्दों में-

सुंदर है विहग सुमन सुंदर,
मानव तुम सबसे सुंदरतम।

छायावाद की सौंदर्य दृष्टि में जहाँ एक ओर स्वप्न-लोक का कुहासा है वहाँ दूसरी ओर चेतना की उज्ज्वलता। सौंदर्य उनके यहाँ एक प्रकार के रहस्य से मंडित है। इन कवियों ने सौंदर्य को उदारता, भव्यता, दिव्यता आदि गुणों से विभूषित करके उसे काव्य में एक नए मूल के रूप में प्रतिष्ठित किया।

(छ) प्रकृति–चित्रण

हिन्दी काव्य-परंपरा में प्रकृति की भूमिका आरंभ से ही रही है, किंतु उसे जो स्थान छायावाद में मिला, वह अभूतपूर्व है। छायावादी कवि का मन प्रकृति-चित्रण में खुब रमा और प्रकृति के सौंदर्य और प्रेम की व्यंजना छायावादी कविता की एक प्रमुख विशेषता रही। छायावादी कवियों ने प्रकृति को काव्य में सजीव बना दिया। प्रकृति सौंदर्य और प्रेम की व्यंजना के कारण ही डॉ. देवराज ने छायावादी काव्य को 'प्रकृति-काव्य' कहा है। छायावादी काव्य में प्रकृति सौंदर्य के अनेक चित्रण मिलते हैं: जैसे-

(1) आलम्बन रूप में प्रकृति-चित्रण,

(2) उद्दीपन रूप में प्रकृति-चित्रण,

(3) प्रकृति का मानवीकरण,

(4) नारी रूप में प्रकृति का वर्णन,

(5) आलंकारिक चित्रण,

(6) प्रकृति का वातावरण और पृष्ठभूमि के रूप में चित्रण,

(7) रहस्यात्मक अभिव्यक्ति के साधन के रूप में चित्रण।

प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी आदि छायावाद के सभी प्रमुख कवियों ने प्रकृति का नारी रूप में चित्रण किया और सौंदर्य व प्रेम की अभिव्यक्ति की पंत की कविता से एक उदाहरण-

बांसों का झुरमुट
संध्या का झुटपुट

हैं चहक रहीं चिड़ियां
टीवी टी टुट् टुट्।

अधिकांश छायावादी कवियों ने प्रकृति के कोमल रूप का चित्रण किया है, परंतु कहीं-कहीं उसके उग्र रूप का चित्रण भी हुआ है।

(ज) राष्ट्रीय चेतना, लोकमंगल और मानव करुणा

छायावादी कवियों पर बहुत दिनों तक यह आरोप लगाया जाता रहा कि जिस समय देश, औपनिवेशिक शक्तियों के विरुद्ध अपनी स्वाधीनता के संग्राम में संलग्न था, ये कवि राष्ट्रीय प्रश्नों से उदासीन और विरत होकर क्षितिज के पार ताक-झाँक करते रहे। यह वस्तुतः छायावादी काव्य को एकांगी दृष्टि से देखने का परिणाम है, वरना इन कवियों ने ओजस्वी स्वर में जागरण-गीत भी कम नहीं लिखे। प्रसाद जी की 'हिमालय के आंगन में उसे, प्रथम किरणों का दे उपहार' और 'हिमाद्रि तुंग शृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती' जैसे गीत, निराला की 'भारति जय विजय करे' और 'महाराजा शिवाजी के नाम पत्र' जैसी रचनाएँ इसका प्रमाण हैं।

छायावादी काव्य की अभिव्यक्ति व्यक्ति स्वातंत्र्य से आगे बढ़कर राष्ट्रीय स्वतंत्रता की आकांक्षा के रूप में होती है, यह स्वाभाविक था। किंतु छायावाद की राष्ट्रीय चेतना केवल राष्ट्रगीतों तक ही सीमित नहीं रही बल्कि अपनी सूक्ष्म और सांकेतिक प्रकृति के अनुरूप अन्य कविताओं में भी व्यक्त होती रही। उदाहरण के लिए निराला के 'तुलसीदास' में देश को पराधीनता से मुक्त कराने का संकल्प है और 'राम की शक्तिपूजा' के पौराणिक प्रतीक भी देश के उद्धार के लिए नैतिक शक्ति की साधना का संदेश देते हैं।

छायावाद के कवियों ने स्वातंत्र्य-भावना समाज में व्याप्त विषमताओं के विरुद्ध लोक-मंगल और मानव-करुणा के रूप में भी व्यक्त हुई है। यह भावना सामान्यतः सभी छायावादी कवियों में न्यूनाधिक रूप में मिलती है किंतु इसकी सबसे अधिक मुखर अभिव्यक्ति निराला के काव्य में हुई है। छायावादी काव्य में, मानव-करुणा और लोक-मंगल से प्रेरित सामाजिक-चेतना भी परिलक्षित होती है। यह कविता जीवन-विमुख नहीं जीवनोन्मुखी कविता है।

1.7. शिल्पगत विशेषताएँ

(अ) काव्य रूप

छायावादी कविता भावना प्रधान है, इसलिए प्रकृति में प्रगीतात्मक है। छायावाद में प्रगितों की रचना हुई जिनमें निराला के प्रगीत अग्रणी है। महादेवी ने गीत लिखे। निराला, पंत व प्रसाद ने लम्बी कविताएँ भी लिखीं। लम्बी कविताओं में अन्तर्वस्तु प्रबन्धात्मक एवं विस्तृत होती है पर बाहरी विधान प्रबन्ध के नियम के अनुकूल नहीं होता। कामायनी इस समय का एकमात्र महाकाव्य है।

(आ) भाषा

छायावाद के सम्मुख पहला प्रश्न अपने काव्य के अनुकूल भाषा का नई संवेदना नए मुहावरे का था। इस समस्या का उसने धैर्य और साहस के साथ सामना किया। द्विवेदी युग में खड़ी बोली काव्य-भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो चुकी थी परंतु कर्कश कही जाने वाली खड़ी बोली में कोमल भावों को प्रस्तुत करने का कार्य छायावाद में हुआ। जो शब्द काव्य में पहले कभी साथ-साथ नहीं देखे गए थे वे छायावाद में पहली बार नियोजित हुए और इस प्रकार

नियोजित हुए कि उनसे एक नया अर्थ ध्वनित होने लगा। छायावादी कवियों ने नए-नए शब्दों की रचना भी कि जैसे- स्वर्णिम, अरुणिम, स्वप्निल आदि।

(इ) बिम्ब

छायावाद ने भाषा की अभिव्यंजना-क्षमता बढ़ाने के लिए बिम्ब-विधान का भी आश्रय लिया जिसे शुक्ल जी ने 'लाक्षणिक मूर्तिमत्ता' तथा पंत जी ने 'चित्रभाषा' कहा है। बिम्ब रचना में छायावादी कवियों का सबसे बड़ा साधन सृष्टि विधायनी कल्पना थी। इसलिए उनके बिम्बों में मौलिकता और ताज़गी है।

(ई) प्रतीक

प्रतीकात्मकता छायावादियों के काव्य की कला पक्ष की प्रमुख विशेषता है। प्रकृति पर सर्वत्र मानवीय भावनाओं का आरोप किया गया और उसका संवेदनात्मक रूप में चित्रण किया गया, इससे यह स्वतंत्र अस्तित्व और व्यक्तित्व से विहिन हो गयी और उसमें प्रतीकात्मकता का व्यवहार किया गया। उदाहरणार्थ- फुल सुख के अर्थ में, शूल दुख के अर्थ में, उषा प्रफुल्लता के अर्थ में, संध्या उदासी के अर्थ में, नीरद माला नाना भावनाओं के अर्थ में प्रयुक्त हुए। दार्शनिक अनुभूतियों की व्यंजना एवं प्रेम की सूक्ष्मातिसूक्ष्म दशाओं के आंकन में भी इस प्रतीकात्मकता को देखा जा सकता है।

(उ) अलंकार-विधान

अलंकार योजना में प्राचीन अलंकारों के अतिरिक्त अंग्रेजी साहित्य के दो नवीन अलंकारों- मानवीकरण तथा विशेषणविपर्यय का भी अच्छा उपयोग किया गया है। छायावादी कवि ने अमूर्त को मूर्त और मूर्त को अमूर्त रूप में चित्रित करने के लिए अनेक नवीन उपमाओं की उद्भावना की है; जैसे- 'कीर्ति किरण सी नाच रही है' तथा 'बिखरी अलकें ज्यों तर्क जाल।' इसके अतिरिक्त उपमा, रूपक, उल्लेख, संदेह, विरोधाभास, रूपकातिश्योति तथा त्यतिरेक आदि अलंकारों का भी सुंदर प्रयोग किया गया है।

(ऊ) छंद

छंद प्रयोग की दृष्टि से भी छायावादी कवियों का योगदान विशेष महत्त्वपूर्ण है। इन कवियों ने द्विवेदी-युगीन अनेक विकल्पों के बीच से खड़ी बोली हिन्दी के प्रकृति के अनुरूप छंदों का चुनाव कर प्रगीत-रचना के लिए उन्हें परिनिष्ठित रूप दिया, साथ ही कविता में संगीतात्मकता की वृद्धि की। इसके अलावा छायावाद को हिन्दी में मुक्त छंद के प्रवर्तन का श्रेय भी दिया जाता है।

1.8. छायावाद के प्रमुख रचनाकार

छायावाद युग के चार प्रमुख आधार स्तंभ हैं- जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी "निराला', सुमित्रानंदन पंत एवं कवयित्री महादेवी वर्मा। छायावाद युग के अन्य कवियों में डॉ. रामकुमार वर्मा, जानकी वल्लभ शास्त्री, हरिकृष्ण प्रेमी, उदयशंकर भट्ट, भगवतीचरण वर्मा, नरेन्द्र शर्मा, रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' के नाम उल्लेखनीय है।

(1) जयशंकर प्रसाद

जयशंकर प्रसाद हिन्दी की छायावादी युग के चार प्रमुख स्तंभों में से एक है। उन्होंने हिन्दी काव्य में एक तरह से छायावाद की स्थापना की जिसके द्वारा खड़ी बोली के काव्य में न केवल कमनीय माधुर्य की रससिद्ध धारा प्रवाहित हुई बल्कि जीवन के सूक्ष्म एवं व्यापक आयामों के चित्रण की शक्ति भी संचित हुई। प्रसाद कवि के अतिरिक्त एक श्रेष्ठ नाटककार, कथाकार तथा निबन्धकार भी हैं। इतना वैविध्यपूर्ण सृजन छायावाद के अन्य कवियों में नहीं दिखाई देता है। प्रसाद की प्रसिद्ध कृतियाँ हैं-

काव्य- आँसू, झरना, लहर और कामायनी (महाकाव्य)।
नाटक- स्कंदगुप्त, चन्द्रगुप्त और ध्रुवस्वामिनी।
उपन्यास- कंकाल, तितली एवं इरावती।

कुल मिलाकर प्रसाद ऐसे बहुआयामी प्रतिभा के साहित्यकार हैं जो हिन्दी में कम ही मिलेंगे। उन्होंने साहित्य के सभी अंगों को अपनी कृतियों से न केवल समृद्ध किया, बल्कि उन सभी विधाओं को बहुत ऊँचे स्थान तक भी पहुँचाया।

(2) सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

निराला जी हिन्दी साहित्य के छायावादी युग के चार प्रमुख स्तंभों में दूसरे स्तंभ माने जाते हैं। इन्होंने अपनी कविताओं में कल्पना का सहारा बहुत कम लिया तथा यथार्थ को प्रमुखता से चित्रित किया है। निराला जी एक कवि, निबंधकार, उपन्यासकार और कहानीकार भी थे। किन्तु इनकी ख्याति विशेष रूप से कवि के रूप में है। निराला जी की रचनाओं में अनेक प्रकार के भाव पाए जाते हैं। यद्यपि वे प्रायः खड़ी बोली के कवि थे, परन्तु वे ब्रजभाषा एवं अवधी भाषा में भी कविताएँ गढ़ लेते थे। इनकी रचनाओं में कहीं प्रेम की सघनता है, कहीं आध्यात्मिकता तो कहीं विपन्नों के प्रति सहानुभूति व संवेदना, कहीं देश प्रेम का जज़्बा तो कहीं सामाजिक रूढ़ियों का विरोध व कहीं प्रकृति के प्रति झलकता अनुराग। इनकी प्रमुख कृतियाँ हैं

काव्य- राम की शक्तिपूजा, तुलसीदास, सरोज स्मृति व अनामिका।
उपन्यास- अप्सरा, अल्का व प्रभावती।

(3) सुमित्रानंदन पंत

हिन्दी साहित्य में छायावादी युग के चार प्रमुख स्तंभों में से पंत तीसरे स्तंभ हैं। छायावादी काव्यधारा को एक नयी गति देने में पंत की भूमिका उल्लेखनीय है। भाव, भाषा एवं शिल्प सभी दृष्टियों से पंत ने छायावाद को सम्पन्न बनाया। अपने लम्बे जीवन काल (1900 से 1977 तक) के लगभग साठ वर्षों में वे निरंतर रचनाशील रहे। उनका संपूर्ण साहित 'सत्यम शिवम् सुंदरम' के आदर्शों से प्रभावित होते हुए भी समय के साथ निरंतर बदलता रहा। जहाँ प्रारंभिक कविताओं में प्रकृति और सौंदर्य के रमणीय चित्र मिलते हैं वहीं दूसरे चरण की कविताओं में छायावाद की सूक्ष्म कल्पनाओं व कोमल भावनाओं के और अंतिम चरण की कविताओं में प्रगतिवाद और विचारशीलता के। छायावादी कवियों में सर्वाधिक रचना पंत ने ही की है। इनकी प्रमुख कृतियों हैं- उच्छावास, वीणा, पल्लव, गुंजन स्वर्ण धूमि और चिदम्बरा।

(4) महादेवी वर्मा

महादेवी वर्मा छायावाद की प्रतिनिधि कवियित्री हैं। हिन्दी साहित्य में छायावादी युग के चार स्तंभों में से एक मानी जाती हैं। आधुनिक हिन्दी की सबसे सशक्त कवियित्रियों में से एक होने के कारण उन्हें आधुनिक मीरा के नाम से भी जाना जाता है। डॉ. नगेन्द्र के मत से तो महादेवी में छायावाद का शुद्ध अमिश्रित रूप मिलता है। महादेवी वर्मा के काव्य की केन्द्रीय संवेदना वेदना है। उनके काव्य में व्यक्त वेदनानुभूति में रहस्यवाद की उपस्थिति भी दिखाई देती है।

महादेवी वर्मा का संपूर्ण काव्य-कृतित्व गीति विधा में है। गीति तत्त्व छायावाद का एक प्रमुख तत्त्व है। प्रसाद, पंत, निराला सभी ने गीतों की रचना की है। परंतु महादेवी वर्मा पहली हिन्दी कवियत्री हैं जिनका समग्र काव्य-कृतित्त्व गीतों के रूप में है। महादेवी का काव्य कई संग्रहों में संग्रहित है। नीहार, रश्मि, नीरजा, सांध्यगीत और दीपशिखा उनके स्वतंत्र काव्य संग्रह है।

समग्रत: महादेवी वर्मा वेदना की गहनता के स्तर पर मीरा के बाद हिन्दी की सबसे बड़ी कवयित्री के रूप में सामने आती हैं।

1.9. सारांश

छायावाद ने प्रसाद, निराला, पंत और महादेवी जैसे महान् कवि दिये। प्रसाद का काव्य प्रेम और सौंदर्य का काव्य है, उसमें क्लासिकीय गरिमा है, वे एक बौद्धिक कवि भी हैं। उन्होंने गीत लिखे, मुक्तक लिखे। 'आँसू' जैसा भावात्मक काव्य लिखा, तो 'कामायनी' जैसा महाकाव्य भी जो आज भी आलोचकों और विचारकों के लिए एक चुनौती है। निराला संघर्ष और विद्रोह के कवि हैं। भावबोध और कला दोनों दृष्टियों से जितनी विविधता उनमें है उतनी किसी अन्य कवि में नहीं। छंद और भाषा की दृष्टि से भी उनमें नये-नये प्रयोग मिलते हैं। निराला ने बाद की पीढ़ी को जितना प्रभावित किया, उतना किसी अन्य कवि ने नहीं किया।

सुमित्रानंदन पंत शिवत्व ओर सौंदर्य के कवि हैं। उन्होंने प्रकृति से गहरी प्रेरणा ली। प्रगतिशीलता से भी वे प्रभावित रहे और बाद में अरविन्द के प्रभाव से वे अध्यात्मक की ओर भी झुके लेकिन उनकी समस्त काव्य यात्रा शिव और सौंदर्य की ही यात्रा है। महादेवी वर्मा आत्म वेदना की चित्रकार हैं। चिरंतन वेदना और एकाकीपन उनके काव्य की आधारभूत विशेषता है। वे अपनी वेदना को रहस्यवादी शब्दावली में प्रस्तुत करती हैं। इस इकाई को पढ़ने के बाद इन सभी प्रमुख कवियों के काव्य व्यक्तित्व का संक्षिप्त परिचय दे सकते हैं।

1.10. बोध प्रश्न

1. प्रसाद, निराला, पंत और महादेवी के काव्य विशेषताओं के बारे में विस्तृत रूप में लिखिए।

2. छायावाद-पृष्ठभूमि का परिचय देते हुए विभिन्न विद्वानों द्वारा दिए गये छायावाद की परिभाषाओं पर प्रकाश डालिए।

3. छायावाद और रहस्यवाद के बारे में बताते हुए छायावाद की मूल प्रवृत्तियों का व्याख्या लिखिए।

4. छायावाद-शिल्पगत विशेषताओं के बारे में लिखिए।

5. छायावाद के रचनाकारों के विचारों को स्पष्ट कीजिए।

1.11. सहायक ग्रंथ

1. छायावाद युग-राकेश यादव-भाषा प्रकाशन, नई दिल्ली।

2. आधुनिक छायावाद छायावादी काव्य प्रासंगिकता एवं पुनर्मूल्यांकन- ऋषि प्रसाद, भाषा प्रकाशन, नई दिल्ली।

3. कवि निराला- नंददुलारे वाजपेयी- मैरूमिलन, दिल्ली।

4. क्रांतिकारी कवि निराला- बच्चन सिंह- विश्वविद्यालय, वारणासी।

5. प्रसाद का काव्य- प्रेमशंकर- भारती अण्डारख प्रयाग।

6. सुमित्रानंदन पंत-नगेन्द्र- नेशनल।

7. कवि पंत और उनकी छायावादी रचनाएँ- प्रो. पी. ए. राव, प्रगति प्रकाशन, आगरा।

8. हिंदी साहित्य- 20वीं शताब्दीः आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी।

9. छायावादः पुनर्मूल्यांकनः सुमित्रानन्दन पन्त।

10. छायावाद युगः शंभुनाथ सिंह, सरस्वती मंदिर, वाराणसी; 1962 छायावाद के गौरव चिह्नः प्रो. क्षेमेन्द्र।

11. छायावादी कवियों का सौन्दर्य विधानः डॉ. सूर्यप्रसाद दीक्षित।

12. छायावादः राजेश्वरदयाल सक्सेना।

13. छायावादी काव्यः डॉ. कृष्ण चन्द्र वर्मा; मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, म.प्र.।

14. नवजागरण और छायावादः महेन्द्र नाथ राम, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली।

डॉ. सूर्य कुमारी. पी.

2. छायावाद: विकास-स्वरूप

2.0. उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- छायावाद नामक काव्यान्दोलन तथा छायावादी काव्य का निर्माण करने वाली परिस्थितियों को जान सकेंगे;
- आधुनिक हिंदी काव्य के विकास में छायावाद की सही परख और पहचान कर सकेंगे;
- छायावाद के चार आधार स्तंभ कवियों- जयशंकर प्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', सुमित्रानन्दन पन्त तथा महादेवी वर्मा का परिचय तथा उनकी कविताओं का सम्यक् अर्थबोध प्राप्त कर सकेंगे;
- छायावाद की विषय-वस्तु तथा वैचारिक पृष्ठभूमि को समझ सकेंगे; और
- छायावाद युग में परिवर्तित रचना-विधान का प्रामाणिक परीक्षण करते हुए उसकी शक्ति एवं सीमाओं का मूल्यांकन कर सकेंगे।

रूपरेखा

2.1. प्रस्तावना

2.2. छायावाद की पृष्ठभूमि

2.3. छायावाद का प्रारम्भ

2.4. छायावाद के प्रमुख कवि

2.4.1. प्रवर्तक कवि जयशंकर प्रसाद

2.4.2. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

2.4.3. सुमित्रानन्दन पन्त

2.4.4. महादेवी वर्मा

2.5. छायावाद की अन्तर्वस्तु

2.6. छायावाद का रचना-विधान

2.7. छायावाद का महत्व

2.8. सारांश

2.9. बोध प्रश्न

2.10. सहायक ग्रंथ

2.1 प्रस्तावना

सन् 1916 के आस-पास जिस नूतन - काव्यधारा का आविर्भाव हो रहा था उसे ही आगे चलकर 'छायावाद' की संज्ञा से अभिहित किया गया। द्विवेदी युगीन कविता खड़ी बोली में लिखी गई वर्णन प्रधान कविता बनकर भी लोकप्रिय तो हुई किन्तु साहित्य के अभाव तथा उपदेशात्मक पद्धति ने उस कविता एकरूपता पैदा कर दी थी। रीति-काव्य परंपरा का अनुसरण इस युग के ब्रजभाषा - काव्य में यथावत हो रहा था। कविता अपने युग की समस्याओं का प्रतिबिंब मात्र बनकर रह गई थी।

स्वानुभूति, कल्पना, प्रकृति का मानवीकारण, लाक्षणिक विचित्रता, मूर्तिमत्ता तथा आध्यात्मिक - छाया आदि विशेषताओं से सम्पन्न छायावादी काव्य में व्यक्ति की स्वाधीनता की भावना से उत्पन्न सौन्दर्य को ही सम्पूर्ण समाज के स्वाधीनता- सौन्दर्य की अभिव्यक्ति बनाकर प्रस्तुत किया गया है। वस्तुओं को असाधारण दृष्टि से देखने वाले छायावादी कवि की दृष्टि में उन्मादकता के साथ-साथ अंतरंगता का संस्पर्श भी रहा है। छायावाद की इसी विचित्र प्रकाशन- रीति के कारण उसके लिए 'मिस्टिसिज्म' और छायावाद जैसे शब्द तो प्रयुक्त हुए ही, साथ ही रहस्यवाद और छायावाद को भी कुछ लोगों ने एक ही मान लिया। इसे मान लेने का मुख्य आधार था उस अज्ञात सत्ता के प्रति प्रस्तुत जिज्ञासा का आध्यात्मिक रंग में डूबा होना। यही कारण है कि ईसाई मत में 'छाया' अर्थ देनेवाला 'फौंटसमेटा' शब्द भी प्रयोग हुआ और छायावाद पर नाम तथा भाव से यूरोप का प्रभाव भी मान लिया गया।

छायावाद के लिए 'रोमैण्टिसिज्म' शब्द का प्रयोग भी किया गया। इसी के आधार पर इसका हिंदी अनुवाद 'स्वच्छन्दतावाद' सामने आया। कवि तथा आलोचकों ने छायावाद और रोमैण्टिसिज्म को पर्याय समझना प्रारम्भ कर दिया। परन्तु मूलतः रहस्यवाद, छायावाद और स्वच्छन्दतावाद में सूक्ष्म अंतर है और छायावादी - काव्य में ये अन्य दो प्रवृत्तियाँ भी देखने को मिलती हैं। अतः छायावाद विदेशी पराधीनता और स्वदेशी जीर्ण-शीर्ण रूढ़ियों से मुक्त होने के मूक प्रयासों का मुखर स्वर है जिसमें राष्ट्रीय जागरण की चेतना प्रधान है। 'इन्दु', 'मतवाला' तथा 'सुधा' आदि पत्रिकाओं एवं 'पल्लव' और 'परिमल' की भूमिकाओं के माध्यम से जयशंकर प्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, सुमित्रानन्दन पन्त तथा महादेवी वर्मा ने छायावादी काव्य को आधुनिक हिंदी कविता का उत्कर्ष काव्य कहकर स्थापित किया। अतः मन की स्वच्छंद भावनाओं के विकास एवं उनकी गतिशील- चित्रात्मकता को समझने के लिए हमें पूरे मनोयोग से इस काव्य - युग का अध्ययन करना होगा। यहाँ सर्वप्रथम हम इस अनुपम काव्य-फल के पालन-पोषण में ही नहीं जन्म में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाली युगीन पृष्ठभूमि पर दृष्टिपात कर लें तो उचित होगा।

2.2. छायावाद की पृष्ठभूमि

सन् 1857 की क्रांति की चिंगारी ही धीरे-धीरे सुलगती रही और आगे चलकर यही अग्नि पुंज स्वतंत्रता-संघर्ष का पुण्य प्रारम्भ बना। ऐसे में आधुनिक युग तक आकर राष्ट्रीय-आकांक्षा की नवजागरणवादी-भावना, नैतिकता के साथ-साथ पुनरुत्थानवादी दृष्टि से जुड़कर अधिक सक्रिय होने लगी। द्विवेदी युग में अतीत के गौरव का स्मरण करते हुए सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक विरासत को रेखाकित कर गीतों में पिरोया जाना प्रारम्भ हुआ। छायावाद तक आते-आते विवेकानन्द के प्रेरक विचारों ने महर्षि अरविन्द के क्रांतिकारी- स्वर ने तथा महात्मा गांधी के अहिंसावादी सिद्धांतों ने क्रमशः स्फूर्ति और उत्तेजना तथा आत्मिक खोज, आध्यात्मिक और सांस्कृतिक चेतना की ज्योति का प्रज्वलन और राष्ट्रीय भावना के सात्विक भाव का जन-जन तक प्रचार-प्रसार करते हुए साहित्य की सुदृढ़ पृष्ठभूमि तैयार कर दी। इनके साथ - साथ रवीन्द्रनाथ टैगोर, लोकमान्य तिलक, सुभाषचन्द्र बोस तथा गोखले आदि राष्ट्र -

नेताओं ने जिस राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना का आध्यात्मिक प्रसार किया छायावादी काव्य उसे अपने में आत्मसात करके साहित्य - जगत में उपस्थित हुआ। राष्ट्रीयता की इस बुलन्दी का प्रखर स्वर छायावादी काव्य के सभी प्रमुख कवियों में देखा जा सकता है।

प्रसाद और निराला में तो यह चेतना अपने विशिष्ट - स्वरूप को लेकर सामने आती है। स्पष्ट है कि युग परिवेश की प्रेरणा और उत्साह का आह्वान ही छायावादी काव्य में ध्वनित होकर उपस्थित होता है। इसे हम छायावाद के चारों प्रमुख कवियों की आगामी इकाइयों में स्वतंत्रतः भी देखेंगे। सभी छायावादी कवियों ने अनुभव किया कि देश की जनता को जीवित और जागृत रखने के लिए उसमें मानवीय रागात्मक-बोध और सौन्दर्य-बोध का सम्मोहन भरना होगा। इसके लिए उन्होंने प्रकृति को अपना विषय बनाया और समूची संवेदना के साथ अपना सन्देश दिया। उन्होंने राष्ट्रीय चेतना के साथ ही विश्व दृष्टि का विस्तार किया और इस प्रकार एक बड़े व्यापक धरातल पर अपने काव्यान्दोलन का मंगलारम्भ किया। ऐसा विशद आयाम छायावाद के पूर्व या परवर्ती दूसरी किसी काव्य प्रवृत्ति के साथ नहीं दिखाई देता है।

2.2.1. छायावाद युगीन परिस्थितियाँ

1857 के बाद भारत में ब्रिटिश शासन पूरी शक्ति के साथ स्थापित हो गया। उसकी घोषणा और आरम्भिक सुधार योजना का भारतीय जनता ने स्वागत किया, किन्तु शीघ्र ही मोहभंग भी हो गया। प्रबुद्ध कवियों को यह पूर्वाभास हो गया कि इस साम्राज्यवादी उपनिवेश में उनकी अस्मिता अर्थात भारतीय संस्कृति का अस्तित्व संकट में है। अस्तु, उनका राष्ट्रीय स्वाभिमान स्वतंत्रता के लिए छटपटाने लगा, किन्तु अंग्रेजों के दमनचक्र और शोषण के कारण उन्हें अभिव्यक्ति का मुक्त अवसर नहीं मिल सका। देश की युवा पीढ़ी रक्त क्रांति एवं असहयोग आन्दोलन की दिशा में सक्रिय थी। इस अवसर पर समाज के व्यापक नवजागरण की आवश्यकता थी।

जन-साधारण में अपने स्वर्णिम अतीत के प्रति आस्था जागृत करनी थी, उन्हें एकता के सूत्र में बांधना था और समकालीन राजनीतिक व्यवस्था से ऊपर उठकर उच्चतर मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा करनी थी। बंगाल के अकाल से जो मृत्यु की विभीषिका छा गयी थी और जलियाँवाला बाग के सामूहिक हत्याकाण्ड का जो आतंक जन-जीवन में भर गया था, उसे दूर करने के लिए स्वर्णिम भविष्य की मंगलाशा पैदा करनी थी, अन्यथा हताश जन-समुदाय कुंठाग्रस्त हो जाता, जिससे समूची जाति के नष्ट-भ्रष्ट हो जाने की आशंका थी।

2.2.2. साहित्यिक परिवेश

छायावाद के पूर्व द्विवेदीयुगीन - इतिवृत्तात्मक कविता कुछ वर्षों तक जो बहुत लोकप्रिय रही, किन्तु शीघ्र ही उसका प्रभाव मंद पड़ गया, क्योंकि वह अधिकतर संवेग को ऊपरी स्तर पर छूती थी। उसकी भाषा भी सरल सुबोध थी, वह गेय और छंदोबद्ध थी और सामाजिक संदर्भों से जुड़ी हुई थी। द्विवेदी युग के ही समानांतर रीतिकाव्य के अवशिष्ट के रूप समस्यापूर्ति-कला चल रही थी, जो साहित्यनुरागी जनता का कलात्मक विनोद कर रही थी। उसमें उद्भावना का चमत्कार था, शब्दों का कलाकौतुक था, किन्तु जीवन की कोई अंतदृष्टि और चिन्तन की कोई गूढ़ सम्पदा न थी अतएव यह काव्य परम्परा 1920 तक पहुँचते-पहुँचते निष्प्रभ हो गयी। खड़ी बोली अब अपेक्षाकृत अधिक प्रौढ़, परिमार्जित एवं काव्योपम बन गई थी। जनमानस संचार के नए साधनों से सम्बद्ध होकर अब अधिक जानकार और जिज्ञासु हो गया था। उसकी संचेतनता के अनुकूल कविता को भी सुविचारित तथा विचारोत्तेजक बनाया जा रहा था। ज्ञान - विज्ञान की नई चुनौतियाँ इन कवियों के सामने थीं। ये कवि स्वयं चिन्तनधर्मी थे। अपने

स्वाध्याय एवं चिन्तन मनन के सहारे वे नाना विचार-भूमियों से गुज़र रहे थे, फलतः ये जीवन-जगत की भावी परिकल्पना में प्रवृत्त हुए। उन्होंने सर्वप्रथम अपने युग को पौराणिकता से मुक्त किया और आधुनिकता का वरण करते हुए नूतन - पुरातन के संकट बिन्दु का संधान किया।

छायावाद की यह भावभूमि आज के लिए प्रासंगिक बनी हुई है। चिन्तन और सृजन की समस्त रूढ़ियों से मुक्त होने के कारण छायावाद ने नयी भाषा, नए छन्द, नए विषय, नए काव्य रूप, अर्थात नए-नए मानदण्डों का निर्धारण किया। प्रतीक, बिंब एवं कल्पना- विधान में तो उनका कोई प्रतिस्पर्धी नहीं रहा। विषय-वस्तु के रूप में छायावादी कविता ने जन-चेतना से लेकर अतिमानव की लोकोत्तर चेतना की व्यथा-कथा कही अथवा उनके सपने संजोए। इसीलिए स्वच्छन्दतावादी विद्रोह और आध्यात्मिक आस्था, रहस्य एवं दर्शन, लोक-करुणा और आनन्द अर्थात् जीवन के समस्त सम-विषम सिद्धान्त छायावादी काव्य में अन्तर्निहित दिखाई देते हैं। वस्तुतः छायावाद जैसी वैविध्यपूर्ण काव्य प्रवृत्ति दूसरी नहीं है।

2.3 छायावाद का प्रारंभ

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा संपादित पत्रिका 'सरस्वती' ही संपादन अवधि को ही द्विवेदी युग की संज्ञा देना उपयुक्त है। उनके कार्यकाल के अन्तिम चरण में (सन् 1915 के आसपास) छायावाद का आरंभ अब लगभग सर्वमान्य हो गया है।

2.3.1. 'छायावाद' शब्द का प्रयोग

छायावाद एक मायामय सूक्ष्म वस्तु है। इसमें शब्द और अर्थ का सामंजस्य बहुत कम रहता है। किन्तु इस लक्षण निरूपण को परवर्ती आलोचक तथा इतिहासकार नहीं समझ पाए ! शायद इसीलिए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने यह अनुमान लगा लिया कि छायावाद और रहस्यवाद बंगाल के ब्रह्म-समाजियों के छायापदों और रवीन्द्रनाथ टैगोर की रहस्यानुभूतियों का नव रूपान्तरण है तथा इनकी प्रेरणा भूमि है- यूरोप के ईसाई प्रचारकों का रहस्य - दर्शन अर्थात फैंटसमाटा। उन्होंने छायावाद को वाच्यार्थ की जगह लक्षक या अन्योक्तिपरक शब्द प्रयोग को प्रश्रय देने वाली मात्र एक शैली घोषित कर दिया।

आचार्य शुक्ल जैसे उद्भट समीक्षक द्वारा न पहचानी गयी इस छायावादी कविता की सही परख - पहचान अर्से तक दबी रही। परिणामस्वरूप छायावाद के प्रवर्तक कवि और छायावादी धारा का सही उल्लेख नहीं हो पाया। किसी समीक्षक को मैथिलीशरण गुप्त प्रथम छायावादी प्रतीत हुए किसी को सियारामशरण गुप्त। इसी प्रकार माखनलाल चतुर्वेदी, प्रसाद पन्त, निराला आदि को अलग-अलग यह श्रेय दिया जाता रहा।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इसे पाश्चात्य - प्रभावप्रेरित वैयक्तिक स्वातंत्र्य का काव्य कहा तो आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी ने इस सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक चेतना का नवोन्मेष घोषित किया। डॉ. नगेन्द्र इसे दमित रोमानी स्थूल वृत्ति की सूक्ष्म प्रतिक्रिया मानते रहे तो शिवदान सिंह चौहान इसे पलायनोन्मुखी प्रवृत्ति कहते रहे। विडम्बना यह है कि छायावाद के प्रवर्तक महाकवि प्रसाद ने "काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध" नामक कृति में स्वयं छायावाद विषयक एक घोषणा- पत्र प्रस्तुत किया था, किन्तु उसके मुख्य बिन्दुओं पर किसी का ध्यान नहीं गया।

2.3.2. अर्थ विस्तार तथा व्यापकता

छायावाद को रहस्यवाद, स्वच्छन्दतावाद, प्रकृतिवाद, वेदनावाद, सर्वोत्मवाद, पलायनवाद आदि में इस प्रकार उलझा दिया कि जहाँ कहीं प्रेम, सौन्दर्य, प्रकृति-चित्रण, अवसाद और भावोद्रेक दिखाई पड़ा, उसे छायावाद भावुकता तथा छायावादी अवसाद का नाम दे दिया गया। इस भ्रम को बढ़ावा देने का कुछ दायित्व छायावादी कवियों पर भी है। निराला जी ने इसमें दर्शन का सन्निवेश आवश्यकता से अधिक किया। महादेवी जी ने अपनी भूमिकाओं में बौद्ध करुणा तथा रहस्य वेदांत का विश्लेषण करके इसका अन्यथा अर्थ इंगित कर दिया। सम्भवतः समीक्षकों के आरोपों की प्रतिक्रिया के रूप में ही ऐसा हुआ। पन्त जी ने छायावाद पर सबसे अधिक लिखा और सबसे अधिक भ्रम पैदा किया। आधुनिक कवि की भूमिका में उन्होंने एक ओर तो छायावाद के अन्त की घोषणा कर दी, इसलिए कि वे प्रगतिवाद की ओर आकृष्ट थे। 'छायावाद पुनर्मूल्यांकन' में उन्होंने छायावाद को जीवित काव्य प्रवृत्ति घोषित किया और उसमें मधु काव्य, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद और नई कविता के प्रतिनिधि कवियों को सम्मिलित कर लिया।

प्रथम उन्मेष में छायावाद की बृहत्रयी (तीन बड़े कवियों का समूह) में मात्र प्रसाद, निराला तथा पन्त की मान्यता थी। इसके पश्चात् महादेवी जी को सम्मिलित करके 'बृहच्चतुष्टय' (चार बड़े कवियों का समूह) की स्थापना हुई। अनंतर माखनलाल चतुर्वेदी और डॉ. रामकुमार वर्मा को सम्मिलित करके बृहत्रयी और लघुत्रयी की चर्चा की गई। इसी के साथ-साथ उत्तर छायावाद के 'गौण छायावादी' या 'उपछायावादी' कवियों के रूप में मोहनलाल महतो वियोगी, जनार्दन झा 'द्विज' आरसी प्रसाद सिंह, मुकुटधर पाण्डेय, हरिकृष्ण प्रेमी, इलाचन्द्र जोशी, डॉ. नगेन्द्र, उदय शंकर भट्ट, जानकीबल्लभ शास्त्री, कुंवर चन्द्र प्रकाश सिंह, रामधारी सिंह आदि नामों की तालिकाएँ प्रस्तुत की गई। इसमें छायावाद का जहाँ अर्थ विस्तार हुआ, वहीं उसके स्वरूप - निर्धारण में विभ्रम भी उत्पन्न हुआ और इससे सही मूल्यांकन बाधित हुआ। यह ज्ञातव्य है कि 'छाया' की अर्थच्छाया अथवा उसकी यह छायांकन शैली सबके लिए सहज साध्य नहीं है। स्वयं बृहच्चतुष्टय के ये सिद्ध छायावादी कवि भी आद्यंत छायावादी नहीं रहे। निराला और पन्त का बड़ा रूपान्तरण हुआ है।

प्रसाद जी के आरम्भिक काव्य में छायावृत्ति का अभाव है। उनके प्रथम गीत संग्रह 'झरना' में पहली बार छायावाद का स्वरूप उद्घाटित हुआ है, इसलिए छायावाद का आरम्भ 1915 ई. के आस-पास मानना समुचित होगा। इस अभियान की घोषणा 1920 ई. में हुई और फिर इसे स्वीकार करके छायावादी कवियों तथा समीक्षकों ने इसकी विवेचना की। प्रसाद जी ने आचार्य आनंदवर्धन के 'ध्वनि- सिद्धांत' और कुंतक के 'वक्रोक्ति सिद्धान्त' ने इसका उद्गम घोषित करते हुए इसे 'स्वानुभूतिमयी विवृत्ति', 'विच्छित्ति' आदि का नया रूपान्तरण सिद्ध किया। पन्त जी ने इसे 'रत्नच्छयामय सौंदर्य' का दर्शन माना और महादेवी जी ने इसके लिए 'छायावृत्ति' (अर्थात् एक विशिष्ट मनः संस्थान या मनोवृत्ति) क प्रयोग किया। इन सूत्रों के सहारे ही छायावाद का सही स्वरूप उभारा जा सकता है।

2.4. छायावाद के प्रमुख कवि

छायावाद में समय-समय पर अनेक रचनाकारों और कवियों का समावेश होता रहा। कभी वहाँ 'बृहतत्रयी' के रूप में 'प्रसाद', 'निराला' और 'पन्त' की चर्चा की जाती रही तो कभी बृहच्चतुष्ट्य के रूप में इन तीनों कवियों के साथ 'महादेवी' का नाम जोड़कर देखा जाता रहा। कुल मिलाकर छायावाद प्रमुख कवियों या आधार स्तंभों में इन चारों महाकवियों की चर्चा, किसी न किसी रूप में चलती ही रही। यह अलग बात है कि इन चार कवियों के साथ-साथ छायावाद के अन्य कवियों में, उत्तरछायावादी कवि या गौण छायावादी कवि कहकर माखनलाल चतुर्वेदी, डॉ.

रामकुमार वर्मा, जानकीबल्लभ शास्त्री, हरिकृष्ण प्रेमी, जनार्दन झा 'द्विज', लक्ष्मी नारायण मिश्र, इलाचन्द्र जोशी, डॉ. नगेन्द्र, चन्द्र प्रकाश सिंह, विद्यापती कोकिल, तारा पाण्डेय, मुकुटधर पाण्डेय, उदय शंकर भट्ट तथा नरेन्द्र शर्मा आदि कवियों को भी इसमें समाविष्ट किया जाता रहा।

छायावाद के चार प्रमुख कवियों से इतर इन सभी कवियों के काव्य और उनकी प्रवृत्तियों को लेकर विवाद भी चलते रहे परन्तु इन्हें छायावाद के प्रमुख कवियों में सर्वमान्यता से शामिल नहीं किया जा सका। अतः यहाँ हम छायावाद के चार प्रमुख कवियों का ही संक्षिप्त साहित्यिक परिचय देकर छायावाद की मूल वस्तु पर आएंगे। इन चारों प्रमुख कवियों के संदर्भ में विस्तृत जानकारी आप अगली चार इकाइयों में हासिल करेंगे।

2.4.1. प्रवर्तक कवि जयशंकर प्रसाद

20वीं शताब्दी को अपने व्यक्तित्व और कृतित्व से सर्वाधिक प्रभावित और प्रेरित करने वाले इस 'बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न' कलाकार ने कविता के साथ-साथ नाटक, उपन्यास, कहानी, निबन्ध तथा समीक्षा आदि विभिन्न गद्य-पद्य विधाओं में अपनी ऐतिहासिक तथा महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है।

सन् 1889 ई. में वाराणसी के एक प्रतिष्ठित परिवार में जन्मे 'प्रसाद' का जीवन परिस्थितियों से संघर्ष करते हुए प्रारम्भ हुआ। घर में ही शिक्षार्जन तथा पारिवारिक व्यवसाय का दायित्व निभाते हुए भी सरस्वती पुत्र ने अपनी अप्रतिम प्रतिभा का परिचय दिया और कई काव्य-कृतियों की रचना कर डाली। प्रारम्भ में 'कलाधर' के नाम से कतिपय ब्रजभाषा - छन्द भी प्रसाद ने लिखे जो आगे चलकर 'चित्राधार' में संकलित किए गए। खड़ी बोली को परिष्कृत, परिमार्जित और अपनी काव्य कृतियों से पुरस्कृत करने वाले इस महाकवि की प्रारम्भिक काव्य कृतियाँ हैं 'प्रेम पथिक', 'करूणालय', 'कानन कुसुम' तथा 'महाराणा का महत्व'। सन् 1918 ई. में 'झरना' लिखी और कवि प्रसाद छायावाद के प्रवर्तन की ओर अग्रसर होने लगे। इसके बाद सन् 1925 ई. में 'आंसू' सन् 1933 ई. में 'लहर' तथा सन् 1935 ई. में 'कामायनी' का सृजन हुआ और प्रसाद काव्य - साधना के उच्चतम शिखर पर पहुँच गए।

प्रसाद की काव्य-चेतना की विविध प्रवृत्तियों से समृद्ध इन कृतियों की अन्तर्वस्तु की विस्तृत चर्चा हम आगे की इकाई में करेंगे। यहाँ केवल इतना कहना पर्याप्त होगा कि आधुनिक कविता के इतिहास में एक तरफ प्रेम, सौन्दर्य तथा आनन्द और दूसरी तरफ भाव, विचार तथा आनन्द का अद्भुत सामंजस्य देने वाला यह कवि मानव मूल्यों के बहुत व्यापक फलक का कवि है। महाकवि जयशंकर प्रसाद सभी काव्य प्रेमियों और रसिकों को काव्य का ऐसा अद्भुत और अनुपम आस्वाद प्रदान कर गए, जो सदैव ही अतुलनीय तथा अमर बना रहेगा।

2.4.2. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

छायावाद के प्रवर्त्तक कवि प्रसाद के बाद महत्वपूर्ण स्थान रखने वाले कवि हैं महाप्राण 'निराला'। अपने प्रचण्ड विद्रोह, उदग्र सौन्दर्य तथा उदात्त एवं आदर्श-जीवन दर्शन के इस कवि को हिंदी काव्य का शुलाका पुरुष कहा जाता है। सन् 1896 ई. में बंगाल के मेदिनीपुर महिषादल में जन्में इस महाकवि के जीने का अंदाज़ भी उपमान की तरह 'निराला' ही था। जीवन की विषम परिस्थितियों से जूझते और संघर्ष करते हुए भी साहित्य की महान् सेवा करने वाले इस आधार स्तम्भ ने 'परिमल', 'अनामिका', 'तुलसीदास', 'गीतगुन्ज', 'कुकुरमुत्ता', 'गीतिका', 'अणिमा', 'बेला', 'नये पत्ते', 'सांध्य-काकली', 'अर्चना' तथा 'आराधना' जैसी महानतम कृतियाँ प्रदान कीं।

छायावादी काव्य को अनुपम तथा नवीनतम गति देने वाले इस विद्रोही कवि ने भाव, भाषा और छंद आदि क्षेत्रों में युगान्तकारी परिवर्तन उपस्थित कर डाला। वेदान्त दर्शन के गहन अध्येता महाकवि निराला ने भी प्रसाद की तरह ही अपनी प्रतिभा के बल पर दर्शन और काव्य में अद्भुत समन्वय स्थापित किया। छायावाद ही नहीं हिन्दी साहित्य के इतिहास में निराला को उनकी भाषा तथा मुक्त छंद के संदर्भ में युगों-युगों तक याद किया जाता रहेगा। काव्य के अतिरिक्त कहानी, उपन्यास, निबन्ध तथा पत्रकारिता के क्षेत्र में भी निराला जी की विशिष्ट रुचि एवं देन रही। अक्तूबर, 1961 में भौतिक अस्तित्व को तज देने वाले इस चिरन्तन 'कवि-व्यक्तित्व' के अमर-प्रतीक पर सभी साहित्य-प्रेमियों को गर्व है।

2.4.3. सुमित्रानन्दन पन्त

छायावाद के चार आधार स्तंभों में सुमित्रानन्दन पन्त तीसरे प्रमुख स्तंभ हैं जिनका नाम सदैव अमर रहेगा। अनन्य प्रकृति प्रेमी तथा विदग्ध - विचारक कवि पन्त ने बाल्यावस्था से ही काव्य-सृजन प्रारम्भ कर दिया था। कवि रूप में स्थापित इस महान व्यक्तित्व ने काव्य से इतर नाटक, कहानी, उपन्यास, निबन्ध संस्मरण तथा समीक्षा के क्षेत्र में भी अपनी प्रतिभा का परिचय दिया, किन्तु मूलतः वे कवि ही थे और अपनी विशिष्ट पहचान भी इसी क्षेत्र में बना सके। समय-समय पर गांधी, मार्क्स तथा अरविन्द आदि से प्रभावित और प्रेरित होने वाले इस प्रकृति-प्रेमी कवि की आरम्भिक रचनाएँ 'वीणा' में संकलित हैं। इसके अतिरिक्त अन्य काव्य कृतियों में 'ग्रन्थि', 'पल्लव', 'गुंजन', 'युगान्त', 'ज्योत्सना', 'अत्मा', 'ग्राम्या', 'युगवाणी', 'युगान्तर', 'स्वर्ण-किरण', 'स्वर्ण-धूलि', 'उतरा', 'रजत-शिखर', 'शिल्पी', 'लोकायतन', 'कला और बूढ़ा चाँद', 'किरण', 'पौ घटने से पहले', 'गीतहंस', 'समाधिता', 'आस्था' तथा 'सत्यकाम' आदि चिरस्मरणीय हैं। प्रकृति चित्रण का हृदयग्राही चित्रण और उसमें भी कोमल पक्ष विशेष रूप से कवि की रुचि का वैशिष्ट्य है।

2.4.4. महादेवी वर्मा

महादेवी वर्मा का नाम छायावाद के कवियों में अत्यन्त आदर से लिया जाता है। रहस्य, वेदना और गीतात्मकता की अमर-सृजक महादेवी का जन्म सन् 1907 ई. में फरूखाबाद में हुआ था। विधिवत् शिक्षा प्राप्त कर आजीवन प्रयाग- महिला विद्यापीठ की सेवा करने वाली महादेवी हृदय की अनुभूतियों और सूक्ष्मतम भावनाओं को सफलतम अभिव्यक्ति देती हैं और यह उनके कृतित्य का बेजोड़ पक्ष है। काव्य ही नहीं, रेखाचित्र, संस्मरण, निबन्ध तथा पत्रकारिता के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण योगदान देने वाले महादेवी वर्मा के बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तित्व ने 'वेदना' के मर्म से जो तादाकार किया और कराया है वह निश्चित ही उनका अपना वैशिष्ट्य है। सन् 1930 ई. में उन्होंने 'नीहार' नामक काव्य संकलन प्रदान किया और उनकी प्रतिभा की धूम पूरे भारत में मच गई। इसके बाद लगातार सन् 1934 ई. में 'नीरजा', सन् 1936 में 'सांध्यगीत' तथा सन् 1940 ई. में 'दीपशिखा' जैसी कृतियों में गीतों के माध्यम से आध्यात्मिक - वेदना और रहस्य-चेतना को मुखर बना दिया।

2.5. छायावाद की अन्तर्वस्तु

'छायावाद' एक युग प्रवृत्ति है, इसलिए उसका अपना एक विशिष्ट युग बोध भी हैं। छायावादी काव्य की जिस अन्तर्वस्तु की चर्चा अब हम करने जा रहे हैं वह जितनी समसामयिक परिस्थितियों से प्रभावित है उतनी ही इस युग के कवियों की अंतर्दृष्टि से भी प्रेरित है। 'प्रथम वसंत के अग्रदूत' के रूप में स्वाधीनता की भावना को निमंत्रित करने वाले ये कवि नवजागरण के दूत बनकर हमारे सामने आते हैं। इसी कारण छायावादी काव्य को 'शक्ति-काव्य'

भी कहा जाता है। हिंदी साहित्य में आधुनिक कविता का इतिहास देखें तो स्पष्ट हो जाता है कि पहली बार छायावाद को ही विराट - मानवीय - वेदना की भाव-भूमि पर प्रतिष्ठित होने का श्रेय प्राप्त होता है। यद्यपि इस काव्य को उद्दाम - वैयक्तिकता का विस्फोट माना गया है, फिर भी विश्व दृष्टि को आत्मसात करने में छायावाद ने जो पहल की है, वह किसी अन्य काव्यान्दोलन ने नहीं की।

वैज्ञानिक - युग की अतिबौद्धिकता और उससे पैदा होने वाली जीवन की विभीषिकाएँ जब मनुष्य समाज को घेरने लगीं तो जनजीवन को मंगलमय - भविष्य और कल्याणकारी कल के सुनहरे स्वप्न दिखाकर कुंठित मानसिकता के चुंगुल में जाने से बचाने का महत्वपूर्ण कार्य किया छायावाद ने। इस निबन्ध, उन्मुक्त तथा स्वच्छन्द जीवन की आंकाक्षाओं पर लगाए गए सभी बंधनों को काट - फेंकने का जीवन-कार्य इस काव्य ने किया। इन सभी दिशाओं की वैचारिक प्रकृति और अनुभवी मानसिकता को हम एक-एक करके यहाँ देखेंगे।

2.5.1. व्यक्ति - स्वातंत्र्य का स्वर

प्रत्येक देशवासी में स्वतंत्रता की भावना, आत्माभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और व्यक्तिगत स्वाधीनता की प्रतिष्ठा - यही सब छायावाद के साहित्यिक, आन्दोलन को जीवन्त बनाते हैं। निराला जब यह कहते हैं- 'मैंने मैं शैली अपनाई' - तो यहाँ 'मैं' कहकर समूचे युग की पीड़ा को वे अपनी निधि मान कर चलते हैं। प्रसाद जी भी 'आँसू' में इसी प्रकार वैयक्तिक विरह को 'विश्व – वेदना' में परिणत करके यही कामना करते हैं- 'चुन-चुन ले रे क़नक़न से जगती की सजग व्यथाएँ' इसी प्रकार पन्त, निराला और महादेवी के काव्य में आत्माभिव्यक्ति का यह स्वर कई स्थानों पर देखने को मिलता है। निराला की इन अभिव्यक्तियों को देखिए:

अ) मैं अकेला! देखता हूँ आ रही, मेरे दिवस की सन्ध्या बेला।

आ) ज्योति निर्झर बह गया है, रेता ज्यों तन रह गया है।

इ) अभी न होगा मेरा अन्त।

ई) मैं ही बसंत का अग्रदूत।

छायावादी कविता पुरातन-सामाजिक रूढ़ियों और झूठी नैतिकताओं के बंधनों को काट फेंकने का जागृति-गान लेकर आती है। निराला सामंती समाज द्वारा गुलामी के जाल में जकड़ने की प्रक्रिया को निरंतर देखते रहे, और उसे ललकारने तथा उससे जूझने के जीवन मूल्यों को भी स्थापित करते रहे। पन्त पहले वे प्रकृति-चित्रण करते हैं और बाद में उसी में आत्म-दर्शन करने लगते हैं। 'एकतारा' में वे एकाकी नक्षत्र का रूपांकन करते-करते आत्माभिव्यक्ति करने लगते तो 'नोका-विहार' कविता के अंत में भी 'इस धारा सा हो जग का क्रम' कहकर अपनी अनुभूति को मुखर कर देते हैं।

स्वातंत्र्य-भाव की आत्माभिव्यक्ति महादेवी में भी सहज ही मिल जाती है। 'रहने दो हे देव! अरे ये मेरे मिटने का अधिकार' कहने वाली महादेवी का पथ ही निर्वाण बन जाता है। कभी वे 'मैं' का विस्तार कर देती हैं तो कभी उसे क्षणभंगुर घोषित कर उमड़ कर मिट जाने वाली बदली बना देती हैं। छायावादी कवियों ने रोमाटिंक स्वाधीनता के पथ का भी वरण किया। इनकी 'प्रणय के प्रलय में सीमा सब खो गई' जैसी स्वच्छन्द-भावना भी बन्धन - मुक्ति की ही परिचायक है। अतः सामाजिक विधि - निषेध के विरूद्ध प्रेम का यह उद्भाव रूप इन कवियों के सृजन में यत्र-तत्र देखा जा सकता है।

2.5.2 रूढ़ियों से मुक्ति का प्रयास

छायावादी कवि निराला ने हर प्रकार की रूढ़ि पर प्रहार किया और नये विषय, नयी भाषा के साथ नये छंद (मुक्त छंद) का प्रवर्तन भी किया। कवि पन्त ने ठीक ही कहा था- 'कट गए छंद के बंध, प्रास के रजत पाश'। निराला जी का जय घोष था- 'तोड़ो, तोड़ो, तोड़ो कारा ! पत्थर की, निकले फिर गंगा जल धारा।' प्रसाद जी के शब्दों में 'पुरातनता का निर्मोक' प्रकृति को एक पल के लिए भी सहय नहीं है। इसी ध्येय से पन्त जी ने यह कामना की- 'द्रुत झरो, जगत के जीर्ण पत्र' !

निराला जी के काव्य में नवता के प्रति बड़ा आग्रह हैं। वे निरन्तर 'नवगति, नवलय, ताल छंद नव, नवल कंठ नवजलद मंद्रख' के अभिलाषी रहे हैं। उनके गद्य में भी रूढ़ियों से मुक्ति पाने की छटपटाहट सर्वत्र दिखाई देती है। छायावाद के इस विद्रोही - स्वरूप के प्रति पुरातनपंथी आलोचकों की प्रतिक्रिया अनुकूल नहीं रही और उन्होंने अंध-प्रथाओं के समर्थन में इस काव्यान्दोलन का विरोध किया, किन्तु नयी युगधारा को कौन रोक सकता है? छायावाद में मानवीय प्रेम सौन्दर्य के जो रंग-बिरंगे भाव उभरे, वे द्विवेदीयुगीन कोरी नैतिकता की दृष्टि से आपत्तिजनक थे। 'प्रसाद के आंसू में कवि ने अपने संयोग-वियोग के मुक्त उद्गार व्यक्त किए। इसी प्रकार पन्त की कविता 'भावी पत्नी के प्रति' या 'ग्रन्थि' में चित्रित दृश्यों से, निराला के शृंगारिक गीतों से और महादेवी की रहस्यानुभूति द्वारा सड़ी-गली रूढ़ियों को गहरा आघात लगा। स्पष्ट है कि छायावाद काव्य की विद्रोही भूमिका ऐतिहासिक विकासक्रम में महत्वपूर्ण रही।

2.5.3. प्राकृतिक स्पंदना

छायावादी कविता का प्रकृति से बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। मुख्यतः प्रकृति कवियों के देश-प्रेम और व्यक्ति - स्वातंत्र्य की आकांक्षा की पूरक रही है। प्रकृति को छायावादी कवियों ने 'सर्व सुन्दरी' कहा है। पन्त जी के कथनानुसार उन्हें कविता करने की प्रेरणा प्रकृति से मिली है। वास्तव में, ये चारों कवि 'निसर्ग' कवि रहे हैं। प्रसाद जी ने अपने एक निबंध 'प्रकृति सौन्दर्य' में प्रकृति को विलक्षण ईश्वरीय देन कहा है और विश्वात्मा की छाया भी माना जाता है। उनके अनुसार, 'यह प्रकृति जो मनुष्य को आत्म चैतन्य की ओर बार-बार उसका मानवीकरण किया है। 'तुलसीदास' नामक काव्य में उन्होंने प्रकृति के माध्यम से चित्त का उदात्तीकरण कराया है। तात्पर्य यह कि प्रकृति छायावादी कविता की सहचरी रही है।

छायावाद में बाह्य-प्रकृति के अनेक रूप चित्रित हुए हैं, किन्तु पर्वतीय पर्यावरण तथा सागर, सरिता और निर्झर के दृश्य अपेक्षाकृत अधिक हैं। प्रसाद जी ने हिमालयी शिखरों को शोभानतन कहा है और उसके विभिन्न संदर्भों में अंकित किया है। पन्त स्वयंमेव 'पर्वत पुत्र' हैं। उन्होंने 'हिमाद्री', 'अल्मोड़े का पावस', 'गिरी प्रान्तर', 'पूर्वांचल के प्रति' आदि कविताओं में पर्वतीय प्रकृति की बार-बार परिक्रमा की है। उनका जैसा सूक्ष्म और विशद प्रकृति-चित्रण समूची हिंदी कविता में अन्यत्र कहीं प्राप्त नहीं होता है। सागर, सरिता, निर्झर तथा जल-प्रवाह की ध्वन्यात्मक व्यंजना निराला जी की कविताओं में बहुत है। 'बादलराग', 'अलि घिर आये घर पावस के'। 'प्रभात के प्रति', 'धारा' आदि कविताएँ इस दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। ऋतु-सौंदर्य का प्रकृति चित्रण में विशेष महत्व है। इन कवियों ने पावस, शरद् और बसंत ऋतु मनोमुग्धकारी चित्र प्रस्तुत किए हैं। कोमल कुसुमों की मधुर रात, चांदनी, वसंतरजनी आदि कविताएँ छायावाद की गौरव-प्रतीक हैं।

प्रसाद का गीत – 'बीती विभावरी, जागरी' निराला की कविता – 'संध्या सुन्दरी', पन्त की कविताएँ – 'सन्ध्या के बाद', 'एक तारा' आदि चिर स्मरणीय रहेंगी। इन कवियों प्रकृति के छोटे से छोटे तत्वों पर दृष्टि डाली है,

जैसे ओस-बिन्दु, विभिन्न पशु-पक्षी एवं वनस्पतियाँ । तात्पर्य यह है कि छायावादी कवियों ने प्रकृति को उसकी परिपूर्णता में ग्रहण किया है। उन्होंने सौन्दर्योपासक कलाकार रूप में प्रकृति की वन्दना की है। इन्हें प्रकृति के सभी रूप प्रिय हैं, किन्तु करुणा - कोमल अपेक्षाकृत अधिक रुचिकर लगे हैं। इन्होंने प्रकृति से समात्मभाव स्थापित किया है। इनके विषय चयन का अपना मनोवैज्ञानिक आधार रहा है । प्रकृति को प्रेम, सौन्दर्य, रहस्य, आनंद, अध्यात्म एकान्तप्रियता और स्वच्छन्दता का हेतु माना है । पन्त जी ने इसे 'देवि, माँ, सहचरिप्राण' अर्थात् अपना जीवन - सर्वस्व स्वीकार किया है।

2.5.4. गीतात्मक मधुर वेदना

छायावादी कविता का अर्थ है- 'आन्तरिक स्पर्श से पुलकित भावों' की कविता है। मनुष्य के जीवन का चक्र जन्म-मरण, सुख-दुख, मिलन - विरह तथा अश्रु -हास की सीमाओं के बीच अपनी यात्रा तय करता है । कवि की पहचान उसका 'वियोगी होना' और 'आह के गीत सृजन करना' ही माना गया है । जीवन के इस पारस - सत्य को छूकर ही इन छायावादी कवियों की काव्य - साधना भी हृदय के अध्यात्म की गंभीर अनुभूति को प्रस्तुत करती रही।

हृदय की अमर - अभिव्यक्ति करने वाले इन चारों महाकवियों में महादेवी वेदना के मधुर गीत गाने में सर्वाधिक सफल हुई और परिणामतः उन्हें 'आधुनिक युग की मीरा' भी कहा गया। साधना का दिव्य-दीपक प्रज्वलित करके सदैव - मात्रा में रहने वाली महादेवी- 'अचल – पथिक' बन जाती हैं। सत्य के सहज ज्योतिर्मयी स्वरूप का अस्तित्व वे सामंजस्य में देखती हैं तो कहती हैं- 'सेतु शूलों का बना बांध विरह-बारिश का जल' और 'विरह की घड़ियाँ' भी जिस कवयित्री को 'मधुर मधु की यामिनी-सी' प्रतीत होती हैं, सुख-दुःख का यह मेघ - द्युति खेल भी समझ जाती हैं। द्वैत, अद्वैत हो जाता है और वे जीवन के गहनतम प्रकाश को सृष्टि - समष्टि रूप में देखने लगती हैं। जीवन की इस अनोखी कारा के कोहरे-भरे वातावरण में ही तो परमसत्य की चिदानन्द - ज्योति के दर्शन होते हैं और एक समय ऐसा भी आता है जब वे सभी विषमताओं से ऊपर उठकर उस परम सत्य के दिव्य संदेश को जन-जन तक पहुँचा देती हैं।

पन्त और प्रसाद के अंतर्लोक से भी अश्रु-तरल - वेदना का जो आर्द्रगान निःसृत होता है वह करुणा की साकार मूर्ति बनकर भावों को अभिव्यक्त कर देता है । 'प्रिय' से उपेक्षित प्रसाद, प्रेम के अपेक्षित दान का अभाव महसूस करते हैं तो उनका कवि चातक 'धीरे से वह उठता पुकार, मुझको न मिला है कभी प्यार !" का रुदन - गीत गाता है। आकाश का सूनापन उनके जीवन में उतर आता है तो कवि का गान फूट पड़ता है-

कब तक और अकेले ? कह दो हे मेरे जीवन बोलो?

किसे सुनाऊ कथा? कहो मत अपनी निधि न व्यर्थ खोलो

X X X X X

जब सावन-धन सघन बरसते, इन आँखों की छाया भर थे।

वे कुछ दिन कितने सुन्दर थे !

सौन्दर्य-प्रेमी कवि पन्त सौन्दर्य की क्षण भंगुरता देखकर आकुल हो उठते हैं । भावों की अभिव्यक्ति की अपूर्णता, अभिलाषाओं की विफलता, सौन्दर्य की नश्वरता या प्रेयसी की निष्ठुरता आदि अनेक कारणों से वे वेदना और

करुणा की राह से गुजरते हैं। जीवन के विषम ज्वालामय अभाव कवि को विवश और निराश भी करते हैं। उनका कवि दार्शनिक बनने लगता है और वे घावों को अनुभव के मधुर लेप से भरने का प्रयास करते हैं

अ) बिना दुख के सब सुख निस्सार

बिना आँसू के जीवन भार !

X X X

आ) आज का दुख, कल का आह्लाद

और कल का सुख आज विषाद !

'निराला' तो नूतन गेय छन्दों के भी उद्भावक बनकर सामने आते हैं। संगीत का माधुर्य उनके स्वर - सामंजस्य के साथ मिल-जुलकर कलात्मक रूप ले लेता है। अतः स्पष्ट है कि विरह की कसक और मिलन का संदेश लेकर जिन गीतों का जन्म हुआ है, वह अत्यंत ही मनोरम है। निश्चित ही छायावादी कवि, गीतों के सृजन आधुनिक साहित्य में भावानुभूति की गहराई और जीवन-दर्शन की ऊँचाई की अद्भुत मिसाल बन गए हैं।

2.5.5. नारी विषयक नव्य धारणा

नारी के प्रति नवीन दृष्टि रखते हुए छायावाद कवियों में न भक्तिकालीन कवियों का तिरस्कार भाव है और न रीतिकाव्य जैसा कामिक कौतुकी व - कदाचार है। इन्होंने द्विवेदी - युगीन परहेजी संस्कार तथा प्रगतिवाद, प्रयोगवाद के यौनाकुल आवेशज्वार से ऊपर उठकर नारी को मानवीय सौन्दर्य की अधिष्ठात्री, मानवीय करुणा की विधात्री अर्थात् जीवन के समस्त शुभ संकेतों की निर्मात्री घोषित किया है। 'प्रसाद' के मतानुसार तो नारी श्रद्धा का प्रतिरूप ही है-

नारी तुम केवल श्रद्धा हो, विश्वास रजत नग पग तल में।

पीयूष श्रोत ही बहा करो, जीवन के सुन्दर समतल में।

यदि कवि ने नारी को दया, माया, ममता, मधुरिमा, अगाध विश्वास आदि शुभ एवं श्रेयस्कर भावों का प्रतीक घोषित किया है। छायावादी कवियों की दृष्टि में नारी विलास की सहचरी न होकर उच्चतम भूमियों तक ले चलने वाली शक्ति है। पुरुष क्रूरता को मनुष्यता के रूप में परिणत करने का कार्य नारी शक्ति का ही है। निराला जी ने भी नारी के प्रति सदाशयता प्रदर्शित की है। वे महाशक्ति के उपासक रहे हैं उनके मतानुसार जैसे तुलसीदास को रत्नावली से प्रेरणा प्राप्त हुई, उसी प्रकार स्वयं उन्हें मनोहरा देवी से प्राप्त हुई। उन्होंने नारी को पारंपरिक तथा आधुनिक, इन दोनों रूपों में अंकित किया है।

पन्त की नारी तो स्वप्नलोक की मानसी प्रतिमा है। वे उसके सौन्दर्य चितेरे हैं और आदर्श नारीत्व के पूजक भी। महादेवी जी स्वयं नारी जीवन की विरह वेदना, अर्थात् भारतीय नारी की समस्त मनोभूमि की चित्रकर्त्री रही हैं। उनके गद्य में तो नारी जीवन की कुछ प्रतिक्रियाएँ यत्र-तत्र प्रकट हो गयी हैं, किन्तु उनकी कविता में किसी प्रकार का मतवाद अर्थात् 'नारीवादी' नहीं उभरा है। हाँ, कवयित्री की संवेदनाएँ अवश्य मुखर हुई हैं कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि हिंदी कविता की सुदीर्घ परम्परा में छायावादी काव्य ने प्रथम बार नारी के प्रति एक स्वस्थ एवं संयत दृष्टिकोण प्रकट किया है।

2.5.6. युगीन सत्य और यथार्थ - अभिव्यक्ति

छायावादी कवियों ने अपनी समकालीन सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक व्यवस्था को खुली दृष्टि से देखा था और भरसक समस्याओं का समाधान भी खोजा था। प्रसाद जी ने 'कामायनी' में विगत तथा वर्तमान के साथ-साथ भावी युग जीवन को भी रूपायित करने की चेष्टा की है। निराला की कई कविताएँ, जैसे 'वह तोड़ती पत्थर', 'भिक्षुक', 'विधवा, छोड़ दो जीवन यों न मलो, दान' आदि युगीन यथार्थ की उपज हैं। पन्त जी ने 'युगान्त', 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' में इस युग - यथार्थ को अभिव्यक्ति दी है। जब वे कहते हैं- "यह तो मानव लोक नहीं रे, यह है नरक अपरिचित" तो वहाँ युग का कटु यथार्थ बोल उठता है। इन कवियों का यथार्थ किसी राजनीतिक मतवाद से ग्रस्त नहीं है।

2.5.7. राष्ट्रीय तथा सांस्कृतिक चेतना

राष्ट्रीयता का पोषक छायावाद रहा है। नवजागरण की उस बेला में अपनी स्वाधीनता के लिए विदेशी शासकों के विरुद्ध सत्याग्रह - पूर्ण संघर्ष करती हुई भारतीय जनता को राष्ट्र के अतीत गौरव, अर्थात् उसकी सांस्कृतिक चेतना से अवगत कराना बहुत आवश्यक था। प्रसाद जी ने अपने नाटकों में राष्ट्र का क्रमबद्ध इतिहास प्रस्तुत किया। उनकी काव्य कृतियों में बौद्ध करुणा से सेवागम तक की अनेक दार्शनिक विचारधाराओं का संदेश है। निराला जी में वेदान्त, योग, शाक्तमत, पन्त जी में मार्क्सवाद, अरविन्द दर्शन और गांधीवाद, महादेवी जी में बौद्ध करुणा तथा अद्वैत दर्शन की पर्याप्त अनुगूंज है।

भारतीय अध्यात्म के अतिरिक्त इन कवियों ने सामाजिक संचेतना के श्रेष्ठ पक्षों की ओर संकेत किया है और इन सबसे राष्ट्रीय एकता को समर्धन दिया है। प्रसाद जी ने अपने एक गीत – 'हिमालय के आंगन में जिसे प्रथम किरणों का दे उपहार' में 'भारत जय विजय करे' और पन्त जी का प्रसिद्ध गीत – 'भारतमाता ग्रामवासिनी' इन कवियों की राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना की दृष्टि से उल्लेखनीय है। प्रसाद जी ने विदेशी यात्री और शत्रु कन्या कार्नेलिया से भारत की वन्दना करायी है। उनका यह गीत राष्ट्रीय चेतना का अनन्य प्रमाण है कि यहाँ राष्ट्रीयता का ओजस्वी - तेजस्वी स्वर मुखरित हुआ है। तात्पर्य यह है कि राष्ट्रीय चेतना की दृष्टि से छायावाद सर्वाधिक सम्पन्न काव्य है।

2.6. छायावाद का रचना- शैली

छायावाद ने शिल्प विधि में अपनी पृथक पहचान बनाई है। इन कवियों के काव्य सौष्ठव को समझने के लिए इनके बिम्ब-विधान अथवा कल्पना विधान को भली-भांति समझना होगा और उसी के साथ-साथ इनकी काव्य-भाषा तथा काव्य शिल्प को भी।

2.6.1 स्वच्छंद कल्पना- नवीनता

छायावादी कविता का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पक्ष है- अनुभूति और कल्पना का नवीनता। प्रसाद जी का कल्पना - विधान तो बहुत ही विलक्षण है। कामायनी में श्रद्धा की मुख-छवि, कवि को घटाटोप के बीच में खिले गुलाबी रंग के बिजली के फूल जैसी प्रतीत होती है। उस मुख पर थिरकती हुई स्मृति को कवि ने अनेक उत्प्रेक्षाओं द्वारा स्थापित किया है। प्रसाद जी की कल्पनाएँ दीर्घकालीन होते हैं। प्रकृति के परिप्रेक्ष्य में उन्होंने बड़े विराट एवं सूक्ष्म बिम्ब प्रस्तुत किए हैं। कवि ने पृथ्वी को सिन्धु की सेज पर संकुचित बैठी हुई नवोढ़ा वधु के रूप में जिस प्रकार चित्रित किया है, वह एक विदग्ध कल्पना है 'सिन्धु सेज पर धारा वधू अब तनिक संकुचित बैठी सी'। इसी प्रकार हिमालयी प्रकृति को श्वेत कमल कहना और उस पर प्रतिबिम्बित अरुणिमा को 'मधुमय पिंग पराग' कहना विलक्षण

उक्ति है। कल्पना और अनुभूति का ऐसा मणिकांचन संयोग दुष्कर है। प्रसाद की काव्य कला बिंबविधायिनी कल्पना और रूपक रचना के सहारे व्यक्त हुई है। 'बीती विभावरी जागरी' शीर्षक गीत इसका असीम उदाहरण है। इन कल्पना चित्रों में बड़ी गूढ़ार्थ व्यंजना है। कवि ने अप्रस्तुतों का प्रयोग करके यत्र-तत्र बिंबमाला-सी उपस्थित कर दी है। बिंबधर्मिता उनकी काव्य कुशलता की सर्वोपरि सिद्धि है। निराला जी की बिंबविधायिनी क्षमता उनकी कई कविताओं जैसे- 'राम की शक्ति पूजा', 'सरोज स्मृति' और खण्डकाव्य 'तुलसीदास' में विशेषतः प्रकाशित हुई है।

निराला जी के बिंबों में व्यंजनातिशयता बहुत है। जनक - वाटिका में राम और सीता के मिलन पूर्व राम का यह चित्रण यहाँ रूपकातिशयोक्तिपूर्वक कितनी वचन - विदग्धता के साथ प्रस्तुत किया गया है-

'नयनों का नयनों से गोपन, प्रिय सम्भाषण!

पलकों का नव पलकों पर प्रथमोत्थान पतन

कांपते हुए किसलय, झरते पराग समुदय,

गाते खग नव जीवन परिचय तरु मलय वलय।'

पन्त जी तो 'कोमल कल्पनाओं के राजकुमार' कहे जाते रहे हैं। सुकुमार सौन्दर्य के सम्मूर्तन में उन्होंने अद्भुत क्षमता प्रदर्शित की है। गंगा की रूपहली रेतों और उस पर फैली चांदनी को देखकर कवि की कल्पना जागती है-

'सिकता की सस्मित सीपी पर, मोती सी ज्योत्सना रही विचर।'

छायावादी कवियों के अधिकतर काव्यांश बिंब, कल्पना, गूढ़ार्थ व्यंजना, रूपक-रचना आदि गुणों से ओतप्रोत होते हैं। वस्तुतः काव्य कल्पना के नवीनतम की दृष्टि से छायावादी काव्य अतुलनीय है।

2.6.2. काव्य-भाषा

काव्य-भाषा की बात की गई तो छायावादी कवियों ने काव्य शिल्प को सर्वाधिक प्राथमिकता दी है। प्रसाद जी के अनुसार काव्य के सौन्दर्य-बोध का मुख्य आधार है- शब्द विन्यास- कौशल। निराला ने भी काव्य के भावात्मक शब्दों को ध्वनि और शब्द व्यापार कहा है और पन्त ने शब्द चित्र, चित्र-भाषा तथा भावावेश मयी भाषा पर बल दिया है। वस्तुतः इन कवियों को शब्द प्रिय रहे हैं। निराला जी तो घोषणा करते हैं कि 'एक-एक शब्द बंधा ध्वनिमय साकार'। महादेवी जी भी टकसाली और स्वच्छ भाषा के प्रयोग में बहुत सचेत रही हैं। तात्पर्य यह है कि छायावादी काव्य भाषा ललित-लवंगी कोमल-कांत-पदावली की भाषा है। उसमें असाधारण लक्ष्यार्थ, व्यंग्यार्थ प्रतीकार्थ, अमूर्तन व्यापार और संप्रेषण की संवेदना है।

पन्त जी ने स्वेच्छापूर्वक पवन, वायु, भोर आदि को स्त्रीलिंग रूप में प्रयुक्त किया है। इन कवियों के कुछ प्रयोग बड़े वैचित्र्यपूर्ण हैं, जैसे तरूवासिनी (कोयल), शैवालिनी (सरिता), धरारमण (बसंत), कुंज - बिहारी (भ्रमर), शशि हासिनी (चांदनी), जलवाह (बादल) गंधबह (वायु) मलयबालिका (वायु) आदि। कोमलता के उद्देश्य से इन्होंने देशज और तद्भव शब्दों के अनेक प्रयोग किए हैं, जैसे परस (स्पर्श), नखत (नक्षत्र), दिग (निकट), पांति (पंक्ति) आदि।

निराला जी ने आंचलिक शब्दों के प्रयोग की अति कर दी है, जैसे नाधो, बद्धी, कौड़े, लेबारी, हरहा, लवनी, निवारी आदि। इन कवियों ने घरेलु बोलचाल की भाषा और मुहावरेदार का परहेज किया है। फिर भी इनमें वैविध्य

अपेक्षाकृत अधिक है। वाक्य रचना में इन्होंने संबोधनों और विस्मयादि बोधक शब्दों का अधिक प्रयोग किया है। इन्होंने मधु, लघु, स्वर्ण, नील आदि शब्दों को प्रयुक्त किया है।

2.6.3. काव्य-शिल्प

छायावादी काव्य तो सहज भावोच्छवास है। छायावादी कवियों ने प्रायः पाँच प्रकार के काव्य रूपों का प्रयोग किया है:1) मुक्तक काव्य; 2) गीति काव्य; 3) प्रबन्ध काव्य; 4) लम्बी कविताएँ तथा 5) नाट्य काव्य। इनमें मुक्तक काव्य सर्वाधिक लोकप्रिय रहा है। गीति काव्य इसी का अनिवार्य अंग है। प्रबन्ध काव्यों के अंतर्गत केवल 'कामायनी', 'प्रेम पथिक' (प्रसाद), 'ग्रन्थि', 'लोकायतन', 'सत्यकाम' (पन्त) और 'तुलसीदास' (निराला) का नाम उल्लेख किया जा सकता है। 'कामायनी' और 'तुलसीदास' उच्चस्तरीय महाकाव्य एवं खण्डकाव्य हैं, भले ही प्रबन्ध पद्धति की शास्त्रीयता का पूर्ण निर्वाह इनमें न मिलता हो। इन काव्यों में 'यूटोपिया' और 'फेन्टसी' का मुक्त प्रयोग किया गया है। लम्बी कविताओं में 'प्रलय की छाया', 'शेरसिंह का शस्त्र समर्पण', 'सरोज स्मृति', 'राम की शक्तिपूजा', 'परिवर्तन' आदि और गीतिकाव्य या काव्य-रूपकों में 'करूणालय', 'पंचवटी प्रसंग', 'शिल्पी', 'सौवर्ण रजत शिखर' (पन्त) आदि चिरस्मरणीय हैं। प्रसाद जी की कृति 'आंसू' एक प्रकार का एकार्थक मुक्तक है और छायावाद के विशिष्ट प्रबन्ध विधान का प्रतीक काव्य है।

निराला जी ने प्रथम बार मुक्त छन्द का आविष्कार करके कविता को तुकबंदी से मुक्त किया था। इन्होंने लोकधुनों को अपने छंदों में बांधा है और अपने कुछ नये छंद निर्मित किए हैं। इनके छंदों में ध्वन्यात्मकता का निर्वाह हुआ है और ओज, प्रसाद, माधुर्य तथा प्रायः समस्त कृतियों अथवा शैलियों का प्रयोग भी। तात्पर्य यह है कि इन कवियों का काव्य-शिल्प भावानुरूप कोमल, करुण और महाप्राणत्व से ओतप्रोत है। वस्तुतः छायावादी काव्य शिल्प - संरचना की दृष्टि से अत्यन्त पुष्ट एवं प्रौढ़ है।

2.7. छायावाद का महत्व

छायावाद का महत्व दो दृष्टियों से स्वीकार्य है। एक तो काव्योत्कर्ष या काव्य के विधायक उपादानों के कारण और दूसरे स्वतंत्र जीवन दर्शन के कारण। जो विद्वान छायावादी कवियों के विचार दर्शन से सहमत नहीं है, वे भी इन कवियों के कवित्व से अभिभूत रहे हैं। प्रसाद आधुनिक कविता के सुमेरू माने ही गये हैं, निराला को काव्य की प्राणवत्ता और पन्त को काव्य भाषा की स्निगधता के कारण बराबर याद किया जायेगा। एक प्रसंग में अज्ञेय जी ने बड़ी सटीक बात कही है- 'प्रसाद पढ़ाये जाने योग्य हैं, निराला पढ़े जाने योग्य हैं और पन्त जी से काव्य भाषा सीखने योग्य हैं।' महादेवी को भी विशिष्ट काव्य संवेदना, बिंब विधायनी क्षमता और एक टकसाली भाषा- अभिव्यंजना के कारण व्यापक समर्थन मिला है। तात्पर्य यह है कि इनके कवित्व पक्ष की सर्वत्र सराहना होती रही है और होती रहेगी। इनके विचार दर्शन के प्रति अवश्य अलग-अलग युगों में असहमति व्यक्त होती रही है। प्रगतिवादी आंदोलन में छायावादी कवियों की 'यूटोपिया' को 'पलायनवाद' का नाम दिया गया। 'दिनकर' ने चक्रवात की भूमिका में छायावादी शिल्प-संरचना पर बड़े तीखे प्रहार किये थे। पर उर्वशी तक आते-आते वे स्वयं छायावादी रुचि से प्रेरित और प्रभावित हो गये।

नई कविता में अज्ञेय, गिरिजाकुमार माथुर और शमशेर तक इस 'एब्सट्रेक्ट' बिंब-विधान से अरसे तक प्रभावित रहे हैं। अंतर केवल इतना है कि उसे शमशेर छायावाद न कहकर व्यर्थताबोध मानते हैं, अज्ञेय अस्तित्ववाद कहते हैं और गिरिजाकुमार माथुर लिए रूमानियत का प्रयोग किया जाता है। यह उल्लेखनीय है कि रूमानियत अर्थात्

स्वच्छंदतावाद अस्तित्वाद और 'एब्सट्रैक्ट' अर्थात् भावात्मक बिंबवाद छायावाद के ही घटक हैं। इसलिए प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नई कविता और 'अकविता' तक के आंदोलन में छायावादी भावभूमि प्रत्यक्ष परोक्ष रूप से सक्रिय दिखाई देती है। यही इसके महत्व को दो वर्गों में विभाजित किया गया है वे-

1. ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

2. प्रासंगिकता

2.8. सारांश

छायावादी काव्यान्दोलन हिंदी की एक विशिष्ट देन है। अन्य भारतीय भाषाओं के तत्कालीन साहित्य में भी इसी प्रकार की अन्तर्वस्तु एवं शिल्प से मिलते-जुलते कई प्रयोग देखे जा सकते हैं किन्तु केवल हिंदी में ही इनका विकास पूरे स्वतंत्र रूप से हो सका है। आधुनिक हिंदी साहित्य के इतिहास में तो एकमात्र यही काव्यांदोलन ऐसा है जिसे कविता का मौलिक आंदोलन भी कहा जा सकता है। भारतेन्दु युगीन और द्विवेदी युगीन नवजागरण ही नहीं, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद और नयी कविता से मिलते-जुलते प्रयोग भी देश-विदेश की कई भाषाओं में भिन्न-भिन्न नामों से चलते रहे हैं, जिनमें प्रचलन का श्रेय भी बाह्य तत्वों को ही अधिक है। केवल छायावाद ही एक ऐसा विशिष्ट तथा मौलिक अभियान है जो भारतीय संस्कृति के औपनिष्दक तत्वों को नव्यतम आधुनिक धरातल पर जागृत करने का सफल प्रयास करता है।

सन् 1915 ई. में सन् 1940 तक पूरी तरह व्याप्त रहने वाले इस काव्यान्दोलन तथा प्रवृत्ति के प्रसाद, निराला, पन्त और महादेवी जैसे प्रतिनिधि कवि अपनी विशिष्ट पहचान रखते हैं। इन कवियों के अतिरिक्त कुछ गौण या उत्तर छायावादी कवियों की भूमिका भी इसके उत्कर्ष में महत्वपूर्ण रही है । स्वच्छंदतावाद, वेदनावाद, नियतिवाद, प्रगतिवाद तथा कहीं-कहीं पलायनवाद जैसी प्रवृत्तियों का अंतर्भाव भी इसमें है किन्तु ये छायावाद से पूर्णतः पृथक हैं, उसकी पर्याय नहीं। यह काव्य ध्वनि तथा वक्रोक्ति बाद से प्रभावित भारतीय सौन्दर्य बोध की छायांकन - कला है जो मूलतः एक रूपवादी अवधारणा रहीं है और धीरे-धीरे यहीं एक विचारधारा के रूप में स्थापित हो गई है।

छायावादी कवियों ने कायावृत्ति अर्थात् मनोवृत्ति विशेष के रूप में व्याख्यायित किया है। वस्तु वैविध्य से समृद्ध इस छायावादी काव्य में प्रकृति - प्रेम, राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना, नारी के प्रति नव्यतम दृष्टिकोण, रूढ़ियों के प्रति मुक्ति का प्रयास, युगीन - सत्य और यथार्थ की सार्थक अभिव्यक्ति, व्यक्तिगत स्वातंत्र्य का स्वर तथा गीतात्मक मधुर वेदना- विशेषतः परिलक्षित होते हैं। काव्य भाषा के नये संविधान और कल्पना के नवोन्मेष के उपकरणों से समृद्ध अन्यतम रचना - विधान वाले इस प्रासंगिक काव्यान्दोलन का ऐतिहासिक महत्व सदैव स्मरणीय रहेगा।

2.9. बोध प्रश्न

1.छायावाद- पृष्ठभूमि पर नजर डालते हुए छायावाद का प्रारम्भ के बारे में बताइए।

2. छायावाद के प्रमुख कवियों (जयशंकर प्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', सुमित्रानन्दन पन्त, महादेवी वर्मा) के बारे में विस्तृत रूप में लिखिए।

3. छायावाद की अन्तर्वस्तु पर प्रकाश डालते हुए छायावाद का रचना-विधान के बताइए।

2.11. सहायक ग्रंथ

1. कवि निराला- नंददुलारे वाजपेयी- मैरूमिलन, दिल्ली।

2. क्रांतिकारी कवि निराला- बच्चन सिंह- विश्वविद्यालय, वारणासी।

3. प्रसाद का काव्य- प्रेमशंकर- भारती अण्डारख प्रयाग।

4. सुमित्रानंदन पंत-नगेन्द्र- नेशनल।

5. कवि पंत और उनकी छायावादी रचनाएँ- प्रो. पी. ए. राव, प्रगति प्रकाशन, आगरा।

6. हिंदी साहित्य- 20वीं शताब्दीः आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी।

7. छायावादः पुनर्मूल्यांकनः सुमित्रानन्दन पन्त।

8. छायावाद युगः शंभुनाथ सिंह, सरस्वती मंदिर, वाराणसी; 1962 छायावाद के गौरव चिह्नः प्रो. क्षेमेन्द्र।

9. छायावादी कवियों का सौन्दर्य विधानः डॉ. सूर्यप्रसाद दीक्षित।

10. छायावादः राजेश्वरदयाल सक्सेना।

11. छायावादी काव्यः डॉ. कृष्ण चन्द्र वर्मा; मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, म.प्र.।

12. नवजागरण और छायावादः महेन्द्र नाथ राम, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली।

डॉ. सूर्य कुमारी. पी.

3. छायावाद - युग

3.0. उद्देश्य

जिस प्रकार साहित्य के पूर्ण इतिहास को विविध युगों में बांटा जा सकता है, उसी प्रकार काल विशेष के साहित्य को विविध धाराओं था काल - खण्डों में विभाजित किया जा सकता है। भक्तिकाल में भक्ति की विविध धाराएँ एक ही परिवेश के विभिन्न प्रज्ञों से प्रेरणा पाकर प्रायः समान रूप से प्रवाहित होती रही। परंतु आधुनिक काल में साहित्य अनेक नए आविष्कारों को लेकर हमारे सामने आए हैं। साहित्य भी समय की गति से और विज्ञान के आविष्कारों और उनसे उत्पन्न होने वाले प्रभावों के कारण निरन्तर परिवर्तन होता रहा है। ऐसी स्थिति में उत्पन्न हुए अनेक वाद जैसे, छायावाद, प्रयोगवाद, प्रगतिवाद, रहस्यवाद आदि का प्रभाव साहित्य पर है। इस इकाई में हम छायावाद के बारे में जान पायेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद हम

-छायावाद का नामकरण, युग के बारे में जान पायेंगे।

-छायावाद के सामान्य विशेषताओं के बारे में जान पायेंगे।

-छायावाद के प्रमुख कवि और उनकी रचनाओं के बारे में जान पायेंगे।

रूपरेखा

3.1. प्रस्तावना

3.2. नामकरण-परिभाषाएँ

3.3. छायावादी काव्य की प्रवृत्तियाँ

- 3.3.1. आत्मवादी कविता
- 3.3.2. सौंदर्य भावना
- 3.3.3. प्रेम भावना
- 3.3.4. व्यक्तिवादिता
- 3.3.5. स्वच्छन्दता वाद
- 3.3.6. प्रकृति चित्रण
- 3.3. 7. राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्य धारा
- 3.3.8. नारी का गौरव गान
- 3.3.9, रहस्यवाद
- 3.3.10. भाषा शैली

3.4. छायावाद के कवि

3.5. सारांश

3.6. बोध प्रश्न

3.7. सहायक ग्रंथ

3.1. प्रस्तावना

'छायावाद' आधुनिक हिन्दी साहित्य का सशक्त काव्यान्दोलन है। यह द्विवेदी युग की उग्र प्रतिक्रिया के रूप में सामने आता है। कुछ विद्वान इसे रीतिकाल की भी प्रतिक्रिया मानते है। पर आधुनिक काल के विषय बोध, शिल्प विधान दोनों ही रीतिकाल से भिन्न हो गये थे। काव्य भाषा के रूप में खडीबोली की प्रतिष्ठा भी आधुनिक काल में हो गयीं थी। यह छायावाद युग की निकटतम पूर्व- स्थिति थी। छायावादी काव्य में न केवल द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मकता का विरोध हुआ, बल्कि, उसकी स्थूल और सरल पदावली की भी प्रतिक्रिया हुई और कविता अंतर्जगत् की ओर उन्मुख होकर सूक्ष्म, वक्र तथा सांकेतिक पदावली में अवतरित होने लगी। द्विवेदी-युग ने रीतिकालीन श्रृंगार-भावना का तीव्र विरोध किया, किन्तु इसकी जो प्रतिक्रिया छायावाद युग में लक्षित हुई, उसमें रीतिकालीन श्रृंगार भावना के सूक्ष्म तथा स्थूल दोनों रूपों की नवीन स्वीकृति दिखाई देती है- जो इस युग के यथार्थ- बोध के अनुकूल है।

द्विवेदी युग में राष्ट्रीयता के साथ आदर्श मानववाद तथा मानवतावाद स्थापित हुए। भाषा का व्याकरणिक दृष्टि से, नवीन यथार्थताओं और भावनाओं के अनुसार परिष्कार हुआ। गद्य आलोचनात्मक हो चली। राजनीतिक दृष्टि से गाँधी जी ने जो आदर्श बनाया था प्रायः वही द्विवेदी युगीन इतिवृत्तों को जन्म दिया था। सुधारवाद और नैतिकता के एकांकित आग्रह के कारण पश्चिम की रोमांटिक काव्यधारा से भारत का परिचय हो रहा था। इस धारा की वैयक्तिक अनुभूति प्रकृति प्रेम, कल्पना विलास आदि विशेषताओं ने हिन्दी कवियों को विशेष रूप से आकर्षित किया और रवीन्द्र की बंगला कविताएँ भी छायावादी कवियों के लिए प्रेरणा स्त्रोत बनी। प्रसाद, पन्त, निराला, महादेवी, रामकुमार वर्मा, नगेन्द्रशर्मा आदि इस धारा के प्रमुख कवि मानवाये हैं। ये सब समान मानसिकता से परिचालित थे। इस इकाई में हम छाया वाद के बारे में विस्तृत जानकारी के साथ-साथ रचनाओं के बारे में भी जानेंगे।

काल - सीमा: दो महायुद्धों के बीच (1918 - 1938) की स्वच्छन्दतावादी कविता को हिन्दी साहित्य के इतिहास में प्रायः 'छायावाद' के नाम से अभिरित किया गया है। छायावादी की कालावधि सन् 1918 से 1938 ई तक मानी गयी है। छायावादी काव्य का आरम्भ सन् 1913 के आसपास हुआ जैसे- निराला की, 'जूही की कली' 1996 ई, प्रकाशित हुई और पन्त कृत 'पल्लव' की कुछ कविताओं की रचना सन् 1920 के आसपास हुई थी। ये कविताएँ 'द्विवेदी युगीन' कविता से भिन्न प्रवृत्ति की थी। छायावादी कविता की अन्तिम सीमा सन् 1938 के लगभग मानी गयी है। जयशंकर प्रसाद कृत 'कामायनी' (1935) के बाद इस स्तर का कोई अन्य छायावादी ग्रन्थ का अवतरण नहीं हुआ। दूसरी ओर छायावाद के अन्य कवि पन्त के 'युगान्त' (1936) तथा निराला के 'अनामिका' काव्य-संग्रहों में ऐसी अनेक कविताएँ संग्रहीत है, जो काव्य-जगत में एक नये मोड का प्रतिनिधित्व करने वाली थी, अर्थात् प्रगतिवादी काव्य का आभास मिल रहा था। इस प्रकार सन् 1938 से छायावादी कविता की गति बहुत भन्द हो गई थी। इसलिए छायावाद की कविता की काल-सीमा को सन् 1918 से 1938 ई. तक मानना अनुचित न होगी।

नामकरण: हिन्दी में 'छायावाद' शब्द के प्रयोग का प्रथम श्रेय पं. मुकुटधर पाण्डेय को दिया जा सकता। उन्होंने 'हिन्दी में अनुवाद' शीर्षक से 'श्री शारदा' नामक तत्कालीन पत्रिका के जुलाई, सितम्बर, नवम्बर, दिसम्बर -

1920 के अंकों में चार निबन्धों का प्रकाशित किया। इन में उन्होंने लिखा है- "अंग्रेजी या किसी पाश्चात्य साहित्य अथवा बंग साहित्य की वर्तमान स्थिति की कुल भी जानकारी रखने वाले तो सुनते ही समझ जायेंगें कि यह शब्द (छायावाद) 'मिस्टिसिज्म' के लिए आया है।" इस प्रकार पाण्डेय जी ने 'छायावाद' को अंग्रेजी के 'मिस्टिसिज्म' के पर्याय के रूप में व्यक्त करने का प्रयत्न किया। पांडेय के बाद सुशीलकुमार जी ने छायावाद के बारे में अपने लेखों में लिखा। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी छायावाद को बंगला की रहस्यवादी कविताओं का अनुकरण मानते थे।

प्रारम्भ में रहस्यवाद और छायावाद का एक ही माना गया है। डॉ. केसरीनारायण शुक्ल ने लिखा है- रहस्यात्मक प्रतीकों थे युक्त कविता का नाम छायावादी कविता या रहस्यवादी कविता पडा। डॉ. गुलाबराय ने भी कहा "बंधायावाद और रहस्यवाद दोनों ही मानव और प्रकृति का एक आध्यात्मिक आधार बताकर एकात्मवाद की पुष्टि करते हैं।" आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है- "छायावाद का प्रयोग दो अर्थों में समझना चाहिए एक तो रहस्यवाद के अर्थ में जहाँ उसका संबंध काव्य वस्तु से होता है अर्थात जहाँ कवि उसे अनन्त और अज्ञात प्रियतम को आलम्बन कर अत्यत्न चित्रमयी भाषा में प्रेम की अनेक प्रकार से व्यंजना करता है। छायावाद का दूसरा प्रयोग काव्य शैली या पद्धति विशेष के व्यापक अर्थ में है। बाद में रहस्यवाद को मिस्टिसिज्म और छायावाद को रोमांटिसिज्म का घोतक माना गया है।

छायावाद का उदय: आधुनिक हिन्दी काव्यधारा में द्विवेदी-युग के पश्चात् कविता ने जो एक नई करवट ली है और जिसे 'छायावाद' नाम से अभिहत किया गया है, उसके उद्‌भव के भिन्न-भिन्न कारण बताये जाते हैं। शम्भुनाथ सिंह ने छायावाद के उदय का कारण बतलाते हुए लिखा है- 'छायावाद आधुनिक हिन्दी कविता की उस धारा का नाम है जो 1918 ई. के आसपास दिवेदी - युगीन नीरस, उपदेशात्मक, इतिवृत्तात्मक और स्थूल आदर्शवादी काव्यधारा के बीच से प्रमुखतः रीतिकालीन काव्य प्रवृत्तियों के विरुद्ध विद्रोह के रूप में प्रवाहित हुई।' इस तरह शम्भुनाथ सिंह ने छायावाद के उदय को द्विवेदी युगीन काव्य प्रवृत्ति की प्रतिक्रिया के रूप में स्वीकार किया है। किन्तु, आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने हिन्दी में छायावाद के उदय को बाहरी साहित्यिक प्रभाव के रूप में स्वीकारे हैं। वे कहते हैं- 'रूपात्मक आभास को यूरोप में छाया कहते थे। इसी से बंगाल में ब्रह्म समाज के बीच उक्त वाणी के अनुकरण पर जो आध्यात्मिक गीत था भजन बनते थे वे छायावाद कहलाने लगे। धीरे-धीरे यह शब्द धार्मिक क्षेत्र से वहाँ के साहित्य क्षेत्र में आया फिर रवीन्द्रबाबू की धूम मचाने पर हिन्दी साहित्य क्षेत्र में भी प्रकट हुआ'। सुमित्रानंदन पंत ने 'पल्लव' की भूमिका में छायावाद को अंग्रेजी 'रोमांटिसिज्म' से प्रभावित माना है।

इस प्रकार हम देखते है कि हिन्दी में छायावाद के उदय को लेकर आलोचकों ने अपनी भिन्न-भिन्न मान्यताएँ प्रकट की हैं। छायावाद के उदय को किसी ने द्विवेदी युगीन जड़ जर्जर इत्तिवृत्तात्मक कविता के विरुद्ध प्रतिक्रिया स्वरूप माना है तो किसी ने यूरोप के रोमीटिसिज्म का प्रभाव माना और किसी ने बंगला का प्रभाव माना। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी कहते हैं- "छायावाद एक विशाल सांस्कृतिक चेतना का परिणाम था, यद्यपि उसमें नवीन शिक्षा के परिणाम होने के चिह्न स्पष्ट है, तथापि वह केवल पाश्चात्य प्रभाव नहीं था, कवियों की भीतरी व्याकुलता ने ही नवीन भाषा-शैली में अपने को अभिव्यक्त किया।"

3.2. परिभाषाएँ:

हिन्दी में अनेक अलोचकों ने छायावाद की परिभाषा देते हुए उसके स्वरूप को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया था ।

- **डॉ. रामकुमार वर्मा के अनुसार**

'परमात्मा की छाया आत्मा में पड़ने लगती है और आत्मा की छाया परमात्मा में। यही छायावाद है।"

- **गंगा प्रसाद पांडेय के अनुसार**

"छायावाद नाम से ही उसकी छायात्मकता स्पष्ट है। विश्व की किसी वस्तु में एक अज्ञात सप्राण छाया की झांकी पाना अथवा उसका आरोप करना ही छायावाद है।"

- **डॉ. नगेंद्र के शब्दों**

"छायावाद एक विशेष प्रकार पद्धति है- जीवन के प्रति एक विशेष भावात्मक दृष्टिकोण है।"

- **आचार्य रामचंद्र शुक्ल के शब्दों**

"छायावाद का सामान्यतः अर्थ हुआ प्रस्तुत के स्थान पर उसकी व्यंजना करने वाली छाया के रूप में अप्रस्तुत का कथन। इस शैली में भीतर किसी वस्तु या विषय का वर्णन किया जा सकता है।"

इन परिभाषाओं से यह ज्ञात होता है कि छायावाद कवि हृदय की एक गहन अनुभूति है। वह केवल भाव पद्धति अथवा काव्य-कला की अभिव्यक्त ही मात्र नहीं है। छायावाद में भावों की नवीनता है, दर्शन है। कला की दृष्टि से श्रेष्ठ है।

3.3. छायावादी काव्य की प्रवृत्तियाँ

3.3.1. आत्मवादी कविता

छायावादी काव्य की प्रमुख प्रवृत्ति आत्मगत कविता है। छायावाद युग में कवि के मनोवेग तीव्रता के साथ उभर कर आये है। छायावादी कवियों ने काव्य की विषय वस्तु अपने व्यक्तिगत जीवन से ही खोजने का प्रयास किया। अपने जीवन के निजी प्रसंगों, घटनाओं एवं व्यक्तिगत भावनाओं को अनेक छायावादी कवियों ने काव्य वस्तु बनाया। छायावादी कविता में वैयक्तिक, सुख-दुःख की खुलकर अभिव्यक्ति हुई। कवि की आत्माभिव्यक्ति में अहं की प्रधानता होने के कारण उसने 'मैं' की शैली अपनाई। मैं के माध्यम से ही कवि ने विश्व को देखा। छायावादी कवि ने बाह्य वस्तु को अपनी भावना तथा के रंग में रंग कर देखा साथ ही सुख-दुख, आशा निराशा, संघर्ष आदि की अभिव्यक्ति स्तर स्पष्ट रूप से की। प्रसाद कृत 'आँसू' काव्य और पंत कृत 'उच्छवास' नामक कविता इस कथन के समर्थन में देखा जा सकती है। पन्त जी ने अपनी 'प्रिया' को मन मन्दिर में बसाकर उसे पूजने का उल्लेख इस प्रकार है -

विधुर उस के मृदुभावों से तुम्हारा कर जित नव श्रृंगार।

पूजता हूँ मैं तुम्हें कुमारि, मूंद दुहरे दृग द्वार द्यद्य॥

निराला की कई कविताओं में उनके व्यक्तिगत जीवन का सत्य व्यक्त हुआ है। ''राम की शक्ति पूजा' में राम की हताशा, निराशा में कवि के अपने जीवन की निराशा की अभिव्यक्ति हुई है। उन्हें जीवन भर लोगों के जिस विरोध को झेलना पड़ा उसकी गूंज

धिक जीवन जो जाता है।

आया है विरोध

धिक साधन जिसके

लिए सदा ही किया शोध।

जयशंकर प्रसाद ने अपनी अतीत के सुखों का वर्णन करते 'लेहर' में लिखा है-

तुम्हारी आँखों का बचपन

खेलता था जब अल्हड खेल,

अजिर के उर ने भरा कुलेल,

हारथा था हँस हँसकर मन !

आह रे, वह अतीत यौवन।

इस प्रकार छायावादी कवि ने अपनी आत्मनिष्ठ भावना की प्रधानता के कारण अपनी वैयक्तिक अनुभूतियों की अभिव्यंजना अत्यन्त सफलता के साथ की। आत्मनिष्ठ भावना की प्रधानसमस्याओं की ओर अधिक नहीं गया। डॉ. नग्रेन्द्र का कथन है- छायावाद की कविता का विषय अन्तरंग व्यक्तिगत जीवन हुआ, छायावाद का कवि आत्म तल्लीन हो कर कविता लिखने लगा। उसका यही व्यक्ति भाव प्रसाद में आनन्दवाद और निराला में अद्वैतवाद के रूप में प्रकट हुआ। पन्त में उसने आत्म रीति का रूप धारण किया और महादेवी में परोक्ष रीति का।

3.3.2. सौंदर्य भावना

छायावाद काव्य की दूसरी प्रमुख प्रवृत्ति सौंदर्यानुभूति की अभिव्यक्ति है। छायावादी कवि ने संसार की प्रत्येक सुन्दर वस्तु के साथ अपने हृदय के संगात्मक संबंध को स्थापित किया और इसके लिए वह सदैव उत्सुक भी रहा है। छायावाद के कवि बाह्य सौंदर्य के स्थान पर आन्तरिक सौंदर्य की ओर ही आकृष्ट हुआ। छायावाद कवि की सौंदर्य भावना सूक्ष्म एवं उदात्त है। सौन्दर्य चित्रण में वे वस्तु प्रधानता के स्थान पर भाव-प्रधानता को महत्व दिए हैं।

नेत्रों के सौंदर्य एवं उसके प्रभाव की व्यंजना इन पंक्तियों में प्रसाद जी ने अत्यन्त आकर्षक ढंग से की है—

कमल से जो चारु को दो खंजन प्रथम।

पंख फड़काना नहीं थे जानते ॥

चपल चोखी चोट कर अब पंख की।

विकल करते भ्रमर को आनन्द से ॥

शारीरिक अंगों की कान्ति का वर्णन भी उसमें बड़े आकर्षक ढंग से हुआ है। कामायनी में प्रसाद जी ने श्रद्धा के सौन्दर्य का वर्णन निम्न प्रकार किया है-

नील परिधान बीच सुकुमार
खुल रहा मृदुल अधखुला अंग।
खिला हो ज्यों बिजली का फूल
मेघ बन बीच गुलबी रंग ॥

निराला का भाव-प्रवण हृदय प्रकृति में नारी - सौन्दर्य का दर्शन करता है -

पहचाना अब पहचाना
हाँ उस कानून में खिये हुए तुम
चूम रहे थे झूम-झूम उषा के स्वर्ण कपोल,
अठखेलियाँ तुम्हारी प्यारी-प्यारी
व्यक्त इशारे से ही सारे बोल मधुर अनमोल –

(परिमल में)

3.3.3. प्रेम भावना

छायावादी काव्य का अधिकांश भाग प्रेम तथा प्रेम की पीड़ा से ओत-प्रोत है। इन कवियों का लौकिक प्रेम, आध्यात्मिक प्रेम में परिवर्तित है। जयशंकर प्रसाद ने 'प्रेम-पथिक' में प्रेम की महिमा, उसकी अनन्तता, उसकी पवित्रता का गान करते हुए लिखा है-

'प्रेम यज्ञ में स्वार्थ और कामना हवन करना होगा।
तब तुम प्रियतम स्वर्ग -बिहारी होने का फल पाओगे;
प्रेम पवित्र पदार्थ, न इसमें कहीं कपट की छाया हो
इसका परिमित रूप नहीं जो व्यक्ति मात्र में बना रहे
क्योंकि यही प्रभु का स्वरूप है जहाँ कि सब की समता है।'

छायावाद में प्रेम-प्रसंगों की विविधता मिलती है। प्रेम की सभी मनोदशाओं जैसे- मिलन, विरह, उत्कंठा, स्मृति, रूप वर्णन आदि का जितना सूक्ष्म में मिलता है, उतना अन्यत्र नहीं। छायावादी कवि प्रेम के जिस आदर्शवादी रूप को ग्रहण किया है, वह उनके जीवन का दर्शन भी बन गया है। इन कवियों, ने श्रृंगार के संयोग एवं वियोग दोनों पक्षों के आकर्षक चित्र अंकित किए। निराला ने 'जूही की कली' नामक कविता के प्रतीकों से प्रेम प्रसंगों का निरूपण किया-

निर्दय उस नायक ने

निपट निठुराई की। झोंकों की

झाडियों से,

सुन्दर सुकुमार देह

सारी झकझोर डाली।

पन्त के काव्य में प्रेम और श्रृंगार भावना की बडी सहज अभिव्यक्ति हुई है। क्रिया का आकर्षण मन को पागल कर देता है-

'तुम हो लावण्य मधुरिमा जो असीम सम्मोहन

तुम पर प्राण निछावर करने पागल हो उठता मन।'

नहीं जानती क्या निज बल तुम; निज अपार आकर्षण ?"

वियोग श्रृंगार के अति भव्य चित्र प्रसाद कृत आँसू में उपलब्ध होते हैं। प्रिया के वियोग से मन की विकलता कितनी तीव्र हो गई है, इसका चित्र इन पंक्तियों में देखा जा सकता है:

झंझा झकोर गर्जन था बिजली थी नरिद माला।

पाकर इस शून्य हृदय को सबने आ घेरा डाला॥

तुम सुमन नोचते सुनते करते जानी अनजानी॥

-प्रसाद

कविवर पन्त ने भी वियोग व्यथा का मार्मिक वर्णन अपनी कविताओं सें में किया है। वे तो यह मानते हैं कि कविता का जन्म ही वियोग व्यथा से हुआ होगा। उप प्रेम की आहों ने ही कविता का रूप धारण कर लिया होगा।

'वियोगी होगा पहला कवि,

आह से उपजा होगा गान।

निकलकर आंखों से चुपचाप,

वही होगी कविता अनजान।

-पन्त

महादेवी वर्मा 'यामा' की भूमिका में लिखती है- "दु:ख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है जो सारे संसार को एक सूत्र में बाँध रखने की क्षमता रखता है। हमारे असंख्य सुख हमें चाहे मनुष्यता की पहली सीढ़ी तक भी न पहुँचा सके, किन्तु हमारा एक बूँद आँसू भी जीवन को अधिक मधुर, अधिक उर्वर बनाये बिना नहीं गिर सकता।" प्रसाद ने अपनी असीम वेदना को 'आँसू' की निम्नलिखित पंक्तियों में इस प्रकार व्यक्त किया है -

"अभिलाषाओं की करवट, फिर सुप्त व्यथा का जगना,

सुख का सपना हो जाना, भीगी पलकों का लगना।"

छायावाद में वेदना की अभिव्यंजना के तीन रूप मिलते हैं।

1. विश्वमयी वेदना की सूक्ष्म अभिव्यक्ति
2. अन्यों के दुःख से उत्पन्न सहानु- भूर्ति की भावना व करुणा की अभिव्यक्ति।
3. स्वयं के जीवन का असफलताओं से उत्पन्न करुणा की विषादमयी अभिव्यक्ति ।तात्पर्य यह है कि छायावादी कवि की वेदना लौकिक है तो कही आध्यात्मिक।

छायावाद में वेदना के अधिनय का कारण बताते हुए डॉ. सुधीन्द्र लिखते हैं- "राष्ट्रीय भाव भूमिका के कारण भी यह वेदना सहज ही आ गई, देश पराधीन है। समाज दुखी है, जीवन त्रस्त है, तब कवि के मन में मुक्त उल्लास नहीं, एक गूढ़ वेदना ही स्थान पा सकती थी।"

3.3.4. व्यक्तिवादिता

हिन्दी कविता में छायावाद के रूप में व्यक्तिवादी भावनाएँ मुखरित हुई। लौकिक, अलौकिक, प्रेममयी कविता में तथा राष्ट्रीय अथवा मानवतावादी काव्य में छायावादी कवि समाज के बन्धनों से मुक्त होना चाहता है। वह प्राचीन रूढ़ियों बंधन से मुक्त होकर स्वच्छन्द रूप से काव्य रचना की ओर बढ़ना चाहता। यह एक प्रकार प्राचीन परंपराओं के प्रति विद्रोह ही है। छायावादी काव्य में कवियों की व्यक्तिवादी भावनाओं को व्यापक अभिव्यक्ति हुई है। इस अभिव्यक्ति ने 'अहंवाद' का रूप ग्रहण किया। छायावाद के कवियों की यह अहंवाद वैयक्तिक अनुभूतियों के आग्रह

में व्यक्त हुई। इसके तीन रूप मिलते हैं।

(1) आत्मरति, आत्म - प्रशंसा, आत्मविश्वास के रूप में,

(2) व्यक्तिगत निराशा, प्रेम की असफलता, वंदना रूप में;

(3) शारीरिक सौन्दर्य के चित्रण के रूप में।

3.3.5. स्वच्छन्दतावाद

हिन्दी में 'स्वच्छन्दतावाद' शब्द प्रायः अंग्रेजी शब्द 'रोमांटिसिज्म' के पर्याय के रूप लिया जाता है। छायावादी काव्य में स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन का प्रभाव परिलक्षित होता हैं। छायावादी काव्य में प्रगीत मुक्तकों, गीतों तथा गीत प्रबन्धों की प्रधानता है। समस्त छायावादी कवियों ने रहस्य भावना का चित्रण किया है। इसलिए शुक्ल जी ने छायावादी को रहस्यवाद का पर्याय माना है। छायावाद का प्रयोग दो अर्थों में समझना चाहिए। एक तो रहस्यवाद के अर्थ में, जहाँ उसका सम्बन्ध काव्य से होता है अर्थात जहाँ कवि उस अनंत तथा अज्ञात प्रियतम को आलंबन बनाकर अत्यन्त चित्रमयी भाषा में प्रेम की अनेक प्रकार से व्यंजना करता हैं। उदा :

तुम मुझ में प्रिया फिर परिचय क्या...

और करू जग में संचय क्या।

स्वयं प्राणों से जलकर वह प्रियतम के मार्ग को आलोकित

करना चाहती है।

- महादेवी वर्मा

उदा- 'मौन रही हार। प्रिय पथ पर चलती
सब कहते श्रृंगार।'

(निराला)

उदा: गंगा नील इस परम व्योम में अंतरिक्ष में ज्योतिर्मान।
सिर नीचा कर किसकी सत्ता सब करते स्वीकार यहाँ।

(प्रसाद)

शैली में छायावादी कवि ने स्वच्छन्द मार्ग को अपनाया है। अर्थात नवीन छन्द, लय आदि को अपनाया है। निराला की 'गीतिका' को आत्मगत अनुभूति की संगीतात्मक अभिव्यक्ति कहा जाता है। छायावादी काव्य में कवि ने वैयक्तिक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति की है। छायावाद में वीर-गीत, शोक-गीत, व्यंग्य-गीत, सम्बोधन गीत, गीत - नाट्य आदि गीति काव्य भी पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं।

3.3.6. प्रकृति-चित्रण

छायावाद में प्रकृति का जिन रूपों में चित्रण हुआ है, उतने रूपों में छायावाद से पूर्व या बाद की कविता में नहीं हुआ। छायावाद में प्रकृति का आलम्बन विभाव, उद्दीपन विभाव, अलंकार, परोक्ष की अभिव्यक्ति, उसके प्रतिबिम्ब, प्रतीक आदि के रूपों में सूक्ष्म चित्रण हुआ है। छायावादी कवियों ने प्रकृति सजीव रूप में देखा है। इन कवियों ने प्रकृति पर मानवीय चेतना का आरोप करते हुए उसे हंसते- रोते हुए भी दिखाया है:

"अचिरता देख जगत की आप,
शून्य भरता समीर विश्वास।
डालता पातों पर चुपचाप,
ओस के आंसू नीलाकाश।"

यहाँ वायु को ठण्डी सांस भरते हुए, आकाश को रोते हुए दिखाया गया है। सुमित्रानंदन पन्त के काव्य में प्रकृति चित्रण का क्षेत्र अत्यन्त विशाल है। वे प्रकृति को ही अपनी काव्य-प्रेरणा माना है और प्रकृति सौंदर्य को नारी सौंदर्य पर वरीयता देते हैं। 'मोह' नामक कविता में वे स्पष्ट रूप से स्वीकार करते हैं कि नारी सौंदर्य में आकर्षण होता है, पर वह इतना नहिं कि प्रकृति सौन्दर्य की उपेक्षा करवा सके-

छोड़ द्रुभों की मृदु छाया
तोड़ प्रकृति से भी माया
बाले ! तेरे बाल - जाल में कैसे उलाझा दूं 'लोचन', भूल अभी से इस जग को।

जयशंकर प्रसाद ने प्रकृति का उद्दीपन, प्रतीक, संकेत रूप में चित्रण किया है। महादेवी वर्मा ने प्रकृति-चित्रण के माध्यम से परोक्ष-सत्ता की अभिव्यक्ति की है। 'धीरे-धीरे उतर क्षितिज से आ वसंत रजनी' कहकर महादेवी ने प्रकृति को अभिसारिका के रूप में देखा है। प्रकृति-चित्रण की दृष्टि से कवियों ने प्रकृति का मानवीकरण के रूप में अधिक वर्णन किया है। सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला ने 'परिमल' में 'सन्ध्या' को सुन्दरी के रूप में चित्रित किया है।

"दिवसाषसान का समय

मेघमय आसमान से उत्तर रहो हैं,

यह सन्ध्या सुन्दरी परी-सी,

धीरे धीरे धीरे।"

3.3.7. राष्ट्रीय - सांस्कृतिक काव्य - धारा

छायावाद काव्य में राष्ट्रीयता के स्वर भी मुखरित हुए है। छायावाद कालीन भारत परतंत्र था। अतः युगीन कवियों ने स्वतंत्रता - आन्दोलन में भाग लेने की प्रेरणा दी। साथ ही देश की आंतरिक विषमताओं को दूर करने का प्रयत्न भी किया। रामनरेश त्रिपाठी, माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' तथा सुभद्राकुमारी चौहान ऐसे साहित्यकार थे, जिन्होंने केवल अपने काव्य में स्वतंत्रता - संग्राम का उद्घोष ही नहीं किया, बल्कि वे स्वतंत्रता आन्दोलन में सीधे भाग भी लिये। पं. माखनलाल चतुर्वेदी ने 'कैदी और कोकिल' नामक कविता में अपनी राजनीतिक अनुभूति की अभिव्यक्ति करते हुए लिखा है-

"क्या? देख न सकती जंजीरों का गहना।

हथकडियाँ क्यों? यह ब्रिटिश राज्य का गहना।"

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने तत्कालीन शोषित भारत के सुधार के लिए राष्ट्र की जनता को क्रान्तिमयी चेतना की ओर उन्मुख करते हुए विद्रोह के स्वर में लिखा है -

"ओ भिगमंगे, अरे पराजित, ओ मजबूम अरे चिरदोहित,

तू अखण्ड भण्डार शक्ति का जाग अरे निदा सम्मोहिता।"

छायावादी कवियों ने तत्कालीन भारत दुर्दशा को मिटाने के लिए भारत के स्वर्णिम अतीत का गुणगान किया। निराली की 'दिल्ली' कविता इसका एक उदाहरण है। कवियों ने प्राचीन महापुरुषों का भी गान किया। इस प्रकार छायावादी कवियों की राष्ट्रीय आकांक्षा में भी समाहित थी। प्रसाद जी ने अपने नाटकों में जो गीत योजना की है, उसमें राष्ट्रीय अभिव्यक्ति हुई है। उन्होंने भारत के अतीत गौरव के चित्र अंकित करते हुए देश की महिमा का वर्णन किया है :

अरुण यह मधुमय देश हमारा।

जहां पहुंच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।

माखनलाल चतुर्वेदी के गीतों में राष्ट्रभक्ति अपने चरम उत्कर्ष पर हैं। 'पुष्प की अभिलाषा' में उन्होंने एक पुष्य की यह इच्छा व्यक्त की है कि उसे शहीदों के चरणों तले आने का सौभाग्य मिले:

"मुझे तोड़ लेना वनमाली उस पथ पर तुम देना फेंक

मातृ भूमि पर शीश चढ़ाने जिस पथ जावें वीर अनेक ।।"

छायावादी कवियों ने जन-मानस में जागरण और संघर्ष के भावों का संचार करने के लिए जनता को मुख्य रूप से यह बताया कि प्रत्येक व्यक्ति असीम अक्षय शक्ति का स्त्रोत है। आवश्यकता इस बात की है कि वह इसे पहचानने और आत्मविश्वास के साथ संघर्ष के लिए तैयार हो जाए। 'नवीन' ने इन पंक्तियों में 'चिरदोहित' और 'भिखमंगे' भारत को जगाने का प्रयास किया है।

"ओ भिखमंगे, अरे पराजित, ओ अल्लूम, अरे चिरदोहित

तू अखण्ड भण्डार शक्ति का, जाग अरे निद्रा सम्मोहित ।"

जनता में आत्मविश्वास का संचार करने का दूसरा उपाय था- अतीत की गरिमा का सजीव चित्रण। आज का भारत इतना विकसित हो जाने पर भी अपनी प्राचीन वैदिक परम्परा से जुड़ा हुआ है। छायावादी कवियों ने इस दिशा में एक व्यापक प्रक्रिया को अपनाया । राष्ट्रीय कवियों की भाँति राम, कृष्ण, भीम, अर्जुन, हरिश्चन्द्र आदि प्राचीन युगपुरुषों के चरित्रों के उदाहरण देकर जनता में विश्वास और आस्था पैदा करने का प्रयत्न किया।

प्राप्त इसे दूर के अतल से

सत्य हरिश्चन्द्र की अटलता,

लब्ध इसे ताराग्रह मण्डल से

श्री प्रहलाद की अनन्त भक्ति समुज्ज्वलता है।

-सियारामशरण गुप्त

निराला ने भी 'दिल्ली' कविता में देश के अतीत गौरव के साथ वर्तमान दुर्दशा का चित्रण कर एक गम्भीर प्रभाव की अभिव्यक्ति की है; क्या यह वही देश है-

भीमार्जुन आदि का कीर्तिक्षेत्र

चिरकुमार भीष्म की पताका ब्रह्मचर्य - दीप्त

उड़ती है आज भी जहां के वायुमण्डल में

उज्ज्वल अधीर और चिरनवीन ?

श्री मुख से कृष्ण के सुना था जहां भारत ने

गीता गीत – सिंहनाद।

इस प्रकार इन कवियों ने वर्तमान को अतीत से सम्बद्ध करके वर्तमान में उत्साह और महानता का उद्‌बोध करने का प्रयास किया। शुभद्राकुमारी चौहान ने असहयोग और बलिदान की प्रेरणा देते हुए कहा है-

विजयिनी मां के वीर सुपुत्र पाप से असहयोग ले ठान

गुंजा डालें स्वराज्य की तान और सब हो जावें बलिदान।

इस काव्यधारा की अनेक रचनाओं में मातृभूमि की महिमा का वर्णन करने के सन्दर्भ में उसे देवी के रूप में भी चित्रित किया गया है। निराला ने भारत माता का चित्र इन पंक्तियों में व्यवत किया है-

भारति, जय विजय करे

कनक, शस्य कमल धरे।

लंका पदतल शतदल

गर्जितोर्मि सागर जल।

इस प्रकार की रचनाओं के दुवारा कवियों ने जनता में देश के प्रति प्रेम और भक्ति की भावनाएं उत्पन्न करने का प्रयास किया है। इस तो युग के प्रायः सभी कवियों ने देश के अतीत गौरव के प्रति अटूट श्रद्धा व्यक्त की ही है, साथ ही उनका यह दृढ़ विश्वास भी है कि शीघ्र ही देश पराधीनता और अत्याचार के दमन-चक्र से मुक्त होगा और फिर से एक नयी विशद और भव्य सामाजिक व्यवस्था का उदय होगा।

3.3.8. नारी का गौरव-गाना

छायावादी काव्य में नारी - सहगामिनी, सहयोगिनी, सहचारिणी, माता, बहन, देवी प्रियतमा आदि रूपों में चित्रित है। इन कवियों का नारी चित्रण छायावादी कवियों की उदारता निखार्थता, विलासहीनता का उदाहरण है। नारी के इन विविध रूपों का चित्रण पहली बार छायावाद में ही हुआ है। छायावाद में नारी विलासिता की वस्तु नहीं है, अपितु वह जीवन को समतल प्रदान करने वाली है। वह दया, क्षमा, करुणा, प्रेम की देवी है और अपने इन गुणों के कारण श्रद्धा की पात्र है। पन्त की इन पंक्तियों को देखेंगे।

"नारी तुम केवल श्रद्धा हो

विश्वास रजत-नभ पद-तल में,

पीयूष-स्त्रोत सी बहा करो

जीवन के सुन्दर समतल में।"

प्रसाद जी के हृदय में नारी का बहुत ऊँचा स्थान था। निम्न पंक्तियों से उनके विचारों को जाना जा सकता है:

"तुम देवि! आह कितनी उदार

वह मातृमूर्ति है निर्विकार।

हे सर्वमंगले! तुम महती

सबका दुख अपने पर सहती।"

निराला ने भी नारी को पुरुष के हृदय में आशा का संचार करने वाली शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित किया। राम की शक्ति पूजा में राम के निराश हृदय में सीता की स्मृति मात्र से आशा का संचार होते दिखाया गया-

"ऐसे क्षण अन्धकार धन में जैसे विद्युत।

जागी पृथ्वी तनया कुमारिका छवि अच्युत"

3.3.9. रहस्यवाद

छायावादी कवि ने अपनी आन्तरिक अनुभूतियों को प्रकट करने में रहस्यवादी भावना की अभिव्यक्ति की है। इस अभिव्यक्ति के माध्यम से निराला ने अपने तत्व ज्ञान का परिचय किया। पन्त प्राकृतिक सौंदर्य से तथा महादेवी प्रेम और वेदना से रहस्योन्मुख हुए। इन कवियों का रहस्यावाद भावात्मक रहा है। महादेवी के काव्य से विरहानुभूतियों की सबसे अधिक है। समस्त छायावादी कवियों ने रहस्य भावना का चित्रण किया है। इसलिए शुक्लजी ने छायावादी को रहस्यवाद का पर्याय माना है। 'छायावाद का प्रयोग शहस्यवाद के अर्थ में, जहाँ उसका संबंध काव्य से होता है अर्थात जहाँ कवि उस अनंत तथा अज्ञान प्रियतम की आलंबन बनाकर अत्यन्त चित्रमयी भाषा में प्रेम की अनेक प्रकार से व्यंजना करता है।

"तुम मुझ में प्रिया फिर परिचय क्या

और करू जग ने संचय क्या।"

इसमें महादेवी वर्मा स्वयं प्राणों से जलकर वह प्रियतम के मार्ग आलोकित करना चाहती है।

"मौन रही हार। प्रिय पथ पर चलती।

सब कहते श्रृंगार।"

- (निराला)

प्रियतम का पथ आलोकित जहाँ उस प्रियतम से मिलने के लिए निराला की आत्मा अभिसारिका बनती है।

"लगा नील इस परम व्योम में, अंतरित में ज्योतिर्मान।

सिर नीचा कर किसकी सत्ता सब करते स्वीकार यहाँ।"

(प्रसाद)

प्रसाद जी उस परम प्रिय का आभास कण-कण में व्याप्त देखता है।

3.3.10. भाषा-शैली

सूक्ष्म निरीक्षणता तथा रागात्मकता के कारण छायावाद की भाषा – 'चित्रमयी भाषा' हो गई है। विशेषणों के प्रयोग से छायावाद का काव्य-सौन्दर्य बढ़ गया है। लाक्षणिकता एवं व्यंजकता के कारण भी भाषा चित्रमयी हो गयी है। संस्कृत के तत्सम शब्दों का आधिक्य है, साथ में कुछ मात्रा में लोक-प्रचलित शब्दों का प्रयोग भी हुआ है। कोमल कान्त पदावली, छायावादी भाषा भी एक विशेषता है।

छायावादी काव्य में गूढ़ (सांकेतिक), गुम्फित (क्लिष्ट), आलंकृत तथा सरल शैली का प्रयोग हुआ है। छायावादी कवि बन्द, लय, अन्त्यानुप्रास आदि बन्धनों से मुक्त है। यद्यपि इस काव्य छन्दों की विविधा, मौलिकता व

नवीनता पायी जाती है। प्रायः मुक्त छन्द का प्रचार ही अधिक है। शब्दालंकारों में अनुप्रास, चमक, वक्रोक्ति, क्लेश आदि का प्रयोग है। सादृश्य मूलक अलंकारों में उपमा, उत्प्रेस, रूपक, दृष्टान्त आदि का प्रयोग है।

3.4. छायावाद के प्रवर्तक और प्रमुख कवि

आलोचकों में छायावाद के प्रवर्तक के सम्बन्ध में काफी मत-भेद है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने मैथिलीशरण गुप्त तथा मुकुटधर पाण्डेय को छायावाद के प्रवर्तक माना है। इस मत के विपरीत इलाचन्द्र जोशी ने जयशंकर प्रसाद को छायावाद का प्रवर्तक माना तो विजयमोहन शर्मा एवं प्रभाकर माचवे ने माखनलाल चतुर्वेदी को छायावाद का प्रवर्तक माना। नन्ददुलारे बाजपेत्री ने सुमित्रानन्दन पन्त को छायावाद का प्रवर्तक मानते हुए लिखा है –"साहित्यिक दृष्टि से छायावादी काव्य-शैली का वास्तविक अभ्युदय सन् 1920 के पूर्व-पश्चात सुमित्रानन्दन पंत की 'उच्छवास' नाम की काव्य पुस्तिका के साथ माना जा सकता है।" इस तरह छायावाद के प्रवर्तक के रूप में भिन्न-भिन्न स्तर व्यक्त हुए हैं। ऐसी स्थिति में किसी एक कवि को प्रवर्तक के रूप में सिद्ध करना कठिन है। क्योंकि आज तक इस सम्बन्ध में जितने भी मत प्रकट हुए, उसका कारण आलोचकों को अपनी दृष्टि, अपनी रुचि हैं। डॉ. प्रेमनारायण शुक्ल के शब्दों में अन्ततः कहा जा सकता है कि "श्रीधर पाठक, मुकुटधर पाण्डेय, माखनलाल चतुर्वेदी आदि की रचनाओं में छायावादी काव्य का स्वरूप अंकुरित हुआ और प्रसाद, निराला पन्त महादेवी वर्मा, रामकुमार वर्मा आदि की रचनाओं में वह एक हरे-भरे लहलहाते हुए पादप के रूप में विकसित हुआ।

छायावादी कवियों में मुख्य स्थान जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, सुमित्रानंदन पंत, महादेवी वर्मा को मिलता है तो इस युग के अन्य कवि रामनरेश त्रिपाठी, नवीन, माखनलाल चतुर्वेदी, डॉ. रामकुमार वर्मा, उदयशंकर भट्ट, मोहनलाल महतों वियोगी, लक्ष्मीनारायण मिश्र, जनार्दन प्रसाद झा 'द्विज' आदि हैं।

3.5. सारांश

हिन्दी साहित्य के इतिहास में 'छायावाद' का युग सन् 1918 से सन् 1936 तक माना जाता है। इस काल में जितने भी काव्य लिखे गए है उन सब की काव्यगत विशेषताएँ एक जैसा ही है। छायावाद युग भारतीय जीवन के विकास में अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभायी हैं। यह युग भारत के लिए आधुनीकरण का युग है। आधुनिक हिन्दी साहित्य का 'छायावाद' सशक्त काव्यांदोलन है। छायावाद काव्य में राष्ट्रीयता के साथ आदर्श मानववाद तथा मानवतावाद स्थापित हुए। भाषा का व्याकरणिक दृष्टि से नवीन यथार्थताओं और भावनाओं के अनुसार परिष्कार हुआ। यह धारा पश्चिम की रोमांटिक काव्यधारा से भारत को परिचय हुआ था। इस धारा की वैयक्तिक अनुभूति, प्रकृति प्रेम, कल्पना विलास आदि विशेषताओं ने हिन्दी कवियों को विशेष रूप से आकर्षित किया। रवीन्द्र की बंगला कविताएँ भी छायावादी कवियों के लिए प्रेरणास्त्रोत बनी। प्रसाद, पन्त, निराला, महादेवी, सुकुमार वर्मा, नगेन्द्रशर्मा आदि इस धारा के प्रमुख हस्ताक्षर माने गये हैं। ये सब समान मानसिकता से परिचालित थे।

मनोविश्लेषण की दृष्टि से सब अपने विक्षुब्ध अंतर्मन की पीडाओं से ग्रस्त है। स्वप्न की प्रक्रिया से भी इन कवियों का काव्य से जगत निर्मित हो रहा था। बाह्य जगत के ठोस पथार्थ रूढ़िग्रस्त समाज-रचना से इनकी स्वच्छन्द चेतना न समझौता ही कर पाती है, न संघर्ष ही। छायावादी कवियों ने प्रकृति, प्रेम, रहस्यात्मकता, वेदना, विद्रोह भावना आदि सब अंशों को अपने काव्यों में परिलक्षित किया हैं। इस युग के कवियों की रचनाओं में समान भाषा शैली, समान प्रतिक्रियाएँ, समान शिल्पगत उपलब्धियाँ, मनोवैज्ञानिक अंश एवं आध्यात्मिक छायाएँ भी मिलते हैं।

3.6. बोध प्रश्न

1. छायावाद युग के बारे में सारगर्भित लेख लिखिए।

2. छायावाद के प्रमुख विशेषताएँ क्या-क्या है?

3. छायावाद के प्रमुख कवियों का उल्लेख कीजिए।

3.7. सहायक ग्रंथ

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास

2. कवि निराला- नंददुलारे वाजपेयी- मैरूमिलन, दिल्ली।

3. क्रांतिकारी कवि निराला- बच्चन सिंह- विश्वविद्यालय, वारणासी।

4. प्रसाद का काव्य- प्रेमशंकर- भारती अण्डारख प्रयाग।

5. कामायनी के अध्ययन की समस्यायों -नगेन्द्र, नेशनल-दिल्ली।

6. सुमित्रानंदन पंत-नगेन्द्र- नेशनल।

7. कवि पंत और उनकी छायावादी रचनाएँ- प्रो. पी. ए. राव, प्रगति प्रकाशन, आगरा।

डॉ. एम. मंजुला

4. जयशंकर प्रसाद - कामायनी

4. 0. उद्देश्य

पिछले अध्यायों में हम छायावाद काव्यधारा के बारे में विस्तृत चर्चा कर चुके हैं। छायावादी काव्य धारा के चार प्रमुख स्तंभों में जयशंकर प्रसाद का स्थान पहला आता है। आपका 'कामायनी' महाकाव्य हिन्दी साहित्य जगत के में मुख्य स्थान ग्रहण किए है। यह छायावादी काव्य धारा के एकमात्र महाकाव्य है। इस इकाई को पढ़ने के बाद हम-

⟶ जयशंकर प्रसाद जी का जीवनी, रचनाओं के बारे में जान पायेंगे।

⟶ कामायनी महाकाव्य के बारे में जान पायेंगे।

रूपरेखा

4.1. प्रस्तावना

4.2. जयशंकर प्रसाद जीवनी - रचनाएँ

4.3. कामायनी के 'महाकाव्य'

4.4. कामायनी – कथानक

4.5. सारांश

4.6. बोध प्रश्न

4.7. सहायक ग्रंथ

4.1. प्रस्तावना

छायावाद के प्रमुख स्तंभ एवं राष्ट्रीय चेतना के अमर कवि जयशंकर प्रसाद का व्यक्तित्व एवं कृतित्व पूरे छायावादी युग पर छाया रहा। प्रसाद, पन्त और निराला को मिलाकर जो बृत्तत्रयी बनती है तो उसमें जयशंकर प्रसाद को ब्रह्म कहा जा सकता है। छायावादी युग के एक मात्र महाकाव्य 'कामायनी' के रचयिता के रूप में ही जयशंकर प्रसाद को नहीं किया जाता, बल्कि छायावादी युग की चेतना को गढ़ने वाले अमर कवि के रूप में भी उन्हें याद किया जाता है। उन्होंने अपने काव्य में सूक्ष्म अनुभूतियों, भावनाओं, मनोविकारों और विचारों का मर्मस्पर्श अंकन किया है। इस पाठ में हम जयशंकर प्रसाद के जीवन, रचनाएँ, कामायनी महाकाव्य के बारे में विस्तृत चर्चा करेंगे।

4.2. जीवनी एवं रचनाएँ

कविवर श्री जयशंकर प्रसाद का जन्म 30 जनवरी सन् 1889 में वारणासी- उत्तर प्रदेश के एक सम्मान, प्रतिष्ठित वैश्य परिवार में हुआ था, जो 'सुंघनी साहु' नाम से प्रसिद्ध था। इनके पिता का नाम श्री बाबू देवी प्रसाद तथा माता का नाम श्रीमती मुन्नी देवी था। इन्होंने 8वीं कक्षा तक शिक्षा पाने के बाद घर पर ही संस्कृत, हिन्दी, उर्दू, फारसी और अंग्रेजी की शिक्षा प्राप्त की। संस्कृत साहित्य के प्रति इनका गहन अनुराग था। वेद, पुराण, इतिहास, साहित्य और दर्शन शास्त्र का स्वाध्याय से ही इन्होंने सम्यक ज्ञान प्राप्त कर लिया। प्रसाद जी में काव्य सृजन के संस्कार बचपन से ही

थे। इनकी प्रथम कविता 9 वर्ष की अवस्था में ही प्रकाश में आ गई थी। प्रसाद जी का बचपन दुःखों में व्यतीत हुआ। बचपन में ही उनके माता पिता की मृत्यु हो गई थी। जब वे 17 वर्ष के थे, उनके बड़े भाई का भी निधन हो गया। इस कारण प्रसाद जी को पारिवारिक समस्याओं का सामना भी करना पड़ा। फिर भी आगे चलकर प्रसादजी उच्च कोटि के कवि, नाटककार, कहानीकार, उपन्यासकार और निबंधकार बन गए। उन्होंने अपने जीवन में बहुत संघर्ष किया और अनेक कठिनाइयों का सामना किया। माता, पिता, भाई, पत्नी आदि परिवार के सदस्यों की मृत्यु होने के जयशंकर प्रसाद बहुत दुःखी हो गए। इस कारण उनका स्वास्थ्य खराब होता गया। परिणाम स्वरूप सन् 1937 में 48 वर्ष की आयु में जयशंकर प्रसाद का निधन हो गया। उन्होंने हिन्दी साहित्य के विकास में अपना योगदान दिया।

व्यक्तित्व: जयशंकर प्रसाद व व्यक्तित्व बड़ा ही आकर्षक था। सीधे-साधे वेश-भूषा में रहते थे। श्री रामनाथ 'सुमन' प्रसाद जी के निकट सम्पर्क में रहे। उन्होंने प्रसाद जी के व्यक्तित्व के संबंध में लिखा है- "व्यक्ति की दृष्टि से प्रसाद एक उच्चकोटि के महापुरुष थे। वे कवि होने के कारण उदार व्यापारी होने के कारण व्यवहारशील, पुराण शास्त्र, संस्कृत काव्य आदि के विशेष अध्ययन के कारण प्राचीनता की ओर झुके हुए, भारतीय आचारों एवं भारतीय सभ्यता के प्रति ममता रखने वाले तथा एक सीमातक पाश्चात्य सभ्यता के गुणों के प्रशंसक थे। भारत में प्राचीन इतिहास का अध्ययन जयशंकर प्रसाद का प्रिय विषय था। वे केवल ऐतिहासिक घटनाओं के बाह्य या तथ्यात्मक रूप से ही सन्तुष्ट होने वाले प्राणी नहीं थे, अपितु उन घटनाओं के भीतर प्रविष्ठ होकर तत्व चिन्तन से उनके मर्म का उद्घाटन करने में लगे रहते थे। यही कारण है कि उनके ऐतिहासिक नाटक अंतर्द्वन्द प्रधान हैं। उनके कथानकों का आधार सांस्कृतिक संघर्ष है। वे संस्कृति, सभ्यता, धर्म दर्शन और नीति के माध्यम से इतिहास का मूल्यांकन करते थे। उनका ऐतिहासिक और शास्त्रीय ज्ञान असाधारण था।

जयशंकर प्रसाद अन्तर्मुख व्यक्ति थे। आत्म विज्ञापन करना वे अच्छा नहीं समझते थे। समारोह में जाना, सभापति बनना और भाषण देना उन्हें अच्छा नहीं लगता था।

प्रमुख रचनाएँ:

प्रसाद जी छायावाद के प्रवर्तक, उन्नायक तथा प्रतिनिधि कवि होने के साथ-साथ एक महान कवि, सफल नाटककार, श्रेष्ठ उपन्यासकार, कुशल कहानीकार तथा गंभीर निबंधकार थे। इन्हें भारतीय संस्कृति और सभ्यता से अगाध प्रेम था। भारत के उज्ज्वल अतीत को इन्होंने अपने साहित्य में सफलतापूर्वक अंकित किया है। प्रसाद बहुमुखी प्रतिभा के धनी साहित्यकारों में अग्रगण्य थे। इन्होंने अपनी कविताओं में सूक्ष्म अनुभूतियों का रहस्यवादी चित्रण प्रारंभ किया, जो इनके काव्य की प्रमुख विशेषता है। इनके इस नवीन प्रयोग ने काव्य जगत् में एक क्रान्ति उत्पन्न कर दी और छायावादी युग का सूत्रपात किया। इन्होंने काव्य-सृजन के साथ ही 'हंस' एवं 'इन्दु' नामक पत्रिकाओं का प्रकाशन भी कराया।

प्रसाद जी की प्रमुख रचनाएँ एवं कृतिया इस प्रकार है-

काव्य - आँसू, कामायनी, चित्रधारा, लहर, झरना, प्रेम- पथिक, करुणालय, कानन कुसुम, महाराणा का महत्व।

कहानी संग्रह- आँधी, इंद्रजाल, आकाशदीप, प्रतिध्वनि, पुरस्कार, छाया, देवरथ आदि। [69 कहानियाँ है]

नाटक: चंद्रगुप्त, स्कन्दगुप्त, अजातशतृ, ध्रुवस्वामिनी, कामना, जनमेजय का नागयज्ञ, एक घूँट, विशाख, कल्याणी-परिणय, राजश्री, अग्नि- मित्र, सज्जन और प्रायश्चित आदि।

उपन्यास: तितली, कंकाल व इरावती आदि।

निबंध-संग्रह: काव्य और कला तथा अन्य निबंध।

4.3. कामायनी - महाकाव्य

कामायनी हिन्दी भाषा का एक महाकाव्य है। यह आधुनिक छायावादी युग का सर्वोत्तम और प्रतिनिधि हिन्दी महाकाव्य है। 'प्रसाद' जी की यह अंतिम काव्य रचना 1936 ई. में प्रकाशित हुई। 'चिंता' से प्रारंभ कर 'आनंद' तक 15 सर्गों के इस महाकाव्य में मानव मन की विविध अंतर्वृत्तियों का क्रमिक अन्मीलन इस कौशल से किया गया है कि मानव सृष्टि के आदि से अब तक के जीवन के मनोवैज्ञानिक और सांस्कृतिक विकास का इतिहास भी स्पष्ट हो जाता है। कला की दृष्टि से कामायनी, छायावादी काव्यकला का सर्वोत्तम प्रतीक माना जा सकता है। चित्तवृत्तियों का कथानक के पात्र के रूप में अवतरण इस महाकाव्य की अन्यतम विशेषता है और इस दृष्टि से लज्जा, सौंदर्य, श्रद्धा और इड़ा का मानव रूप में अवतरण हिन्दी साहित्य की अनुपम निधि है। कामायनी प्रत्यभिंश दर्शन पर आधारित है। साथ ही इस पर अरविन्द दर्शन और गांधी दर्शन का भी प्रभाव यत्र-तत्र मिल जाता है।

4.4. कामायनी कथानक

मानव के प्रथम जन्म देव निश्चत जाति के जीव थे। किसी भी प्रकार की चिंता न होने के कारण वे 'चिर-किशोर – वय' तथा 'नित्यविलासी' देव आत्म - मंगल उपासना में ही विभोर रहते थे। प्रकृति यह अतिचार सहन न कर सकी और उसने अपना प्रतिशोध लिया। भीषण जलप्लावन के परिणामस्वरूप देवसृष्टि का विनाश हुआ, जीवित बचे। देव सृष्टि के विध्वंस पर जिस मानव जाति का विकास हुआ उसके मूल में थी 'चिंता' जिसके कारण वह जरा और मृत्यु का अनुभव करने को बाह्य हुई। चिंता के अतिरिक्त मनु में दैवी और असुरी वृत्तियों का भी संघर्ष चल रहा था जिसके कारण उनमें एक ओर आशा, श्रद्धा और इड़ा का आविर्भाव हुआ तो दूसरी ओर कामवासना, ईर्षा और संघर्ष की भी भावना जगी। इन विरोधी वृत्तियों के निरंतर घात-प्रतिघात से मनु में निर्वेद जगा और श्रद्धा के पथ प्रदर्शन से यही निर्वेद क्रमशः दर्शन और रहस्य का ज्ञान प्राप्त कर अंत में आनंद की उपलब्धि का कारण बना। यह चिंता से आनंद तक माना के मनोवैज्ञानिक विकास का क्रम है। साथ ही मानव के आवेदक रूप में प्रारंभ कर श्रद्धा प्रभाव से पशुपालन, कृषक जीवन और इड़ा के सहयोग से सामाजिक और औद्योगिक क्रांति के रूप में भौतिक विकास एवं अंत में आध्यात्मिक भौतिकी प्राप्ति का उद्योग मानव के सांस्कृतिक विकास के विविध सोपान है। इस प्रकार कामायनी मानव जाति के उद्भव और विकास की कहानी है।

सर्ग: कामायनी 15 सर्ग (अध्यायों) का महाकाव्य है जो निम्न प्रकार है-

1. चिन्ता, 2. आशा, 3. श्रद्धा, 4. काम, 5. वासना, 6. लज्जा, 7 कर्म, 8 ईर्षा, 9. इडा, 10. स्वप्न, 11. संघर्ष, 12. निर्वेद, 13. दर्शन, 14. रहस्य और 15. आनंद।

1.चिन्ता: कामायनी की कथा का प्रारम्भ जल-प्रवाह की समाप्ति और मनु के मन में उत्पन्न चिन्ताओं से होता है। मनु हिमालय पर्वत की सबसे ऊँची चोटी पर बैठे हुए जल-प्रवाह को देख रहे हैं। उनकी नौका पास ही एक वट वृक्ष से बंधी हुई है जिसे एक महामस्य के चपेटे ने वहाँ पहुँचा दिया था। मनु के मन में जल- प्लावन में नष्ट हुई देव-जाति का विलासपूर्ण एवं वैभवपूर्ण चित्र बार-बार उभर आता है। वे सोचते है कि देव जाति कितने अपार बल, वैभव और आनन्द से भरी हुई थी। उसकी कीर्ति चारों ओर फैली हुई थी, किन्तु उसकी विलासिता और अहंकार ने उसे नष्ट-भ्रष्ट

कर दिया। देवता सुर- बालाओं के साथ अहर्निश नृत्य, गान, सुरापान और भोग विलास की क्रीडाओं में निमग्न रहते थे, जिसका परिणाम यह हुआ कि उनके सारे वैभव समाप्त हो गए, उनकी भोग- लीलाएँ सागर की लहरों में डूब कर रह गई और देवताओं को कोई पानी देने वाला भी नहीं बचा। देव विनाश का दूसरा कारण मनु उनके पशु-यज्ञों को मानते हैं। देवता पशु-यज्ञों में निस्संकोच भाव से निरीह पशुओं का बलिदान करने लगे, जिसके कारण प्राकृतिक शक्तियाँ कुपित हो गई, क्षितिज के चारों ओर विनाशकारी बादल उठने लगे, बिजलियाँ गिरने लगी और इतनी घोर वर्षा हुई कि समस्त पृथ्वी जल में डूब गई।

मनु देवताओं के मिध्या अहंकार, दम्भ और अतिशय विलास - भावना को बार-बार सोचते है और अपने मन में दुखी होते हैं। इसी बीच जल- प्रवाह धीरे-धीरे समाप्त हो जाता है और प्रलय की घोर रात्रि के स्थान पर प्रभात की सुनहली छटा दिखाई देने लगती हैं।

संदर्भ - व्याख्या

1. हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर, बैठ शिला की शीतल छाँह,

   एक पुरुष, भीगे नयनों से देख रहा था प्रलय प्रवाह।

   नीचे जल था ऊपर हिम था, एक तरल था एक सघन।

   एक तत्व की ही प्रधानता - कही उसे जड या चेतन॥

संदर्भ- इन पंक्तियों को कामायनी के आरंभ में से लिया गया है। 'चिन्ता' सर्ग इन वाक्यों से आरंभ किया। कामायनी महाकाव्य का लेखक छायावाद युग के प्रवर्तन श्री जयशंकर प्रसाद जी है। काव्य का आरंभ मंगलाचरण से न करते हुए प्रलय के बाद बचे हुए एक पुरुष (मनु) के बारे में बताते हुए इन वाक्यों को कहा।

अर्थ: हिमालय पर्वत की ऊँची चोटी पर स्थित एक शिला की शीतल छाया में बैठकर एक पुरुष (मनु) विषाद से भरकर सम्पूर्ण देव सृष्टि को नष्ट करने वाले प्रलय के प्रवाह को देख रहा था। मनु के नीचे जल बह रहा था और ऊपर बर्फ जमी हुई थी। जल बह रहा था, गतिशील था और बर्फ ठोस थी, स्थिर थी। अपनी इन दो विभिन्न स्थितियों के कारण से दोनों भिन्न-भिन्न पदार्थ दृष्टिगोचर हो रहे हैं थे, परन्तु वस्तुतः वे एक ही तत्व -जल- के विभिन्न रूप थे, जिस प्रकार जड़ और चेतन पदार्थ एक ही मूल पदार्थ ब्रह्म या चित्ति के रूप है।

विशेष: प्रसाद ने महाकाव्य का आरंभ मंगलाचरण के साथ न कर के जल प्रवाह, हिमालय का वर्णन करते

हुए किया था। प्रसाद जी ने मनु का नाम नहीं लिया, एक पुरुष कहा है। इससे मनु का एकाकी और अपरिचित होना ध्वनित होता है। 'भीगी नयनों से' में पर्यायोक्ति अलंकार और लक्षण लक्षणा शब्द शक्ति है। नीचे जल था, ऊपर हिम था - में यथासंख्य अलंकार है।

2. निकल रही थी मर्म वेदना करुणा विकल कहानी सी,

   वहाँ अकेली प्रकृति सुन रही, हँसती-सी पहचानी सी।

संदर्भ: कामायनी के चिन्ता सर्ग में मनु के हृदय वेदना का वर्णन करते समय इन पंक्तियों को कहा गया है।

अर्थ: मनु के हृदय की गहरी पीड़ा उस कहानी की तरह से बाहर निकल रही थी, जो करुणा की पीड़ा से भरी हुई हो। उस कहानी को केवल प्रकृति दी हँसती हुई चिर-परिचित की भाँति सुन रही थी।

विशेष: यहाँ पर कवि ने प्रकृति के माध्यम से इस गूढ़ व्यंग्य की व्यंजना की है कि देव जाति का विनाश अवश्यम्भावी था। उसके लिए प्रायश्चित करना मूर्खता है। इसीलिए प्रकृति मनु की कहानी को 'हँसती-सी' सुन रही थी। इसमें उपमा अलंकार है।

2. आशा: प्रलय का प्रवाह समाप्त हो जाने पर नवीन प्रभात का उदय हुआ। उषा ने अपनी राग-रंजित किरणों से सर्वत्र आलोक बिखरा दिया। मनु ने इस नवीन प्रभात को देखा। उनका हृदय कौतूहल और आशा से भर गया वे सोचने लगे वह विराट शक्ति कितनी बलवती है जो अपने तनिक से क्रोध में सृष्टि को छिन्न-भिन्न कर देती है। जिसके शासन में विश्वदेव, सविता, पूषा, सोम, पवन आदि निरन्तर अबाध गति से घूमते रहते है, नक्षत्र निकलते और छिपते रहते हैं, तृन और पौधे इस ग्रहण करते हैं और सृष्टि के सभी पदार्थ, जड़ था चेतन, उसकी सत्ता विनत होकर स्वीकार करते हैं। किन्तु इस विराट शक्ति का स्वरूप क्या है, यह कुछ समझ नहीं आता।

नवीन आशा से परिपूर्ण होकर मनु तपश्चर्या में लग गए। वे पाक यज्ञ करने के लिए सूखी लकडियाँ तथा धान बीन लाते थे और से देव यज्ञ करते थे। यज्ञ से बचे हुए अन्न को वे अपनी गुफा से कुछ दूर रख आते थे। उनका विश्वास था कि सम्भवत: अन्य कोई प्राणी भी जीवित रह गया हो तो वह उस अन्न से अपनी क्षुधा बुक्त सकेगा। इसी प्रकार मनु अपना जीवन यापन करने लगे।

1. उषा सुनहले तीर बरसती जयलक्ष्मी-सी उचित हुई,
   उधर पराजित कालरात्रि भी जल में अंतर्निहित हुई।

संदर्भ: इन पंक्तियों को कामायनी के आशा सर्ग से लिया गया है।

व्याख्या: प्रलय प्रवाह समाप्त हो जाने पर सुनहली ऊषा इस प्रकार प्रकट हुई जैसे विजयश्री अपने सुनहले तीरों की वर्षा करती हुई उदित हो गई हो। दूसरी ओर पराजित प्रलयकालीन धोर रात्री भी पराजित शत्रु की भाँति जल में छिप गई।

विशेष: 'उषा सुनहले तीर बरसती' में प्रयोजनवती साध्यवसाना गौणी लक्षणा है। इसमें उपमा अलंकार है।

2. नीचे दूर-दूर विस्तृत विस्तृत था उर्मिल सागर व्यथित, अधीर,
अंतरिक्ष में व्यस्त उसी-सा राहा चन्द्रिका-निधि गम्भीर।
खुली उसी रमणीय दृश्य में अलस चेतना की आँखें,
हृदय-कुसुम की खिली अचानक मधु से वे भींगी पाँखें।

संदर्भ: कामायनी के आशा सर्ग में प्रकृति चित्रण के संदर्भ में बताई गई पंक्तियाँ है।

व्याख्या: नीचे दूर दूर तक लहराता हुआ क्षुब्ध चंचल समुद्र फैला हुआ था और उधर आकाश में उसी की भांति ज्योत्स्ना (चाँदनी) का विकल तथा गम्भीर सागर लहरा रहा था। निर्मल चन्द्र ज्योत्सना से परिपूर्ण अर्धरात्रि के उत्स मनोरम की आँखें खुल वातावरण में अचानक आलस्य और शिथिलता से ताई और वे प्रकृति की उस मनोहर छटा को

संतृष्ण नेत्रों से देखने लगे। उस समय अपूर्व आनन्द और उत्साह से भरी हुई उनकी आँखें ऐसी मालूम पड़ती थी जैसे हृदय रूपी पुष्य की मकरन्द से भीगी हुई पंखुडियाँ अचानक खिल उठी हों।

विशेष: हृदय कुसुम की खिली अचानक वधु से भोगी वे पाँखे- में प्रयोजनवती शुद्धा साध्यवसाना लक्षणा है।

3. श्रद्धा: मनु को यह पता नहीं था कि उनके अतिरिक्त भी अन्य कोई प्राणी जीवित है, किन्तु एक दिन श्रद्धा हिमालय पर घूमती हुई मनु की गुफा के पास आ निकली और मनु से पूछ बैठी कि आप कौन है? यहाँ पर अकेले क्यों बैठे हैं? और इतने दुःखी क्यों है? श्रद्धा की उस मधुर और सहानुभूति पूर्ण वाणी को सुनकर मनु को एक प्रकार से नव-जीवन सा मिला, उन्होंने श्रद्धा की ओर देखा और उसके अनिय सौंदर्य को देख कर उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उन्होंने श्रद्धा को बताया कि वह बहुत ही दुखी और निराश प्राणी है, क्योंकि उनका सर्वस्व स्वाहा हो चुका है।

मनु का परिचय प्राप्त कर लेने पर श्रद्धा ने भी अपना परिचय देते हुए बताया कि उसे ललित कलाओं से बड़ा प्रेम है और वह गन्धर्वो के देश में ललित कलाएँ सीखा करती थी। एक दिन अचानक जल प्रवाह आया, देखते-देखते गन्धर्वी का देश नष्ट हो गया तभी से वह अकेली असहाय और निरुपाय होकर हिमालय पर अकेली घूमती फिरा करती है। यज्ञ से बचे हुए अवशिष्ट अन्न को देख कर ही उसे यह प्रतीत हुआ कि उसके अतिरिक्त अन्य कोई प्राणी भी जीवित है जो निकट ही रहता है। इसी आशा पर वह मनू को ढूँढ सकी थी। अपना परिचय देने के बाद श्रद्धा ने मनु को सान्त्वना देते हुए कहा कि तुम्हें दुःखी देखकर मुझे बहुत दुःख और आश्चर्य होता है। तुम्हें दुःखी नहीं होना चाहिए क्योंकि सुख - दुःख संसार के अनिवार्य धर्म है। साथ ही तुम्हें यह भी जान लेना चाहिए कि तुम जिस बात से वि सिसक रहे हो वही तुम्हारे लिए मंगलदायक है, क्योंकि सारी सृष्टि उसी से उत्पन्न हुई है। अतः तुम्हें न तो काम की उपेक्षा करनी चाहिए और न दुःख से ही डरना चाहिए। ये दुःख सुख तो दिन और रात की तरह को आते जाते रहते हैं। श्रद्धा के इन वचनों को सुनकर जब मनु नहीं हुआ तो श्रद्धा ने उसे कर्म की महत्ता बताते हुए कहा कि जीवन में इस प्रकार निराश होना ठीक नहीं, मनुष्य को सदैव कर्मरत कर अपना जीवन उन्नत बनाना चाहिए। यदि तुम्हें कर्म करने में कुछ झिझक है तो आज से मैं तुम्हारे साथ रहूँगी और तुम्हारी सहायता करूँगी। इस प्रकार श्रद्धा मनु को उत्साहित करके कर्मशील बना दिया।

1. कौन तुम? संस्कृति- जलनिधि तीर-तरंगों से फेंकी मणि एक,
   कर रहे निर्जन का चुपचाप प्रभा की धारा से अभिषेक ?

संदर्भ: कामायनी के श्रद्धा सर्ग से दी गई इन पंक्तियों में मनु और श्रद्धा का परिचय होता है।

व्याख्या: चिंताग्रस्त मनु को निर्जन प्रदेश में एकांकी बैठे हुए देखकर श्रद्धा सहसा उनके पास आती है और उनसे पूछती है कि तुम कौन हो ? जिस प्रकार समुद्र की लहरें मणियों को किनारे पर फेंक देती हैं उसी प्रकार तुम भी संसार सागर के दौरान इस निर्जन प्रदेश में फेंके हुए रत्न के समान, और जिस प्रकार वह मणि समुद्र के निर्जन किनारे को आलोकित कर देती है उसी प्रकार इस निर्जन प्रदेश में फेंक हुए रत्न के समान, और जिस प्रकार वह मणि समुद्र के निर्जन किनारे को आलोकित कर देती है उसी प्रकार इस निर्जन प्रदेश की शून्यता को कान्ति की धारा से आलोकित करने वाले तुम कौन हो !

विशेष : परंपरित रूपक और लक्षणा शब्द शक्ति है।

2. और, पड़ती हो उस पर शुभ्र नवल मधु -शका मन की साथ,
हँसी का मदविव्हल प्रतिबिंब मधुरिमा खेला सदृश अबाध!
कहा मनु ने नय धरणी बीच बना जीवन रहस्य निरुपाय,
एक उल्का-सा जलता भ्रांत, शून्य में फिरता हूँ असहाया।

संदर्भ: श्रद्धा सर्ग में श्रद्धा के सौन्दर्य का वर्णन इन पंक्तियों में किया गया है और मनु श्रद्धा से अपने बारे में बता रहा है ।

व्याख्या: श्रद्धा के शरीर से जो सुगन्धि निकल रही थी उस पर जो चंचलता और मस्ती से भरी हुई मुस्कराहट थी उससे ऐसा प्रतीत होता था मानो उस पर वसन्त ऋतु की पूर्णिमा की रात्रि की नवीन चांदनी पड़ रही हो और स्वयं मधुरिमा ही निर्विघ्न रूप से उसके ओठों पर मद से आकुल होकर प्रतिबंधित हो गई हो। श्रद्धा की बातें सुनकर मनु ने कहा कि आकाश और धरती के बीच मेरा जीवन अनाथ होकर एक प्रकार की पहेली सा बन गया है। मैं इस शून्य प्रदेश में असहाय होकर इसी प्रकार इधर उधर भटकता फिरता है जिस प्रकार आकाश से तारा टूटकर भटकता हुआ इधर उधर फिरा करता है।

विशेष: इसमें वस्तुत्प्रेश, उपमा, पूर्णोपमा और श्लेष अलंकार है।

4. काम: जब श्रद्धा मनु के सम्पर्क में आ गई और उसने अपना समर्पण कर दिया तो मनु के विचारों में एक प्रकार की उथल-पुथल होने लगी। उन्हें अनुभव हुआ जैसे उनके जीवन में यौवन ने चुपके-चुपके प्रवेश कर लिया है। वे सोचते है कि यौवन का आगमन कितना मधुर, मादक एवं आकर्षक होता है। वह जीवन के रूप को उसी प्रकार बदल देता है जिस प्रकार का नवजीवन भर जाता है, नवीन आशयों का उदय हो जाता है और मन में निश्चितता तथा स्वच्छन्दता की भावना जग जाती है। इसी प्रसंग में मनु को देवताओं के भोग-विलासों की स्मृति हो आती है और उनका मन एक बार फिर, क्षण-भर के लिए ही सही, विरक्ति एवं निराशा से उद्वेलित हो जाता है।

अपनी गुफा में बैठे हुए मनु इन्हीं विचारों में तल्लीन थे। सहसा उनकी दृष्टि आकाश की ओर चली गई जो चमकते हुए तारों से भरा हुआ था। वे सोचने लगे कि इन तारों की दुनिया के पीछे अवश्य कोई ऐसी शक्ति निहित है जिसको जान लेना आसान नहीं है और जो मानव-चिन्तन के लिए रहस्य बनी हुई है। साम्य रूप- सौन्दर्य के कारण उन्हें श्रद्धा याद आ जाती है? वे सोचने लगते हैं कि श्रद्धा पुनः उन्हें सृष्टि के प्रपंचों में फँसने के लिए प्रेरित कर रही है। चाहे मुझे कितना ही कष्ट क्यों न उठाना पडे, परन्तु मैं श्रद्धा के द्वारा बताये गये प्रवृत्ति - मार्ग पर कभी भी नहीं चलूँगा।

यही सोचते-सोचते मनु को नींद आ जाती है। स्वप्न में काम उन्हें दर्शन देकर बताता है कि श्रद्धा उसकी और रति की पुत्री है। जब से देवताओं का नाश हुआ है, काम को आश्रय नहीं मिला और वह भटकता हुआ फिर रहा है। अतः वह मनु को समझाता है कि वह श्रद्धा को ग्रहण करें और उसके साथ सुखपूर्ण जीवन व्यतीत करते हुए सृष्टि का पुनर्निर्माण करे। इसी समय मनु के मन में एक शंका उत्पन्न हुई। उन्होंने काम हे देव! आलोक एवं सौन्दर्य की उस अक्षयनिधि के समीप पहुंचने के लिए कौन-सा मार्ग है ? और व्यक्ति उस मार्ग को किस प्रकार प्राप्त कर सकता है? परन्तु मनु के इस प्रश्न का उत्तर देने वाला वहाँ कोई नहीं था, देखा सामने सूर्य की स्वर्ण - किरणों मनु के गुफा के द्वार पर छाई हुई सोमलता के बीच में से झाँक रही थी।

1. मधुमय वसंत जीवन - वन के, वह अंतरिक्ष की लहरों में,

कब आये थे तुम चुपके से राजनी के पिछले पहरों में ?

संदर्भ:

व्याख्या: मनु अपने जीवन में आए हुए यौवन की तुलना वसन्त से करते कहते हैं कि जिस प्रकार वन में चुपचाप वसन्त अन्तरिक्ष की लहरों में बढ़ कर - किसी अज्ञात स्थान से आकर-उसके रूप को बदल देता है, उसी प्रकार हे यौवन ! तुम भी चुपचाप किसी अज्ञात स्थान से आकार मेरे जीवन-वन में प्रवेश कर गये हो। तुम मेरे यौवनारंभ के काल में कब मेरे जीवन में प्रवेश कर गये हो, इसका मुझे तो पता नहीं, अतः तुम्हीं इस रहस्य को बताओ।

विशेष: रूपक और रूपनातिशंयोक्ति अलंकार।

2) सब कहते हैं- 'खोलो खोलो, छवि देखूँगा जीवन धन की'

आवरण स्वयं बनते जाते हैं भीड़ लग रही दर्शन की।

संदर्भ:

व्याख्या: मनु कहते हैं कि इस आलोक की अक्षय निधि का दर्शन करने के लिए सभी लोग उत्सुक है और सभी प्रकार पुकार के कहते है कि इस पर्दे को हटाओ, मैं इस छवि का दर्शन करूँगा। किन्तु वास्तविकता तो यह है कि सभी लोग इस छवि का दर्शन करने के लिए इतनी भीड़ बना लेते हैं कि वे सभी एक दूसरे के लिए पर्दा बन जाते हैं।

विशेष: कवि ने इन पंक्तियों में 'आवरण' द्वारा शिव दर्शन के षट्कंचुकों की ओर संकेत किया है।

5. वासना: आत्म-समर्पण करने के उपरांत श्रद्धा मनु के ही साथ रहने लगी। दोनों मिलकर जीवन की यथोचित सामग्री जुटाने में लग गये। उन्होंने अपने जीवन का निर्वाह सरलता से करने के लिए बहुत सारा धान्य अपनी गुफा में इकट्ठा कर लिया और उन्होंने पशु-पालन भी प्रारम्भ कर दिया। फिर भी मनु के जीवन की उद्विग्नता पूर्णतया समाप्त न हुई थी। वे एक दिन अपनी गुफा के सामने बैठे हुए अपने ही विचारों में लीन थे, काम का सन्देश उनके कानों में रह-रहकर गूंज रहा था। तभी उन्होंने देखा कि श्रद्धा अपने पशु को साथ लिए हुए चली आ रही है। जितना प्रेम श्रद्धा उस पशु के प्रति प्रदर्शित कर रही थी, उतना ही प्रेम वह पशु श्रद्धा के प्रति भी देखा रहा था। दोनों के इस प्रकार प्रेम को देखकर मनु के मन में ईर्ष्या का भाव जग उठा। वे सोचने लगे कि यद्यपि थे दोनों मेरे ही अन्न से पलते हैं, तथापि मेरे प्रति इन दोनों ने इतना प्रेम कभी नहीं दिखाया। वास्तविकता तो यह है कि यह नवीन संसार बसाकर भी मैं अभी तक उतना ही उपेक्षित और व्यथित हूँ जितना प्रबंध - प्रवाह के बाद एकाकी जीवन में था। इस विचार के आते ही उनका मन बेचैनी और उदास की गम्भीरता में डूब गया।

जब पशु के लिए श्रद्धा उनके पास आई तो उन्होंने मनु को अत्यन्त बेचैन और उदास देखा। उसने मनु के शरीर को अपने कोमल हाथों से सहलाते हुए पूछा कि तुम इतने बेचैन और उदास क्यों ? श्रद्धा का स्पर्श पाकर मनु की उदासी कुछ कम हुई। उन्होंने श्रद्धा से पूछा- रे अतिथि! तुम अब तक कहाँ थे? तुम्हारे हृदय में यह कैसा प्यार और दुलार भरा हुआ है कि सब प्राणी तुम्हारी और सहज रूप से खिंचे चले आते हैं? तुम्हारा सौंदर्य और तुम्हारा आकर्षण सभी कुछ मेरे लिए अभी तक रहस्य बना हुआ है। अतः तुम अपना पूर्ण परिचय देते हुए मुझे बताओ कि तुम कौन हो ? मनु की बातें सुनकर श्रद्धा ने हँसकर कहा कि मैं तो एक अतिथि हूँ। इसके अतिरिक्त मेरा न तो कोई परिचय है और

न इससे अधिक तुम्हें जानने की आवश्यकता ही है। न जाने क्यों तुम मेरा इतना परिचय पा जाने के लिए आज इतने व्यग्र हो उठे हो। चलो, इन बातों को छोड़ो और चलो बाहर घूम आयें, क्योंकि आज चाँदनी कितनी मनोरमता से इस पृथ्वी पर बिखरी हुई है।

श्रद्धा की बातें सुनकर मनु उठ खड़े हुए और श्रद्धा के साथ चल दिये। प्रकृति की मनोरम छटा को देखकर मनु के हृदय में वासना का संचार हो गया। उन्होंने श्रद्धा का हाथ पकड़ कर कहा- हे अतिथि। मैंने तुम्हें पहले भी कितनी ही बार देखा है, परन्तु तुम मुझे इतने सुन्दर और आकर्षक कभी दिखाई नहीं दिये। तुम्हें देखकर मेरा हृदय न जानें क्यों धड़क रहा है, धमनियों में तीव्र रक्त का संचार हो गया है और सारे शरीर में एक प्रकार की हलचल - सी मच गई है। श्रद्धा ने हँसकर उत्तर दिया कि इस इस कौमुदी - महोत्सव के समय अधीर और व्यथित होकर ऐसी बातें करना उचित नहीं है। चाँदनी की रमणीयता को देखो, जिससे धुलकर समस्त प्रकृति कितनी रमणीक बन गई है। श्रद्धा के उत्तर ने और वातावरण के सौन्दर्य ने मनु के हृदय और भी अधिक अशान्त बना दिया। वे आवेग से श्रद्धा का हाथ पकड़ कर बोले- इस समय मुझे अपनी उस जीवन संगिनी की याद आ रही है, जो तुम्हारी ही भाँति सौंदर्यमयी थी, जिनका नाम श्रद्धा था और जो काम की पुत्री थी। तुम्हारी आकृति देखकर मुझे ऐसा प्रतीत होता है जैसे हम दोनों पुनः मिलने के लिए उस भयंकर प्रलय से बच गये है। आज मैं तुम्हें अपना हृदय पूर्णरूप से समर्पित करता हूँ। मेरे इस समर्पण को सहर्ष स्वीकार करो। मनु की बातें सुनकर श्रद्धा की आँखें लज्जा के कारण नीचे झुक गई। उसने सलज्जा होकर कहा - हे देवा क्या आज का यह समर्पणा नारी- हृदय के लिए चिर- बंधन नहीं बन जायगा ? मैं अत्यन्त दुर्बल हूँ। क्या मैं इस दान को ग्रहण करने में सफल हो सकूंगी, जिसका उपभोग करने को प्राण भी व्याकुल हो उठते हैं।

1. चल पड़े कब से हृदय दो, पथिक-से अश्रांत,
   यहाँ मिलने के लिए, जो भटकते थे भ्रांत।

संदर्भ:

व्याख्या: श्रद्धा और मनु का मिलन उन दो पथिकों के समान था जो एक दूसरे को ढूँढ़ने के लिए घर से निकले हों और मार्ग में दोनों मिल गये हों, परन्तु दोनों एक दूसरे से अपरिचित होकर बिना थके हुए किन्तु भूलकर भटकते हुए-से चल रहे थे। श्रद्धा और मनु दोनों एक दूसरे के पूरक थे- यदि मनु घर का स्वामी था तो श्रद्धा पवित्र भावनाओं से युक्त थी। यदि मनु प्रश्न था तो श्रद्धा उस प्रश्न का उदार उत्तर थी।

विशेष: उपमा और परम्परित रूपका।

2. कालिमा घुलने लगी धुलने लगा आलोक,
   इसी निभृत अनंत में बसने लगा अब लोक।
   इस निशामुख की मनोहर सुधामय मुस्कान,
   देख कर सब भूल जाएँ दुःख के अनुमान।

संदर्भ :

व्याख्या: श्रद्धा मनु से करती है कि चंद्रमा के उदय होने के कारण अन्धकार मिटता जा रहा है और प्रकाश फैलने लगा है। इस सूने आकाश में अब विविध प्रकार के तारे भी निकलने लगे है। आओ, इस स्वच्छ चाँदनी में विहार करें और चन्द्रमा की मनोहर एवं अमृत से भरी हुई चाँदनी को देखकर अपने सारे दुःखों भूलने का प्रयत्न करें।

विशेष: मानवीकरण अलंकार।

6. लज्जा: जब श्रद्धा ने मनु के समक्ष समर्पण कर दिया तो उसके जीवन में शारीरिक और मानसिक परिवर्तन सहसा इतने हो गये कि उन परिवर्तनों को देखकर स्वयं श्रद्धा भी आश्चर्यचकित हो गई। उसका हृदय एक प्रकार के उन्माद से भर गया जिसमें शत-शत मधुर अभिलाषाएँ उमगने लगीं। अब वह न तो खुलकर हँस पाती थी और खुलकर बोल ही सकती थी। वह स्वयं में ही सिमटी जा रही थी। उसकी हँसी उसके अधरों तक, आकर रुक जाती थी। उसके नेत्रों में वक्रता आ गई थी । वह जो कुछ देखती थी, वह सभी स्वप्न सा बनता जा रहा था । उसका हृदय असंख्य अभिलाषाओं से भर गया था। जिस मनु के साथ वह निस्संकोच विचरण किया करती थी, अब उसे छूने में भी उसे झिझक लगती थी। उसे देखते ही उसकी पलकें झुक जाती थी और कलरव परिहास भरी हुई गूंजे। उसके अधरों पर आकर रुक जाती थीं। श्रद्धा को अपने इन परिवर्तनों का तो ज्ञान था, किन्तु इन कारणों को वह प्रयत्न करने पर भी नहीं जान पा रही थी।

एक दिन संध्या समय श्रद्धा अपने, इन्ही परिवर्तनों पर विचार कर रही थी कि सहसा उसे एक आकृति - सी अपनी ओर आती हुई दिखाई दी। यह लज्जा थी। लज्जा ने आकर उसे बताया कि उसके सब परिवर्तनों का कारण वही है। लज्जा ने अपना परिचय देते हुए श्रद्धा को बताया कि वही युवतियों का मार्गप्रदर्शन करने वाली है। देव-सृष्टि के विध्वंस से पूर्व वह इस धरा पर रति के रूप में विद्यमान थी, किन्तु देवों का नाश हो जाने पर वह एक भावना के रूप में रह गई। लज्जा का परिचय प्राप्त कर लेने के पश्चात् श्रद्धा ने पूछा कि वह अपना जीवन किस प्रकार बिताये ? क्या वह अपना सर्वस्व मनु को समर्पित कर दे ? इस पर लज्जा ने उत्तर क दिया कि तुम तो केवल श्रद्धा हो और तुम्हारा हृदय विश्वास से भरा हुआ है। अतः तुम्हें तो केवल अमृतमयी नदी की भाँति बहते हुए अपने जीवन को और मनु के जीवन को सुखी बनाना चाहिए, क्योंकि नारी का नारीत्व सर्वस्व समर्पित करने में ही है।

1. कोमल किसलय के अंचल में नहीं कलिका ज्यों छिपती-सी

   गोधूली के धूमिल पट में दीपक के स्तर छिपती-सी।

संदर्भ: लज्जा सर्ग ..

व्याख्या: अपनी ओर बढ़ती हुई एक छाया को देखकर श्रद्धा कहती है कि जिस प्रकार नन्ही कली स्वयं को कोमल तथा नवीन पत्तों में छिपा लेती है, उसी प्रकार तुम अपने सुन्दर अंचल में अपने-आपको छिपाने का प्रयास करती हुई-सी, जिस प्रकार संध्या-समय गौओं के खुरों से उठी हुई धूल के पट में दीपक की लौ धूमिलता से दिखाई देती है, उसी प्रकार अपने पट से अपने सौन्दर्य को प्रकाशित करती हुई-सी तुम कौन हो ?

विशेष: उपमालंकार।

7. कर्म: श्रद्धा मनु को बार-बार कर्मशील बनने की प्रेरणा देती रही। इसी से प्रेरित होकर मनु ने यज्ञ करने की सोची, किन्तु उन्हें इस बात की चिन्ता थी कि उनके पास कोई दुरोहित नहीं था। श्रद्धा और मनु की भाँति किलात और

आकुलि नामक दो असुर पुरोहित भी बच गये थे, जो बहुत दिनों तक इधर-उधर मारे मारे फिरने के पश्चात् एक दिन मनु की गुफा पर आ गए। श्रद्धा द्वारा पालित हृष्ट-पुष्ट पशु को देखकर उनका जी उसका माँस खाने के लिए ललचाने लगा किन्तु श्रद्धा सदैव छाया की भाँति उस पशु के पास रहती थी इसीलिए वे पशु वधा का उपाय सोचने लगे।

जब मनु के पास गए और उन्हें पता लगा कि मनु को यज्ञ के लिए एक पुरोहित की आवश्यकता है तो उन्होंने मनु से कहा कि तुम जिस देवता का यज्ञ करना चाहते हो आज उन्हीं मित्र वरुणा देवता ने हमें तुम्हारे पास भेजा है। अतः अब तुम चिंता छोड़कर और यज्ञ वेदी पर चलकर यज्ञ आरम्भ करो। हम पुरोहित बनकर तुम्हारा कार्य पूरा करवायेंगे। उसकी बात सुन कर मनु को अत्यन्त प्रसन्नता हुई और उन्होंने किलात और आकुलि का आगमन देवता का बलिदान माना। असुर पुरोहितों की प्रेरणा से यज्ञ वेदी पर ही श्रद्धा के पालित पशु का वध किया गया। पशु की कातर वाणी चारों ओर गूंज गई और उसकी हड्डियों तथा खून के छींटों से एक अत्यन्त कारुणिक दृश्य उपस्थित हो गया। श्रद्धा इस दृश्य को न देख सकी और चुपचाप उठकर गुफा में चली गई।

श्रद्धा के चले जाने पर मनु को अत्यन्त बेचैनी हुई उन्होंने सोचा कि श्रद्धा रूठ कर चली गई है। अतः वे मांस से बने हुए पुरुडास को खाकर और सोमरस पीकर नशे में सब कुछ भूलने का प्रयत्न करने लगे। किन्तु फिर भी उनकी बेचैनी दूर नहीं हुई। अतः वे श्रद्धा के पास पहुँचे। श्रद्धा गुफा में लेटी हुई थी और सोच रही थी कि मनु का मन कितना कठोर और घातक होता जा रहा है। तभी मनु ने उसके पास आकर कहा कि श्रद्धा! मैं जो कुछ कर रहा हूँ वह सब जीवन को सुन्दर और सुखमय बनाने के लिए कर रहा हूँ अतः तुम रूठना छोड़कर मेरे साथ चलो और इस ज्योत्स्ना पूर्ण रजनी में हम दोनों मधुर सोमरस का पान करके आनन्द मनाएँ। श्रद्धा ने मनु की भर्त्सना करते हुए कहा कि तुम्हारा मन अत्यधिक निष्ठुर हो गया है, तुम में मानवता का लेश भी नहीं है क्या निरीह पशुओं को जीवित रहने का अधिकार नहीं है यदि तुम उनका बंध करते रहे तो किस प्रकार से मानदत्ता का विकास कर सकोगे ? श्रद्धा की बातें सुनकर मनु ने कहा कि तुम्हारी बातें ठीक हैं किन्तु संसार में वैयक्तिक सुख भी तो तुच्छ नहीं है, हमें जो क्षणिक जीवन मिला है उसे सुखमय बनाने के लिए पूर्ण प्रयत्न करना चाहिए। मनु की स्वार्थ भरी बातें सुनकर श्रद्धा ने क्षोभ से कहा कि ये ठीक है कि वैयक्तिक सुख तुच्छ नहीं हैं किन्तु कोई व्यक्ति अपने में ही सीमित रह करके किस प्रकार सुख प्राप्त कर सकता है, यह एकान्त स्वार्थत्व भयंकर शत्रु है अतः हमें अपने वैयक्तिक जीवन को विस्मृत करके अन्य प्राणियों के जीवन को सुखी बनाने के प्रयत्न करना चाहिए।

श्रद्धा के क्रोध को शान्त करने के लिए मनु ने सोमरस का पान किया। कामाभिभूत होकर मनु ने श्रद्धा से कहा कि इस मधुर मिलन के समय लज्जा और संकोच की आवश्यकता नहीं है, अत: इन्हें दूर करके आनंद पूर्वक दो हृदयों को परस्पर मिलने दो। इस प्रकार उस एकान्त गुफा में दीर्घकाल के बिछुड़े हुए दो हृदय परस्पर मिल गये।

1. कर्मसूत्र - संकेत सदृश थी सोमलता तब मन को,

   चढ़ी शिंजिनी थी, खींचा फिर उसने जीवन धनु को।

   हुए अग्रसर उसी मार्ग में छूटे-तीर - से फिर वे,

   यज्ञ यज्ञ की कटु पुकार से रह न सके अब थिर वे।

संदर्भ:

व्याख्या: मनु की गुफा के चारों ओर जो सोमलताएँ फैली हुई थीं वे उन्हें कर्म में प्रवृत्त होने का संकेत-सा देकर उनके जीवन को कर्म की ओर इसी प्रकार खींच रही थी जिस प्रकार प्रत्यंचा धनुष को अपनी ओर खींच लेती है। जिस प्रकार छूटा हुआ तीर तेजी से अपने लक्ष्य की ओर चलता है उसी प्रकार मनु भी कर्म मार्ग में प्रवृत्त होने के लिए आगे बढ़े। उनके हृदय में यज्ञ करने की तीव्र इच्छा उत्पन्न हो रही थी, जो उन्हें स्थिर नहीं रहने देती थी।

विशेष: उपमा और वीप्सा अलंकार।

8. ईर्षा: ईर्षा के वसीभूत होकर एक दिन मनु श्रद्धा को छोड़कर वहाँ से चुपचाप भाग निकले। मार्ग में उन्हें अनेक पर्वत और नदियाँ मिली। नदियों को देखकर मनु के मन में यह विचार उठा कि जिस प्रकार ये नदियाँ किसी अज्ञात दिशा की ओर बढ़ती चली जा रहीं है, उसी प्रकार मेरा भी कोई गन्तव्य नहीं है। उनके मन में नाना प्रकार के भावों का उदय और अस्त हो रहा था। चलते-चलते वे सारस्वत नगर के पास आ गए जो अब केवल खंडहर रह गया था। उसके खंडहरों को देखकर मनु को उसका अतीत जीवन याद आया। वे सोचने लगे कि कभी यही नगर देव और असुरों की संस्कृति का केंद्र था। इसी सरस्वती नदी के किनारे विचलित तो इन्द्र से वृत्रासुर का वध किया था। इस विचार के स्मरण होते ही मनु विचलित हो उठे। उन्हें सहसा देव जाति का स्मरण हो आया जो अपने अहंकार के वशीभूत होकर भोग विलासों में लीन रहती थी तथा असुर-जाति का सर्वस्व नष्ट करने को कटिबद्ध रहती थी। इसीलिए इन दोनों जातियों में परस्पर चोर संग्राम हुआ करते थे। जिसका परिणाम यह हुआ कि असुर - जाति के साथ-साथ देव जाति का भी नाश हो गया।

मनु इसी प्रकार के विचारों में लीन होकर वेदना-विकल हो रहे थे कि अचानक उन्हें काम की वाणी सुनाई दी। काम ने उन्हें शाप देते हुए कहा कि हे मनु? जिस श्रद्धा ने अपना सर्वस्व तुम्हें समर्पित कर दिया, उसे ही तुम भूल गये और उसे असहाय अवस्था में छोड़कर भाग गये। अतः तुम्हें जीवन में कभी भी सुख और शान्ति प्राप्त नहीं होगी। तुम निरंतर कष्ट भोगते रहोगे और जिस प्रजातंत्र की तुम स्थापना करना चाहते हो, उस में भी सदैव द्वेष और संघर्ष की भावनाएँ पनपती रहेंगी।

काम का शाप सुनकर मनु कुछ देर के लिए स्तब्ध से रह गये। उन्हें विश्वास हो गया कि जीवन में उन्हें कभी सुख और शान्ति प्राप्त न होगी। इन्हीं निराशा भरे विचारों में उनकी रात्रि व्यतीत हुई। जब प्रातः काल हुआ तो उन्हें एक अनुपम सुन्दरी दिखाई दी। जो मनु को देखकर उनके पास आ गई और अपना परिचय देती हुई बोली- मेरा नाम इड़ा है और मैं इस उजड़े हुए सारस्वत नगर की साम्राज्ञी हूँ। फिर मनु का परिचय प्राप्त करके उसने उन्हें सांत्वना दी तथा सारस्वत नगर को पुन: बसाने का भार मनु को सौंप दिया। इस भार को ग्रहण करके मनु को अनुभव हुआ जैसे उन्हें एक ऐसा अवलम्ब मिल गया है जिसके आधार पर वे समस्त संकल्प-विकल्पों से छुटकारा पाकर जीवन में सुख और शान्ति प्राप्त कर सकेंगे।

1. पर भर की उस चंचलता ने खो दिया हृदय का स्वाधिकार
   श्रद्धा की अब वह मधुर निशा फैलाती निष्फल अंधकार !

संदर्भ:

व्याख्या: श्रद्धा ने मनु को अपना सर्वस्व समर्पण कर दिया और वह मनु को अपना जीवन साथी चुन चुकी है। इसलिए वह मनु को अत्यधिक प्रेम करती थी परन्तु मनु का प्रेम तो ढोंगी था। उसने अपनी ढोंग भरी बातों से श्रद्धा को

बहुत प्रभावित किया था। इसीलिए श्रद्धा मनु के बिना बेचैन रहने लगी। वह कहती है कि मन की क्षण भर की चंचलता ने जीवन भर की स्वतंत्रता को समाप्त कर दिया। अब हृदय के पास चला जाने के कारण सदैव के लिए परतन्त्र हो गया। जैसे मधुर चाँदनी रातों के उपरान्त अन्धेरी रातें आती हैं, उसी प्रकार वह अपने शरीर का माधुर्य समर्पित कर बैठी, तब उसके जीवन में असफलता और निराशा का घना अंधकार शेष रह गया।

विशेष: 'मधुर निशा' और 'निष्फल अंधकार' में लक्षणलक्षणा है। रूपकसातिशयोक्ति अलंकार है।

9. इड़ा

कथासार मनु श्रद्धा को छोड़कर भटकते हुए सरस्वती नदी के किनारे पहुँच गए जहाँ पर सारस्वत प्रदेश उजड़ा हुआ पड़ा था। यह वही सारस्वत नगर था जो कभी देव-संस्कृति का केन्द्र था। यहीं पर इन्द्र ने वृत्रसुर का वध किया था। इस घटना के याद आते ही मनू के मन में देव और असुरो का संघ घूम गया। उन्हें इन दोनों जातियों के प्रति एक प्रकार की घृणा और विरक्ति ने घेर लिया क्योंकि उन दोनों का संघर्ष किसी लोकहित भावना से नहीं वरन् अपने दम्भ के कारण होता है। इसी समय मनु को लगा कि जैसे वह असहाय और एकांकी है। वास्तव में श्रद्धा विहीन होकर वह एक- दम दुर्बल व्यक्ति है।

मनु इसी विचारधारा में डूबे हुए थे कि सहसा उन्हें आकाशवाणी के रूप में काम का शाप सुनाई दिया- 'मनु ! तुम उस परम विश्वासमयी श्रद्धा को भूल गए। उसने तो तुम्हारे लिए अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया था, किंतु तुम्हारे हृदय में बराबर अविश्वास एवं स्वार्थ बना रहा और तुम सदैव 'कुछ मेरा हो' की संकुचित भावना से भरे रहे। अब इसी संकुचित भावना के कारण तुम्हें तनिक भी सुख नहीं मिलेगा। तुम्हारे जीवन में सदैव द्वन्द्व चलता रहेगा और तुम जिस प्रजातन्त्र राज्य की स्थापना करना चाहते हो, तुम्हारा वह प्रजातन्त्र भी शाप से भरा रहेगा। सारी प्रजा भेद भाव से भर जाएगी। वह नाना प्रकार की समस्याओं में उभरकर अपने ही विनाश का प्रयत्न करेगी। निरन्तर कोलाहल और कलह बढ़ते रहेंगे। जनता को अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति तो दूर रही प्रत्युत् उन्हें अनिच्छित खेद ही प्राप्त होगा। एक दूसरे को भी पहचान न सकेंगे और सब कुछ पास होने पर भी उन्हें मत प न मिलेगा। इस तरह इस संकुचित दृष्टि के कारण सभी को प्रमित कष्ट प्राप्त होमा, नाना प्रकार के संदेह उत्पन्न होते रहेंगे स्वजनों में विरोध फैलेगा चारों ओर दरिद्रता फैलेगी, दोनों में सतत विरोध बना रहेगा। सर्वत्र सद्भावना एवं सहानुभूति का प्रभाव रहेगा और भेद भाव के फैल जाने से मानव की असीम एवं अमोघ शक्ति का ह्रास हो जाएगा। सारा जीवन ही संघर्ष बन जाएगा, जनता जरा-मरण के चक्कर में पड़कर सदैव प्रशान्त बनी रहेगी और तुम्हारी प्रजा यह रहस्य न जान सकेगी कि जीवन में श्रद्धायुत रहने से ही यह भूमि कल्याणमयी बन जाती है, अन्यथा यह लोक संकट और संघर्ष से ही भरा रहता है।" काम का शाप सुनकर मनु अवाक् रह गए। उन्हें लगा जैसे उनका भविष्य अत्यंत दुखपूर्ण और यातनाओं से भरा हुआ है। वे वहीं सरस्वती नदी के किनारे पर बैठ गए।

प्रभात होने पर उन्हें वहीं पर एक अनुपम सुन्दरी बाला दिखाई दी जिसका नाम इड़ा था। इड़ा ने मनु से उसका परिचय प्राप्त करके कहा- आओ सारस्वत प्रदेश में रहो। यद्यपि यह प्रदेश भौतिक हलचल के कारण उजड़ गया है तथापि मुझे आशा है कि एक दिन यह फिर से बस जाएगा। तुम इसके स्वामी बनो और इसको फिर से बसाने का भार अपने कंधों पर लो। इड़ा को बात सुनकर मनु के हृदय में नवीन स्फूर्ति का संचार हो गया। उन्होंने सारस्वत प्रदेश को फिर से बसाने का कार्य अपने हाथ में ले लिया।

1. किस गगन गुहा से अति अधीर---------- किस लक्ष्य-भेद को शून्य चीर?

संदर्भ:

व्याख्या: श्रद्धा को छोड़ कर मार्ग में भटकते हुए मनु अपने जीवन की तुलना आँधी से करते हुए कहते है कि जिस प्रकार आँधी का प्रवाह तीव्र गति से भीषण रूप धारण करके और अधीर होकर किसी गहरी गुफा से निकल कर आगे बढ़ता है, उसी प्रकार मेरा यह व्यथित जीवन भी हिमालय की गुफा से निकल कर किसी अज्ञात लक्ष्य की ओर तेजी से दौड़ रहा है जिस प्रकार भयंकर आँधी में मिट्टी, धूल आदि के कण मिले हुए होते हैं, उसी प्रकार मेरा यह जीवन भी आकाश, वायु, अग्नि, पृथ्वी और पानी का समूह है, अर्थात् यह पंचतत्वों से बना हुआ है। जिस प्रकार आँधी सभी को भय प्रदान करती है और भय की उपासना में ही तल्लीन सी दिखाई देती है उसी प्रकार मेरा यह जीवन भी सभी के लिए भयभीत बना हुआ है। जिस प्रकार आँधी बसे हुओं को उजाड़ कर संसार में विषमता और गरीबी को जन्म देती है, उसी प्रकार मेरा यह जीवन भी संसार के प्रत्येक प्राणी को कहता बाँट कर उन्हें अधिक दीन बना रहा है।

जिस प्रकार आंधी का तीव्र प्रवाह रेगिस्तान की बालू तथा अन्य उपजाऊ मिट्टी के कणों को खेतों में जहाँ वहाँ फैलता निर्माण का कार्य करता है और अपने तेज झोंकों से बसे हुओं को उजाड़ कर विनाश का कार्य करने में ही अपनी शक्ति दिखाता है, उसी प्रकार मेरा जीवन भी निर्माण और विनाश के कार्यों में लगा हुआ है क्योंकि मैं ने श्रद्धा का घर बसा कर निर्माण का कार्य और वहाँ से भागकर विनाश का कार्य किया है। जिस प्रकार आँधी को सभी के प्रति विराग और सभी के प्रति ममता होती है, उसी प्रकार मेरा जीवन भी वैराग्य और ममता से बंधकर संघर्ष सा कर रहा है। जिस प्रकार किसी लक्ष्य को भेदने के लिए अंतरिक्ष को चीरता हुआ कोई तीक्षण तीर धनुष से छूटता है, उसी प्रकार मेरा यह शाश्वत, जीवन न जाने किस, उद्देश्य की पूर्ति के लिए जगत की शून्यता की को पार करता हुआ तेजी से आगे बढ़ रहा है।

विशेष: सांगरूपक अलंकार है।

10. स्वप्न

कथासार - जब मनु श्रद्धा को छोड़कर चले गये तो श्रद्धा हिमालय की उन विस्तृत गुफा में अकेली ही अपने विरह के दिन अत्यन्त उदास और दुखी रहकर काटने लगी। विरह-दुःख के कारण उसके शरीर की सारी कांति क्षीण हो गई। उस समय वह मकरन्दहीन पुष्प, रंगहीन चित्र, ज्योतिहीन चन्द्रमा, प्रकाशहीन सन्ध्या और मुरझाए हुए कमल के समान दिखाई देती थी। उसे क्षण-भर को भी चैन नहीं मिल रहा था। अपने दुःख को भुलाने के लिए कभी वह आकाशगंगा से पूछती कि इस जीवन में सुख अधिक है या दुःख ! वह फिर भी अपना दुःख भूल न पाती। कभी वह यह सोचकर अपने मन को सान्त्वना देने का प्रयास करती कि चाहे मनु जहाँ हो, मुझे इसी में सुख है कि मैं अकेली इस कुटिया में शांति के साथ विरहाग्नि में जलती रहूं, और मेरी यह दीपशिखा कभी भी न बुझे। प्रकृति का समूचा सौन्दर्य उसके हृदय को अत्यधिक पीड़ा देता, किन्तु वह कड़ा हृदय करके अपने असीम दुःख को सहन करने का प्रयास करती। पुरानी बातें, मधुर मिलन के विगत स्वप्न, उसके विचारों में मँडराने लगते, किन्तु वह दृढ़ता से उनका दुःख भी सहन कर लेती।

एक दिन संध्या के समय, अपनी कुटिया के सामने बैठी हुई श्रद्धा इसी प्रकार के विचारों में लीन थी। तभी उसका पुत्र मानव माँ-माँ चिल्लाता हुआ आया। वह धूल-धूमरित था। उसने आकर श्रद्धा को पकड़ लिया। श्रद्धा ने अनमने भाव से उसे दुत्कारा - चल हट, तू भी अपने पिता की भाँति किसी दिन मुझसे रूठकर दूर भाग जायेगा। मानव

इस मधुर दुत्कार को सुनकर कुटिया के अन्दर जाकर सो गया। श्रद्धा का वात्सल्य उमड़ पड़ा। उसने सो हुए मानव का चुम्बन ले लिया, पर इससे उसकी विरह-वेदना में वृद्धि ही हुई।

थोड़ी देर बाद, श्रद्धा भी अपने पुत्र के पास आकर सो गई। उसने स्वप्न में देखा कि मनु इड़ा के पास पहुँच गये हैं और इड़ा के इशारे पर ही सारे कार्य कर रहे हैं। उन्होंने इड़ा के कहने से उसका उजड़ा हुए। सारस्वत प्रदेश फिर से बसा दिया है। उसमें बड़े-बड़े प्राचीर बनवाये गये हैं जहाँ वर्षा, धूप शीत आदि से बचने के लिए सुन्दर व्यवस्था की गई है।

सभी लोग अपने-अपने कार्यों में नवीन उत्साह लेकर लग गये हैं। किसान अत्यधिक प्रसन्न होकर अपने खेतों में हल चला रहे हैं। स्वर्णकार सोने-चांदी को गलाकर विविध प्रकार के प्राभूषण तैयार कर रहे हैं। लोग मृगया से लौटकर सुन्दर-सुन्दर उपहार ला रहे हैं। मालिनें बागों में से खिले हुए फूलों को चुनकर उनके रंगों से तथा रसों से अनेक प्रकार के अंगराग के प्रसाधन बना रही हैं। नगर में सर्वत्र संगीत की मधुर ध्वनियाँ थिरक रही हैं। भावना यह है कि वह नगर पूर्णतः सुख और सम्पत्ति से भरा हुआ है।

श्रद्धा प्रहरियों की आँखें बचाकर राजमहल में घुस गई। उसने देखा कि एक ऊँचे सिंहासन पर मनु विराजमान हैं। साथ इड़ा बैठी हुई है, जो उन्हें मदिरा रे प्याले पर प्याले पिला रही है। अर्ध-उन्माद की अवस्था में मनु ने पूछा-इड़ा ने क्या तुम्हारे नगर में अभी और कुछ करना शेष रह मया है ? इड़ा ने उत्तर दिया -अभी कार्य पूरे कहाँ हुए हैं।

क्या सभी साधन अपने वश में कर लिए? इस पर मनु ने उत्तर दिया कि कभी तक तो मैं अपने हृदय को भी वश में नहीं कर पाया हूँ। यद्यपि मैंने तुम्हारा नगर फिर से बसा दिया है, तथापि मेरा हृदय अभी तक उंजड़ा हुआ ही है। इसी आवेश में आकर मनु ने इड़ा का श्रालिंगन कर लिया। इड़ा का आलिंगन करते ही सारे नगर में क्रांति मच गई। प्रकृति भी क्षुब्ध हो उठी। सारस्वत नगर के निवासी राजनियमों की उपेक्षा करके मनु से इस अपमान का बदला लेने के लिए कटि- बद्ध सो गये। अचानक ऐसी विषम एवं भयानक परिस्थिति देखकर मनु राजद्वार बन्द करवा दिया और हृदय में एक प्रकार का आंतक-सा लिए हुए अपने शयनागार में चले गये।

1. सन्ध्या अरुण जलज केसर ले अब तक मन थी बहलती,

मुरझा कर कब गिरा तामरस, उसको खोज कहाँ पाती !

क्षितिज भाल का कुंकुम मिटता मलिन कालिमा के कर से,

कोकिल की काकली वृथा ही अब कलियों पर मैंडराती।

संदर्भ:

व्याख्या: कवि सन्ध्या का वर्णन करता हुआ कहता है कि जिस प्रकार कोई नायिका अपने हाथ में लाल कमल का पीला पराग लेकर अब तक अपने मन को बहलाती रही है, वहीं कमल, मुरझाकर उसके हाथ से गिर पड़ता है और वह अँधेरा होने के कारण उसे खोज नहीं पाती, उसी प्रकार संस्था भी अस्त होते हुए लाल सूर्य की पीली किरणों से अब तक अपने मन को बहलाती रही और अब वह सूर्य प्रकाशहीन होकर न जाने कहाँ जा गिरा, अस्त हो गया। संध्या अंधेरा होने के कारण अब उसको ढूँढ़ भी तो नहीं सकती। अन्धकार के मलिन करों ने क्षितिज के भाल की लालिमा को इस प्रकार मिटा दिया है, जिस प्रकार क्रूर काल किसी सौभाग्यवती नारी के भाल के सिंदूर को देखते-देखते ही पोंछ

देता है। इस समय कमल की मुरझाई हुई कलियों पर कोयल व्यर्थ ही अपने मधुर स्वर को गुँजा रही है, अर्थात् कोयल के स्वर में अब कोई माधुर्य प्रतीत नहीं होता।

विशेष: कवि ने यहाँ पर प्रकृति का जिस कुशलता से चित्रण किया है, यह आगे आने वाली श्रद्धा की विरह-कथा का स्पष्ट संकेत है। श्रद्धा भी तो मनु को इसी प्रकार नहीं ढूंढ़ पा रही है, जिस प्रकार नायिका को कमल और संध्या को सूर्य नहीं मिल रहा है। रूपकातिशयोक्ति और समासोक्ति अलंकार है।

11. संघर्ष

कथासार -श्रद्धा ने जो स्वप्न देखा था वह सत्य सिद्ध हुआ। प्रजा का विद्रोह देखने के पश्चात् मनु अपने शयन कक्ष में चले तो गए किन्तु उन्हें नींद नहीं आई। वे पड़े-पड़े यही सोचते रहे कि सारस्वत नगर की जिस प्रजा को मैंने सर्व सुखों से सम्पन्न बनाना चाहा उसी ने मेरे विरुद्ध विद्रोह कर दिया। मैं इसका राजा हूँ अतः मुझे न तो प्रजा के विद्रोह से डरना अपने अधिकारों का समर्पण ही करना चाहिए नहीं का तो इड़ा के सम्मुख झुकने का प्रश्न ही पैदा नहीं होता। बन्धन में बांधना चाहती है। उसे यह पता नहीं है कि संसार का प्रत्येक पदार्थ बन्धनहीन है। रवि, शनि, तारे आदि सभी स्वतन्त्रतापूर्वक ही विचरण करते हैं। पृथ्वी कभी समुद्र वन जाती है प्रौर कभी समुद्र मरुस्थल के रूप में परि- वर्तित हो जाता है। आज न जाने क्यों मेरी प्रजा में यह धारणा घर कर गई है कि विश्व एक नियम से बँधा हुआ है अतः नियामक को भी नियमों का पालन करते हुए बन्धन में ही रहना चाहिए। किन्तु मैं किसी का भी बन्धन स्वीकार नहीं कर सकता।

जब मनु की विचारधारा कुछ क्षण के लिए टूटी तो उन्होंने इड़ा को अपने पास खड़ा देखा। इड़ा ने मनु को समझाना प्रारम्भ किया कि यदि नियमों का बनाने वाला ही उनका पालन नहीं करेगा तो निश्चित रूप से समाज में ब्यवस्था नहीं आ सकती। यदि तुम चाहते हो कि सभी लोग तुम्हारे नियमों पर चलें तो तुम्हें भी उनका पालन करना चाहिए। सारा विश्व एक ही चेतना का विराट् शरीर हैं और मानव चेतना का विकसित रूप है। यद्यपि सर्वत्र, एक ही चेतना विद्यमान हैं तथापि वह भिन्न-भिन्न पदार्थों के रूप में विभाजित हुई सी दिखाई देती है। इसीलिए संसार में जीवन के लिए संघर्ष चलता रहता है उस संघर्ष में वे लोग जीत जाते हैं जो शक्तिशाली होते है और दुर्बल नष्ट हो जाते हैं। इसीलिए सारा संसार राग और द्वेष से भरा हुआ है और प्रत्येक प्राणी अपने लिए सुख की सामग्री एकत्र करने में तल्लीन है। राष्ट्र का स्वामी होने के नाते तुम्हारा यह कर्त्तव्य है कि तुम वैयक्तिक सुख और स्वार्थ की अपेक्षा सामाजिक सुख को महत्व दो। प्रजा के स्वार्थ एवं हित में अपना हित समझते हुए प्रजा के अनुकूल होकर शासन करो।

इड़ा की यह बातें सुनकर मनु कुछ उत्तेजित हो उठे उन्होंने कहा कि क्या प्रजापति होने का मेरा यही अधिकार है कि मैं सदैव अतृप्त रहूँ और अपनी किसी भी अभिलाषा को पूर्ण न करू। अतः यदि मैं अपनी अभिलाषा पूर्ण नहीं कर सकता तो मुझे प्रजापति का अधिकार भी नहीं चाहिए। मैं तुम पर अपना पूर्ण अधिकार चाहता हूँ और अपने इसी अधिकार को प्राप्त करने के कारण समस्त देव शक्तियाँ मेरे विरुद्ध होकर उत्पात मचा रही हैं। इस समय तुम मेरे पास ही रहो मुझे अधिकार के धोखे में डालकर अपने प्रेम में वंचित मत करो।

इड़ा ने मनु को बहुत कुछ समझाने का प्रयत्न किया किन्तु मनु अपने हठ पर अड़े ही रहे। उन्होंने इड़ा को स्पष्ट बता दिया कि यदि उनकी इच्छा की पूर्ति नहीं होगी तो समूचा सारस्वत नगर फिर से नष्ट हो जाएगा। इड़ा ने मनु को पुनः समझाने का प्रयत्न किया, किन्तु मनु अपने मानसिक आवेश को न रोक सके और उन्होंने इड़ा को बलात् अपनी ओर खींचकर हृदय से लगा लिया। तभी राजभवन का सिंह द्वार तोड़कर प्रजा अन्दर घुस आई और मनु को सम्बोधित

करके कहने लगी कि हे पापी ! तूने हमें सुख की अपेक्षा दुःख ही अधिक दिया है। तूने लोभ दिखाकर हमें संवेदनशील बना दिया, जिसके कारण हम अनावश्यक रूप से दुःखी होते रहे। तूने यंत्रों का आविष्कार करके हमारी स्वाभाविक शक्ति छीन ली और अब हमारी रानी पर भी प्रत्याचार करने पर तुला हुआ है। तुझे तेरे पाप का दण्ड अवश्य मिलेगा। तभी मनु और प्रजा के अन्तर्गत संघर्ष छिड़ गया। प्राकृतिक शक्तियां भी प्रजा की सहायक बन गई। भयंकर युद्ध हुआ। अन्त में भगवान शंकर के भयंकर वारग से मनु मुच्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े।

1. श्रद्धा का था स्वप्न किंतु वह सत्य बना था,

इड़ा संकुचित उधर प्रजा से क्षोभ घना था।

भौतिक - विप्लव देख विकलं वे थे घबराये,

राज-शरण में प्राण प्राप्त करने को आये।

संदर्भ: इन पंक्तियों को कामायनी के संघर्ष सर्ग से दिया गया है।

व्याख्या: श्रद्धा ने जो स्वप्न देखा वह बिल्कुल सत्य था। मनु के अनैतिक व्यवहार के कारण इड़ा अत्यन्त सकुचा रही थी और प्रजा क्रोध से परिपूर्ण थी क्योंकि प्राकृतिक हलचल देखकर वे सभी दुःखी और घबराए हुए थे और अपनी रक्षा की आशा से राजभवन में शरन लेने के लिए आये थे।

12. निर्वेद

कथासार - जब इड़ा की प्रजा और मन के बीच का घोर संग्राम समाप्त हुआ तो सर्वत्र शोक और वीभत्सा का वातावरण छा गया। राजभवनों में भयावह सूनापन हो गया। एक राजमहल में मनु मूच्छित अवस्था में पड़े हुए थे और उन्हीं के निकट बैठी हुई इड़ा मनु के प्रति करुणा के भावों में लीन थी। उसे वह समय याद आ रहा था मनु के एक परदेशी के रूप में उसे मिले थे और मनु ने कितने प्रयत्न से सारस्वत नगर को पुनः बसाया था। जिन व्यक्तियों के सुख के लिए मनु ने अथक प्रयत्न किया, वे ही इनके विरोधी बन गये और विषम आघातों से इसे मूर्च्छित कर गये।

इसी बीच इड़ा को दूर से आती हुई किसी विरहिणी की विकल ध्वनि सुनाई पड़ी जो एक बच्चे का हाथ पकड़े उसी राजभवन की ओर आ रही थी। वह श्रद्धा थी। इड़ा ने दया से द्रवित होकर उसे आश्रय दिया, किन्तु जब श्रद्धा ने मूर्च्छित मनु को पड़े हुए देखा तो उसकी व्यथा असीम हो गई। उसने मनु को सहलाना आरंभ किया जिससे उनकी मूर्च्छा दूर हो गई और उन्होंने श्रद्धा को उसी प्रकार देखा जिस प्रकार कोई अपराधी अपने हितैषी को देखता है। मनु ने प्रायश्चित्त भरे श्रद्धा के उन गुणों का और उपकारों का वर्णन किया, जिनके द्वारा उसने मनु को उन्नति के शिखर पर पहुँचाने का प्रयास किया था। श्रद्धा केवल सुनती रही, चुपचाप और भरी हुई आँखों से।

इसी प्रकार वह भयावह रात्रि समाप्त हो गई और दिन निकल आया। पुनः रात्रि हो गई। लम्बे मार्ग की थकान और रात भर के जागरण के कारण श्रद्धा को नींद आ गई। मनु को श्रद्धा के सम्मुख रहना दुसह्य हो रहा था और फिर वे सारस्वत निवासियों से प्रतिशोध भी तो लेना चाहते थे, जो श्रद्धा के रहते हुए सम्भव नहीं था, अतः अवसर पाकर वे रात को चुपचाप श्रद्धा और कुमार को छोड़कर पुनः भाग निकले। प्रातः काल होने पर जब श्रद्धा, कुमार और इड़ा को उनके भाग जाने का पता चला तो वे तीनों प्राणी अत्यधिक दुःखी हुए। इस कार्य से इड़ा को लज्जा भी आ रही थी

क्योंकि इस कार्य के लिए वह स्वयं को ही दोषी मान रही थी। श्रद्धा चुपचाप बैठी थी जैसे किसी गहरी उलझन में उलझ रही हो।

1. वह सारस्वत नगर पड़ा था क्षुब्ध, मलिन, कुछ मौन बना,

जिसके ऊपर विगत कर्म का विष-विषाद, आवरण तना।

संदर्भ:

व्याख्या: मनु और सारस्वत निवासियों के मध्य हुए युद्ध के उपरांत सारस्वत नगर की दशा का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि वह सारस्वत नगर विचलित, मलिन और कुछ मौन -सा बना हुआ सुनसान पड़ा हुआ था जिसके ऊपर हाल ही में हुए युद्ध का भयंकर दुःख का पर्दा तना हुआ था, अर्थात् पारस्परिक युद्ध ने सारस्वत नगर की शोभा को छिन्न-भिन्न कर दिया था और अब वह बिल्कुल सुनसान नगर दिखाई देता था।

विशेष: मानवीकरण अलंकार।

13. दर्शन

कथासार - मनु के सारस्वत नगर से चुपके-से भाग जाने पर श्रद्धा और कुमार कई दिन तक इड़ा के राजमहल में ही रहे, किन्तु श्रद्धा का मन सदैव कुमार दुःखी रहता था। एक दिन वह राजभवन से दूर निकलकर सरस्वती नदी के किनारे आकर बैठ गई। वह यही सोच रहो थी कि किस प्रकार मनु का पता चले। सहसा कुमार वहाँ आ गया। उसने श्रद्धा को उदास बैठी हुई देखकर कहा- 'माँ! तुम यहाँ पर अकेली और उदास क्यों बंटी हुई हो। चलो, अपने घर चलें'। इस पर श्रद्धा ने उत्तर दिया- 'बेटा ! जिसे तुम अपना घर समझ रहे हो, यह मेरा घर नहीं है। मेरा घर तो इस चहारदीवारी के घिरे हुए घर की अपेक्षा बहुत व्यापक और विशाल है जिसकी छत नीला आकाश है, जिसकी परिक्रमा मेघ करते हैं, जिसमें तारे झिलमिलाते हैं और जिसका द्वार सदैव सबके लिए खुला रहता है।' श्रद्धा जब यह कह रही थी तो उसके कानों में ये शब्द पड़े –'माँ ! तुम जब इतनी उदास हो तो मुक्त से विरक्त क्यों रहती हो ? क्यों मुझे अपने अनुराग से वाचित किए रहती हो ?' ये शब्द इड़ा के थे जो चुपचाप श्रद्धा के पीछे आ खड़ी हुई थी। श्रद्धा इड़ा को सान्त्वना देती हुई बोली- 'मैं तुमसे किस प्रकार विरक्त रह सकती हूँ। तुम तो प्रत्येक प्राणी को आश्रय देने वाली हो। जो प्राणी मुझसे बिछुड़ गया था, उसे तुमने ही तो आश्रय दिया था। मेरे पति के यहाँ आने के कारण ही तुम्हें इतने कष्ट उठाने पड़े। इसमें मेरा ही अपराध है। मैं इसके लिए क्षमा चाहती हूँ।

'इड़ा ने कहा- यह आप क्या कह रही हैं। संसार का प्रत्येक प्राणी अपराधी है। मैं भी तो अपराधी हूँ। मेरे ही अपराध के कारण मेरी सारी शासन व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गई है।' श्रद्धा ने उत्तर दिया – 'इसमें तुम्हारा कोई अपराध नहीं है। तुम्हारे ऊपर अभी भी दैवी प्रकोप है। तुम्हारी शासन-व्यवस्था के छिन्न-भिन्न होने का कारण यह है कि तुमने कभी किसी के हृदय पर अधिकार पाने का प्रयत्न नहीं किया, वरन् सदा सभी के सिर पर चढ़ी रहीं। इसी कारण सभी व्यक्ति तुम्हारे विरुध्द होते गये। तुममें बुद्धि और तर्क तो हैं, किन्तु हृदय का अभाव है। इसीलिए तुम नारीत्व की कोमलता छोड़कर सुख-दुख के मिथ्या आडम्बर में फँस गई। अतः जब तक तुममें अन्य व्यक्तियों के प्रति सरसता न होगी, तब तक तुम्हारी वासना व्यवस्था ठीक-ठीक प्रकार से नहीं चल सकती। इसीलिए मैं तुम्हारे पास अपने पुत्र मानव को छोड़ती हूँ। तुम तर्कमयी हो, यह श्रद्धामय है। तुम दोनों ही मिलकर राज्य को ठीक प्रकार से चला सकते हो।' यह कहकर श्रद्धा अपने पुत्र कुमार को इड़ा को सौंपकर आगे बढ़ गई।

वहाँ से चलकर श्रद्धा सहसा उस शान्त और निर्जन स्थान पर पहुँच गई जहाँ पर मनु तपस्या कर रहे थे। श्रद्धा को देखकर वे कहने लगे- तुम देवी हो। मैं तुम्हें फिर छोड़कर भाग प्राया था, परन्तु तुमने मुझे फिर हूँढ़ लिया। लेकिन क्या इड़ा ने तुम्हारा पुत्र छल लिया है ?' श्रद्धा ने उत्तर दिया- 'मैं स्वयं ही उसे उसके पास छोड़कर आई हूँ। वह इड़ा के साथ रहकर राज्य-कार्य करेगा और जिस कार्य को आप अधूरा छोड़ आये हैं, उसे वह पूर्ण करके आपका यश फैलायेगा।'

श्रद्धा की ये बातें सुनकर मनु के हृदय में श्रद्धा के प्रति सच्चा अनुराग उत्पन्न हुआ और उन्हें कैलाश पर्वत पर शिव नृत्य करते हुए दिखाई देने लगे। समूचा वातावरण एक अलौकिक एवं दिव्य प्रकाश से प्रकाशित हो उठा था। उस हृदय को देखकर मनु श्रद्धा से कहने लगे –'श्रद्धे ! बस, अब तुम मुझे शिव के उन पावन चरणों तक ले चलो जिससे मेरे सभी पाप तथा पुण्य इनकी तीव्र ज्वाला में जलकर पवित्र बन जायें, सम्पूर्ण असत्य ज्ञान नष्ट हो जाये और मैं रूपरसता में लीन होकर अखंड आनंद को प्राप्त कर सकूँ।

1. वह चंद्रहीन थी एक रात, जिसमें सोया था स्वच्छ प्रात:

उजले उजले तारक झलमल, प्रतिबिंबित सरिता वक्षस्थल,

धारा वह जाती बिंब अटल, खुलता था धीरे पवन-पटल।

चुपचाप खड़ी थी वृक्ष पाते, सुनती जैसे कुछ निजी बात ॥

संदर्भ:

व्याख्या: जिस रात श्रद्धा सरस्वती नदी के किनारे जाकर बैठी, वह अमावस्या की अँधेरी काली रात थी। उस समय डोसे लगता था मानो प्रकाश देने वाला उजला प्रभात भी उसकी गोद में मुँह छिपाकर सो रहा हो ! नदी के पानी में अर्थात् वक्षस्थल पर तारों के प्रतिबिंम्न टिमटिमाते से दिखाई दे रहे थे। नदी की धारा तो बह रही थी परन्तु तारों की परछाई अटल थीं। कभी- कभी हवा भी चलती थी तो ऐसे जान पड़ता था, मानो कोई पर्दा धीरे- धीरे खुल रहा हो। वृक्षों की पंक्तियाँ चुपचाप खड़ी थी। ऐसे जान पड़ता था मानो वह कोई गुप्त बात सुन रही हों।

विशेष: 'स्वच्छ प्रांत के सोने' में मानवीकरण 'धारा वह जाती बिम्ब अटल' में विरोधाभास अलंकार है।

14. रहस्य

कथासार- जब मनु ने कैलाशवासी शिव के दर्शन के लिए अत्याधिक आग्रह किया तो श्रद्धा उन्हें लेकर हिमालय पर्वत पर चढ़ने लगी। वे दोनों पथिक बड़े ही वाहन से अपने मार्ग पर बढ़ते चले जा रहे थे। श्रद्धा आगे-आगे चलकर मनु का मार्ग-प्रदर्शन कर रही थी। हिमालय पर चढ़ते समय उन दोनों ने देखा कि वायु बड़ी तीव्र गति से चल रही है। उसकी चोटियाँ ऊँची हैं जो बर्फ से ढ़की हुई हैं। कहीं भीषण गड्ढे हैं तो कहीं मधुर स्वर करती हुई नदियाँ बह रही हैं। बर्फ से ढ़के शिला-खण्डों पर पड़ती हुई सूर्य की किरण विविध प्रकार के रंगों में चमक रही हैं। कहीं-कहीं पर्वत की घाटियां हरियाली से ढ़की हुई अपना अपूर्व सौन्दर्य दिखा रही हैं। जब मनु पर्वत पर चढ़ते-चढ़ते थक गये तो उन्होंने श्रद्धा से वापिस लौटने का आग्रह किया, किन्तु श्रद्धा ने उनके प्राग्रह को टालते हुए उन्हें आगे बढ़ने के लिए ही प्रेरित किया। कुछ ऊपर और चढ़ने पर भूमंडल उनकी आँखों से ओझल हो गया और वे दोनों एक ऐसे लोक में पहुंच

गये जहाँ नवीन चेतना उदित हो रही थी और तीन प्रकार के तीन गोलाकार बिन्दु दिखाई दे रहे थे। मनु ने इन बिन्दुओं को आश्चर्य से देखा और श्रद्धा से इनके विषय में पूछा। श्रद्धा इन तीनों बिन्दुओं का परिचय देने लगी।

श्रद्धा ने बताया कि ये तीनों बिन्दु इच्छा, ज्ञान और क्रिया नामक तीन लोक है। इच्छा लोक लाल रंग का है। इसे भावलोक भी कहा जाता है। इसमें शब्द स्पर्श, रस, स्वर और गंध की प्रधानता होती है। इस लोक में माया का राज्य रहता है जो अपनी इच्छा से प्राणियों के हृदय में लालसा एवं तृष्णा उत्पन्न करके उन्हें नाना प्रकार के भोग-विलासों में लिप्त होने के लिए प्रेरित करती रहती है। वह नाम रंग वाला कर्मलोक है। वहां प्रनिश्यप की प्रधानता होती है, अतः प्राणी सदैव द्विविधा से सतरा रहता है। यहां सदैव इतना सहकर श्रद्धा मुस्करा दी। उसकी मुस्कान से एक ऐसी ज्योति निकली जिसने इन तीनों लोकों को आपस में मिला दिया। तभी शृंग और मधुर ध्वनि सुनाई देने लगी और शिव तांडव नृत्य करते हुए दृष्टि- गोचर हुए। इस दृश्य को देखकर मनु की सांसारिक भावनाएं नष्ट हो गई और वे श्रद्धा-सहित एक किक आनन्द में हूब गये।

1. ऊर्ध्व देश उस नील तमस में स्तब्ध हो रह रही अचल हिमानी,

पथ थककर हैं लीन, चतुर्दिक देख रहा वह गिरि अभिमानी।

संदर्भ:

व्याख्या: अब मनु के आग्रह पर श्रद्धा मनु को लेकर हिमालय पर्वत पर चढ़ने लगी तो उन्होंने देखा कि हिमालय का यह ऊँचा स्थान नीले अन्धकार में घिरा हुआ था। अत्यधिक जगी हुई बर्फ शान्त थी, भूतल से आया हुआ मार्ग भी मानो धक्कर समाप्त हो गया; अर्थात् वहाँ से - आगे कोई मार्ग नहीं था। ऊँची ऊँची चोटियों से युक्त हिमालय ऐसा जान पड़ता था मानो वह अपनी ऊँचाई पर अभिमान करता हुआ सिर उठाकर चारों ओर देख रहा हो।

विशेष: उत्प्रेक्षा तथा मानवीकरण अलंकार।

15. आनन्द

कथाकार - जत्र श्रद्धा मानव को इड़ा के पास छोड़कर चली गई तो इड़ा ने उनके सहयोग से सारस्वत नगर का पुनः व्यवस्था की, जिसका परिणाम यह हुआ कि सारस्वत नगर के सभी निवानी पूर्ण धन्य-धान्य से युक्त हो गये और वे पारस्परिक भेदभाव भुलाकर आपस में एक परिवार की भांति रहने लगे। एक दिन इड़ा और मानव के साथ सारस्वत नगर के निवासी भी कैलाश द श्रद्धा और मनु के दर्शन करने चल दिये। यात्रियों का यह दल नदी तथा पर्वतों की रमणीयता को देखता हुआ धीरे-धीरे आगे बढ़ रहा था। इनके साथ धर्म का प्रतिनिधि वृषभ भी था, जिस पर सोमलताएँ लदी हुई थीं और जिस पर लटकता हुआ घण्टा निरन्तर मधुर ध्वनि करता हुआ बज रहा था। मानव एक हाथ से इस वृषभ की रस्सी पकड़े हुए था और दूसरे हाथ में त्रिशूल लिए हुए था। इड़ा भी गेरुए वस्त्र धारण करके इस वृषभ की बगल में चल रही थी। इसके पीछे सारस्वत नगर के 'स्त्री-पुरुष और बच्चे थे। एक बच्चे के आग्रह करने पर इड़ा ने उस शान्त तपोवन की कथा सुनाई, जिसकी यात्रा करने को सब यात्री जा रहे थे।

चलते-चलते यात्रियों का यह दल उस स्थान पर आया जहां पर मनु तपस्या में लीन थे और श्रद्धा उनकी सेवा में लगी हुई थी। उन सबकी आवाज से मनु ने अपनी समाधि खोल दी और उन्हें विराट् शक्ति की अभेदता का उपदेश दिया जो अपना रूप धारण करके ससार में व्यक्त होती है। साथ ही उन्होंने सभी मनुष्यों को भेद-भाव भुलाकर एक होने

का भी उपदेश दिया क्योंकि सभी उसी एक परम सत्ता के अंश है। श्रद्धा इस उपदेश सुनकर मुस्काराई जिससे समूचे कैलाश पर्वत पर एक दिव्य और आनन्द पूर्ण वातावरण उत्पन्न हो गया। उस समय सर्वत्र आनन्द और सुषमा का राज्य था। हिमालय के उस दिव्य और अलौकिक दश्य को देखकर सभी यात्री आनन्द-विभोर हो गये। सभी लोग अपने पारस्परिक भेद-भाव को भुलाकर स्वयं को दूसरे से अभिन्न समझने लगे। समय जड़ और चेतन का भाव विलीन हो गया, सभी समरसता का अनुभव करने। उन्हें एक विराट चेतना-शक्ति हो सभी में क्रीड़ा करती हुई दिखाई देने लगी और सभी अखंड तथा आनन्द में डूब गये।

1. चलताथा धीरे धीरे वह एक यात्रियों का दल,

   सरिता के रम्य पुलिन में गिरिपथ थे, से निज संबल।

संदर्भ :

व्याख्या : सारस्तत प्रदेश के वासियों का एक दल इड़ा और मानव के साथ कैलाश पर्वत की यात्रा के लिए चल रहा था। यह दल यात्रा में काम आने वाली सभी वस्तुओं को साथ लिए नदी का सुन्दर किनारा पकड़े पर्वत के रास्ते से धीरे- धीरे चल रहा था।

2. समरस थे जड़ या चेतन सुन्दर साकार बना था,

   चेतनता एक विलसती आनंद अखंड धना था।

संदर्भ : वे कामायनी के आनंद सर्ग के आखिरी पंक्तियाँ है।

व्याख्या: उस समय प्रकृति के सभी पदार्थ - चेतना था जड़ दोनों प्रकार के समान आनन्द में लीन थे। सर्वत्र इतनी सुन्दरता छाई हुई थी मानो सौन्दर्य आकार ही प्रकट हो गया हो। सभी एक ही विराट चेतना - शक्ति को समूची प्रकृति में क्रीड़ा करते हुए देख रहे थे और सर्वत्र अखंड तथा अत्यधिक आनन्द छाया हुआ था।

विशेष: सामरस्य की स्थापना कामायनीकार का मुख्य उद्देश्य है और इसी उद्देश्य की यहाँ स्पष्ट शब्दों में अभिव्यक्ति हुई हैं।

4.5. सारांश

छायावाद युग के प्रमुख कवि जयशंकर प्रसाद राष्ट्रीय चेतना के अमर कवि हैं। इनको भारत के अतीत इतिहास के प्रति लगन है। क्योंकि उनका पना दृष्टिकोण था कि वर्तमान समाज को प्रगति के शिखर तक ले जाने के लिए अतीत का ही सहारा लेना पड़ेगा। इसी लिए उनके काव्यों में अतीत के सहारे आधुनिक मानव जीवन के चित्रण देख ने को मिलता है। कामायनी ऐसा ही ऐतिहासिक कथा से ओत-प्रेत महाकाव्य है। इस महाकाव्य में उन्होंने मावन के मानसिक स्थिति को आतीत के संदर्भ में मनु, श्रद्धा, इड़ा के रूप में दर्शाया है। यह एक ऐतिहासिक महाकाव्य है। चिंता सर्ग से लेकर आनन्द सर्ग तक के पंद्रह सर्गों में मानव जीवन का चित्रण किया है। प्राचीन भारतीय और पाश्चात्य मानसिक स्थितियों के समन्वय से इस काव्य को महाकाव्य का रूप प्रदान किया है। छायावाद युग के साहित्य में कामायनी एक मेरु पर्वत है।

4.6. बोध प्रश्न

1. छायावाद के प्रवर्तक जयशंकर प्रसाद के जीवनी और व्यक्तित्व के बारे में बताइए।
2. कामायनी में वर्णित सर्गों की विशेषता बताइए।
3. कामायनी के प्रमुख पात्र मनु, श्रद्धा और इड़ा के बारे में बताइए।

4.7. सहायक ग्रंथ

1. कामायनी एक पुनर्विचार - गजानन माधव मुक्तिबोध।
2. कामायनी में काव्य, संस्कृतिकता का दर्शन- डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना।
3. कवि निराला- नंददुलारे वाजपेयी- मैरूमिलन, दिल्ली।
4. क्रांतिकारी कवि निराला- बच्चन सिंह- विश्वविद्यालय, वारणासी।
5. प्रसाद का काव्य- प्रेमशंकर- भारती अण्डारख प्रयाग।
6. सुमित्रानंदन पंत-नगेन्द्र- नेशनल।
7. कवि पंत और उनकी छायावादी रचनाएँ- प्रो. पी. ए. राव, प्रगति प्रकाशन, आगरा।
8. हिंदी साहित्य- 20वीं शताब्दीः आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी।
9. छायावादः पुनर्मूल्यांकनः सुमित्रानन्दन पन्त।
10. छायावाद युगः शंभुनाथ सिंह, सरस्वती मंदिर, वाराणसी; 1962 छायावाद के गौरव चिह्नः प्रो. क्षेमेन्द्र।
11. छायावादी कवियों का सौन्दर्य विधानः डॉ. सूर्यप्रसाद दीक्षित।
12. छायावादः राजेश्वरदयाल सक्सेना।
13. छायावादी काव्यः डॉ. कृष्ण चन्द्र वर्मा; मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, म.प्र.।
14. नवजागरण और छायावादः महेन्द्र नाथ राम, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली।

डॉ. एम. मंजुला

5. कामायनी - दार्शनिक तत्व

5.0.उद्देश्य

कामायनी प्रसाद जी का उत्कृष्ट महाकाव्य है। इस काव्य में मानव जीवन से संबंधित सभी तत्व पाए जाते हैं। प्रसाद इस काव्य में मनु, श्रद्धा, इड़ा के पात्रों के द्वारा मानव जीवन के तत्वों को सविस्तार रूप में सुंदर ढंग से वर्णण किए है। इस अध्याय को पढ़ने के बाद हम-

- भारतीय दर्शन के बारे में जान पायेंगे।
- कामायनी महाकाव्य में बताए गए दर्शने के बारे में जान पायेंगे।
- कामायनी में बताया गया समरसता का अर्थ-विवरण के बारे में जान पायेंगे।
- कामायनी में व्यक्त किया गए सौंदर्य बोध के बारे में जान पायेंगे।

रूपरेखा

5.1. प्रस्तावना

5.2- प्रसाद की दर्शन

5.3. कामायनी में व्यक्त दर्शन

5.31. समरसता-आनंदवाद

5.3.2. आनन्दुवाद

5.4. सौंदर्य बोध

5.4.1 भाव सौंदर्य

5.5. सारांश

5.6. बोध प्रश्न

5.7. सहायक ग्रंथ

5. 1.प्रस्तावना

दर्शन का अर्थ है देखना। किन्तु दर्शन तथा सामान्य देखने में बहुत अंतर है। किसी वस्तु का सूक्ष्म निरीक्षण ही दर्शन कहलाता है। बाह्य क्या है? आत्मा क्या है, जगत क्या है? माया क्या है आदि प्रश्नों का समाधान करने हेतु ही दर्शनों की रचना की गई है। दर्शन में हम अस्तित्व, ज्ञान, मूल, तर्कबुद्धि, मन और भाषा जौसे मामलों से संबंधित सामान्य और मूल भूत समस्याओं का अध्ययन करते हैं। यह मौलिक प्रश्नों को संबोधित करने के अन्य तरीकों जैसे रहस्यवाद, मिथक था धर्म आदि से समालोच- नात्मक और आम तौर पर सुव्यवस्थित होने और तर्क संगत युक्त पर निर्भर होने के साथ-साथ अपने पूर्व अनुमानों और वैधियों पर चिंतन करने के कारण अलग है। इसमें भाषा का तार्किक

विश्लेषण और शब्दों और अवधारणाओं के अर्थ का स्पष्टीकरण शामिल है। वास्तव में, दर्शन को परिभाषित करना स्वयं में ही एक दार्शनिक प्रश्न है। ऐतिहासिक रूप से, दर्शन में ज्ञान के सभी निकाय शामिल थे और इसके अभ्यासक को एक दार्शनिक के रूप में जाना जाता था। जयशंकर प्रसाद के 'कामायनी' में सभी प्रकार के दार्शनिक तत्व देख सकते हैं। कामायनी में व्यक्त दर्शन के बारे में विस्तृत रूप में चर्चा इस अध्याय में पढ़ेंगे।

5.2. प्रसाद की दर्शन

प्रसाद अपने युग के सर्वोत्कृष्ट दार्शनिक कवि थे। विश्वमानव उच्चाति उच्च दार्शनिक सिद्धांतों के उन्नयनकारी एवं श्रेयत तत्वों से तरंगाचित, प्रसाद की अनुपेक्षणीय सौन्दर्य चेतना पर दृष्टिपात करना उचित ही है। उनकी रचनाओं में विश्व मानव की वैचारिक धाराओं और चिंतन दर्शन का व्यापक प्रभाव दिखाई देता है। प्रसाद ने अपनी दार्शनिक चिन्तन के माध्यम से जन मानस में विद्यमान विभिन्न रूढ़ियों को बताकर उन पर हमेशा विजय पाने का मार्गदर्शन किया। प्रसाद जी जिस काल में जन्म लिया वह काल भारत में स्वतंत्रता आंदोलन चल रहा था। लोग ज्यादातर पुराने अंध विश्वासों में लीन होकर जीते थे। उस समय जो वैचारिक अन्दोलनों का प्रारम्भ हुआ था, उन सब के नवीन मूल्यों, नवीन प्रतिमानों एवं नवीन मान्यताओं को भारतीय अद्वैत विचारधारा से मिलाकर आध्यात्मिक रहस्यवादिता को प्रतिष्ठापित करने का काव्यात्मक प्रयास प्रसाद जी ने किया। पाश्चात्य जड़वादिता के अतिरेक से जर्जर मानव के रुद्ध चरण को, भारतीय चिन्तन की प्रशस्त प्राण- पद परम्परा के साथ उन्होंने नवीन सन्तुलनों में सामंजस्य स्थापित कर संस्फूर्त किया। इसी सामंजस्य में प्रसाद की प्राणवत्ता है। प्रसाद ने वस्तुतः व्यक्ति और समष्टि के जड़ परिवेशों के लिए उपयोगिता वादी विचारधाराओं और आन्तरिक चेतना के उन्नयन और परिष्कारण के लिए भारतीय आगमों की आध्यात्मिक चिन्तन धारा का समन्वय प्रस्तुत करके, युगानुकूल, नवीन दार्शनिक चेतना को प्रवाहित किया। जड़ता या अपरिवर्तनशील का दुराग्रह, दर्शन की मूल चेतना का विरोध करना है। दर्शन तो, मानव समाज की x बाह्यान्तर प्रकृति जन्य क्रियाओं, प्रतिफलों और परिणामों में समन्वय संगति की ज्योतिर्मय x निरंकुश यथार्थता की गतिशील चेतना -धारा का प्रतीक है, जो विश्वमानव के धारा के सदृश सत्यतर, शिवतर और सुन्दरतर की ओर प्रवाहमान होता है। प्रसाद जी ने अपनी दार्शनिक चेतना के द्वारा निरंतर दग्ध-दुःखी मानव को मार्ग बताने का प्रयास किया है जो अतृप्त एवं असंतुष्ट मानव को अपार सुख एवं संतोष मिले।

5.3. कामामानी में दार्शनिकतत्व

उन्नीसवीं शती के अन्त में डेनमार्क के अस्तित्ववादी चिन्तक सारेन कीर्कगार्ड ने जिस जडवादी वैचारिक धारा का प्रवर्तन किया था, उसमें जीवन-जगत् की जो समस्त आकांक्षाये - अपेक्षायें, कृति – कामनायें और सृष्टि - सर्जनायें हैं, वे तो अस्तुतः अस्तित्व मूलक मानव चेतना की प्रकृति का परिणाम है। हाँ, उसमें ईश्वर की सत्ता के प्रति उदात्त आस्था का उद्‌बोधन अवश्य है। उसी दर्शन का प्रभाव 'आशा' सर्ग में मिलता है। मनु प्रलयोपरान्त निरस्त नहीं होता, ईश्वरीय सृष्टि से अपने अस्तित्व की चिन्ता करता है-

जीवन ! जीवन ! की पुकार है
खेल रहा है शीतल दाह;
निज अस्तित्व बना रखने में
जीवन आज हुआ था व्यस्त।

प्रसाद जी ने अस्तित्ववाद की प्रारंभिक उपपत्तियों को अपने काव्य में निरूपित किया। कामायनी में प्रसाद जी ने अनेक दार्शनिक मान्यताओं की अभिव्यक्ति की है। लेकिन इसका प्रधान स्तर प्रत्यभिज्ञा दर्शन ही है। इसमें आत्मा को महाचित्त का स्वरूप माना गया है, जो सदैव लीलामय आनन्द करती रहती है। आत्मा जीव का समाहार मानव है। कामायनी में जीव या मनुष्य के प्रतीक मनु है। मनु काव्य के प्रारंभ में चिन्ताग्रस्त है। प्रत्याभिज्ञ दर्शन में जीव को त्रिमल और पट्कंचुकों से आवृत्त आत्मा कहा गया है। इसलिए प्रसाद जी ने भी कामायनी के पूर्वाद्ध में मनु को त्रिमल - आणव, मूलधिष्ठायक तथा माया-तथा पट्कंयुकों से आवृत दिखाया गया है। इसी कारण इनके जीवन में अनिता, अकर्मण्यता परिस्थिति, परवशता, परिमित भाग- भावना, अपने-पराए की भेद बुद्धि, अपनी कर्तृत्व शक्ति का मिथ्याभिमान आदि दोष पाये जाते हैं।

मनु आत्मस्वरूप की विस्मृति के कारण इधर-उधर भटकते है। उनका यह स्थिति आणव है जिसका कामायनी में निर्वेद सर्ग तक विधिवत् वर्णन किया है। निर्वेद से रहस्य तक उनकी स्थिति शाक्त रही है जिसमें

भेदभाव बुद्धि की प्रधानता रही है। मनु के शिव रूप होकर अखंड आनंदमय हो जाना ही शांभव स्थिति है जिसमें केवल अभेद बुद्धि प्रधान है। प्रत्याभिज्ञा दर्शन में इस सृष्टि के निर्माण का मूल कारण माया है और यह माया उस परमात्मा था परम शिव की एक शक्ति विशेष है। इसे प्रसाद जी ने कामायनी में भावचक्र की संचालिका तथा सृष्टि का निर्माण करने वाली माना है।

जगत विषयक प्रसाद जी की मान्यता शव सिद्धांत पर आधारित है और वेदान्त के अद्वैतवाद से सर्वदा सर्वदा भिन्न है। जगत का ईश्वर के साथ अभेद या आभास सम्बन्ध है। इस जगत के विकास में 36 तत्वों की कल्पना की गई है। इनमें से प्रथम पाँच - शिव, शक्ति, सदाशिव, ईश्वर, शुद्ध, -विद्या- परमेश्वर की ही शक्ति के विकसित रूप है। माया, काल, नियति, कला, विद्या, राग पुरुष, प्रकृति, बुद्धि, अहंकार, मन, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच तन्मात्राएँ अर्थात शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध और पाँच स्थूल भूत अर्थात् प्रकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी। कामायनी में इनका काव्यात्मक रूप में वर्णन हुआ है। आनन्द सर्ग में प्रथम पाँच तत्वों के दर्शन होते हैं, भावनांक के वर्णन में पंचज्ञानेंदियों और तन्मात्रायों का तथा कर्म लोक के वर्णन में पंचकर्मेन्द्रियों का तथा आशा सर्ग में पंचभूतों का वर्णन हुआ है।

नवीन मनोवैज्ञानिक दर्शन के अनुरूप प्रसाद ने प्रत्येक मनोवृत्ति को सूत्रबद्ध परिभाषा में आबद्ध कर मानव चेतना के सूक्ष्म से सूक्ष्म आवृत्त स्तर को अनावृत्त किया और आधुनिक जीवन की नवीनतम भूमियों का उद्घाटन किया। उस विश्व व्यापी वैचारिक आन्दोलन को आत्मसात कर प्रसाद ने, अपने भावों में समुत्व तथा कल्पना में तरंगशील होकर, मानव की बहुर्मुखी उपलब्धियों के साथ मानव मन की विविध अजु-कुटिल और सूक्ष्मतम भावनाओं, अनुभूतिजन्य हृदय की अनन्य परिणतियों और कर्म- जीवन से उद्भुत एवं रूपायित अंतश्चेतना को मानव जीवन के अनन्यतम राग-विरागों से अनुरंजित परिभूमि पर अभिव्यंजित कर दिया।

प्रसाद ने भांति भारत के सांस्कृतिक उन्नयन की कल्पना के निशचिता नारी के अन्तदर्शन, नारी की पूर्ण सामाजिक प्रतिष्ठां और समस्त मानव की मुक्ति में नारी की उदास आस्थाओं का गाँधी वादी दर्शन के माध्यम से उद्बोधन किया। अपनी स्थूल शक्ति, अहं, और सावन्द मनोवृत्ति वाले गृहा मानव के सदृश मनु के विभ्रान्त अन्तर को पूर्णरूपेण परिष्कृत, परिमार्जित एवं अवलोकित कर परिचय कला श्रद्धा ने नारी के महिमामय उत्तरदायित्व का केवल निर्वाह ही नहीं किया, वरन् मानव जीवन को बृहत्तर पृष्ठभूमि पर प्रतिष्ठित भी किया है। श्रद्धा- मनु का पर्वतारोहण तो

आध्यात्मिक उन्नयन का काव्यात्मक प्रतीक है। इड़ा पर अनधिकार चेष्टा के बाद, मनु की वासना अतृप्त ही रह जाती है। मनोवेग कुंठिक हो जाते हैं और कुंठाग्रस्त मनु युद्ध भूमि में मूर्छित हो जाते हैं। दूसरे दिन युद्धभूमि में अपने समीप श्रद्धा और पुत्र को देखकर, वे ग्लानि से इतने क्षुब्ध हो जाते हैं, कि बिना किसी से मिले वे भाग खड़े होते हैं। यहाँ मनु त्रिक- दर्शन के अनुकूल शैव साधक नहीं एक कुंठा- ग्रस्त क्षुब्ध पुरुष है। मनोग्रंथि के कारण, श्रद्धा का सामना करने में वे असमर्थ है। किन्तु पति-परायणा श्रद्धा, भारतीय नारीत्व की गरिमा के अनुरूप मनु को मनोग्रंथि को समझाती है। प्राकृतिक-सुषमा और समभाव से वह मनु की मनोग्रंथियों का उपचार करने के लिए तत्पर हो उठती है।

मनु कुंठाग्रस्त, क्षुब्ध और भयभीत होकर पूछता है-

कहाँ ले चली हो अब मुझ को

अब में एक चना अधिक हूँ?

और गृहस्थ जीवन के टूटने पर भी श्रद्धा अपने मनोभावों में सामंजस्थ स्थापित कर एक सिद्ध गुरु के सदृश कहती है-

घबराओ मत ! यह समतल है

देखो तो हम कहाँ आ गये।

यहाँ प्रसाद अत्यन्त स्पष्ट है। श्रद्धा न तो सिद्ध गुरु है, और न अनु पूर्व रूपेश शैव साधक। त्रिक दर्शन में दीक्षा और तपस्या का अत्यधिक महत्व है। साधक को शिव की मयचिति इच्छा, क्रिया और ज्ञान का प्रातिभा ज्ञान होना अनिवार्य है। किन्तु काम जर्जर, क्षुब्ध मनु को उन तीनों लोकों का बोध तक नहीं है। श्रद्धा अपनी अटूट श्रद्धा से मनु को उसका ज्ञान कराती है। यहाँ तो श्रद्धा और मनु के मध्य मात्र दाम्पत्य सम्बन्ध ही नहीं, वरन् गुरु शिष्य का भी सम्बन्ध है। इससे प्रसाद का अवधारणा स्पष्ट है कि किसी भी पुरुष को उसकी पत्नी अपने गाँव, गली, गृह में श्रद्धा - युक्त होकर 'आनन्द' की उपलब्धि करा सकती है, उसके लिए कैलाश यात्रा आवश्यक नहीं।

नारी के उत्तरदायित्व में प्रसाद का मूल सामाजिक दर्शन प्रतिष्ठित है। बीस वीं शती के प्रारम्भिक दशकों में जिस मार्क्सवाद का प्रादुर्भाव हुआ, वह मूलतः साम्यवाद एक राजनीतिक दर्शन था । मार्क्सवादी चिन्तन में 'साम्यवाद' को 'सामाजिक-आर्थिक स्वरूप' की संज्ञा दी गई। मानव-विकास के इतिहास का प्रथम चरण 'आदिम साम्यवाद' के रूप में अभिहित है। प्राकृतिक शक्तियों में संघर्षशील मनुष्य, उत्पादन से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के निमित्त, सामूहिक श्रम के लिए बाध्य हुआ। इसीलिए प्रसाद ने इड़ा के प्रदेश में उसी साम्यवादी सामूहिक श्रम - साधना और उसके प्रतिफलन का कल्पना की –

'मनु का नगर बसा है

सुन्दर सहयोगी है सभी बने

अपने वर्ग बनाकर श्रम को करने सभी उपाय वहाँ,

उनकी मिलित प्रयत्न - प्रथा से पुर को श्री दिखती निखरी।'

श्रम विभाजन के साथ उत्पादन शक्तियों पर वैयक्तिक अधिकार के लिए संघर्ष हुए और मनुष्य का मनुष्य के दुबारा शोषण होने लगा जिससे वर्ग भेद की भावना का आविर्भाव हुआ। सारस्वत प्रदेश में सर्वांगीण उन्नति करने के पश्चात मनु के हृदय में अधिकारों की लालसा जागती है। सब पर अपना आधिपत्य चाहता है। इसलिए वह कहता है-

मैं सब को वितरित करता ही सतत रहूँ क्या ?

कुछ पाने का यह प्रयास है, पाप सहूँ क्या ?

स्वत्व और शोषण की बात सुनकर इड़ा मनु को कहती है-

किन्तु नियामक नियम न माने

तो फिर सब कुछ नष्ट हुता सा निश्चय जाने।

उस आदिम साम्यवादी व्यवस्था में उन्नति देखकर, सारस्वत प्रदेश की प्रजा से मनु अपनी अर्थ-व्यवस्था और शासन की बात करते है। किन्तु प्रजा, जनु के शोषण के विरुद्ध खड़ी हो जाती है। वर्ग संघर्ष का प्रथम चरण कामायनी में द्रष्टव्य है-

प्रकृत शक्ति तुमने यन्त्रों से सब की छिनी।

शोषण कर जीवनी बना दी जर्जर झीनी।

और शोषक मन्नु तथा श्रमजीवी प्रजा में भयानक संघर्ष छिड़ जाता-

उठा तुमुल रणनाद, भयानक हुई अवस्था।

बढ़ा विपक्ष समूह मौन पददलित व्यवस्था।

अहंवादी शोषक मदु को इड़ा समझाती है-

'मनु'! देखो यह भ्रांत निशा अब बीत रही है,

प्राची में नव उषा तमस की जीत रही है।

किन्तु मनो नये प्रांत के नवीन सूरज को देखना ही नहीं चाहता। साम्यवादी वर्ग-संघर्ष में शोषक का पतन अनिवार्य होता है। इसी तथ्य की ओर प्रसाद का संकेत था।

साम्यवाद के वर्ग संघर्ष की परिकल्पना से अनुप्राणित प्रसाद का यह चित्रण द्रष्टव्य है। यहाँ बुद्धि - बल से प्राकृतिक शक्तियों को एकत्र कर मनु शासन व्यवस्था देते, कर्म विभाजन करते हैं, औद्योगिक यन्त्र देते हैं। किन्तु नियामक मनु का अहंकार केवल उपलब्धियों से सन्तुष्ट नहीं होता। अपने अधिकार - विस्तार के कारण वर्ग-संघर्ष में अन्ततः वह पतित हो जाता है। इस तरह प्रसाद जी ने विश्व व्यापी जड़ दर्शन को कामायनी काव्य में दिखाया है। आज के युग मानव को पाश्चात्य जड़-मूलक विकासवाद और आगम - प्रणीत अद्वैतवाद की समन्वय भूमि में आश्रय मिला-

शापित न यहाँ है कोई तापित पापी न यहाँ है;

जीवन बथुआ समतल है समरस है जो कि जहाँ है।

प्रसाद मूलतः युग स्त्रष्टा साहित्यकार थे । केवल प्रत्यभिज्ञास दर्शन की उद्भावना उनका लक्ष्य नहीं था । पुनरुत्थान के समग्र नवीन दर्शनों और भारतीय अद्वैत भावना के साथ युग मानव का पूर्ण विकास ही उनका प्रतिपाद्य रहा । लोक जीवन के प्रांगण में इहलोक के अनुकूल जड़- दर्शनों और आत्मा के पूर्ण परिकरण के लिए अद्वैत - दर्शन के समन्वय में ही प्रसाद जी की दार्शनिक चेतना का आलोक मिलता है ।

5.3.1. समरसता

प्रत्यभिज्ञा दर्शन में समरसता का सिद्धांत भी एक विशिष्ठ स्थान रखता है । जब आत्मा परमात्मा-भाव को प्राप्त होकर पूर्णतः एक शिव रूप हो जाती है तब उसे सामरस्य कहते हैं । उस समय योगी यह समझने लगता है कि न मैं हूँ और न कोई अन्य, न ध्येय ही यहाँ विद्यमान है । उसका मन आनन्द पद में लीन होकर समरसता को प्राप्त हो जाता है । अभिनव गुप्ताचार्य का मत है-

'आनन्दशक्ति विश्वान्ते योगी समरसो भवेत्'

वैसे तो इस समरसता के सिद्धांत को सर्वत्र वेदान्त आदि में स्थान मिला है । किन्तु जीवात्मा के अखंड आनन्द-प्राप्ति की बात कहीं अन्यन्न नहीं प्राप्त होती । कामायनी में प्रत्येक प्राणी को ही समरसता का अधिकारी घोषित किया गया है ।

नित्य समरयता का अधिकार,

उमड़ता कारण जलधि समाना ।

इस स्थिति पर पहुंचने के उपरान्त न सुख रहता है और न दुःख, न ग्राह्य रहता है और न ग्राहक और न मूढ़ भाव ही रहता है अपितु यहाँ तो परमार्थ तत्व ही शेष रहता है । इस स्थिति में पहुँचने पर जीवात्मा तीन मलों एवं षट्कचुकों से मुक्त हो जाता है । प्रसाद जी ने समरसता की स्थापना पर बल दिया है और इस दार्शनिक सिद्धांत को व्यावहारिक जीवन के अनुरूप व्यक्त किया है । कामायनी में समरसता के तीन रूप

में दर्शन होते हैं - 1. समाज की समरसता, 2.व्यक्ति की समरसता और 3. प्रकृति और पुरुष की समरसता ।

1. समाज की समरसता के अभाव के कारण ही सारस्वत नगर में पुनः विध्वंस हुआ ।

वह विज्ञानमयी अभिलाषा, पंख लगाकर उड़ने की,

जीवन की असीम आशाएँ कभी न नीचे मुड़ने की ।

अधिकारों की सृष्टि और उनकी वह मोहमयी माथा,

वर्गों की खाई बन फैली कभी नहीं जो जुड़ने की ।।

मनु ने सारस्वत निवासियों के हृदय में जो यह अभिलाषा भर दी थि कि वे उसके आधार पर असंभव को भी संभव बनाने के लिए प्रयत्नशील थे, उनके जीवन में वे आशाएँ भर दी थी, जिनका किसी भी प्रकार दमन नहीं हो सकता था; उन्हें वे अधिकार दे दिए थे, जिनसे उन्हें अत्यधिक मोह हो गया था । अज उन्हीं अभिलाषाओं से, आशाओं से और अधिकारों से मनु की प्रजा में इतना भेद-भाव बन गया था, जो किसी भी प्रकार नहीं मिटाया जा सकता था ।

2. व्यक्ति की समरसता

इसका दर्शन श्रद्धा के व्यक्तित्व में होती हैं-

हृदय की अनुकृति बाह्य उदार एक लंबी काया उन्मुक्त।

मधु पवन क्रीडति ज्यों शिशु साल सुशोभित हो सौरभ संयुक्त ॥

मनु ने जब श्रद्धा वाणी को सुना और उसके अपरिचित सौंदर्य को देखा तो उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ जैसे उसका लम्बा शरीर भी उसकी हृदय की अनुकृति ही हो; अर्थात जिस प्रकार श्रद्धा का हृदय उदारता आदि भावों से भरा हुआ था और व्यापक था उसी प्रकार उसका शरीर भी स्वच्छन्द और लम्बा था। श्रद्धा का झूमता हुआ शरीर ऐसा प्रतीत होता था जैसे सुगंधि से भरा हुआ शाल का छोटा वृक्ष मादक पवन के साथ क्रीडाएँ करता हुआ सुशोभित हो रहा हो। 'हृदय की अनुकृति बाह्य उदार एक लम्बी काया उन्मुक्त' में कवि ने श्रद्धा के आन्तरिक और बाह्य गुणों का संकेत दिया है, अर्थात श्रद्धा के हृदय के सभी उदात्त गुण उदारता, विशालता, गम्भीरता, मधुरिमा, ममता आदि भरे हुए हों। इसीलिए वह हृदय पक्ष का प्रतीक मानी गई है।

3. प्रकृति और पुरुष की समरस्यता

इसके दर्शन आनन्द सब में होते हैं-

तुम भूल गए पुरुषत्व मोह में कुछ सत्ता है, नारी की।

समरस्यता का है संबंध बनी अधिकार और अधिकारी की ॥

श्रद्धा के साथ जब मनु कैलाश की यात्रा पर जाते हैं तो वहाँ पर जाकर उनको शिवत्व के साकार दर्शन हो गये। उनके हृदय में शिव के प्रति अनुराग जग गया और शिव के साक्षात् दर्शन के लिए लालयित हो गये। उन्होंने श्रद्धा से कहा कि बस 'तू मुझे शीघ्र ही उन चरणों तक ले चला'

देखा मनु ने नर्तित नरेश, हत - चेत पुकार उठे विशेष।

यह क्या! श्रद्धे। बस तू ले चल, उन चरणों तक, वे निज संबल।

सब पाप पुण्य जिसमें जल - जल पावन बन जाते हैं निर्मला।

मिटते असत्य से ज्ञान लेश, समरस अखंड आनन्द वेश !

अन्त में मनु श्रद्धा की सहायता से लीलामय प्रभु के लीलामय धाम में पहुँच जाते हैं जहाँ पहुँचकर सुख और दुःख की सभी भावनाएँ तिरोहित हो जाती हैं। न वहाँ कोई संघर्ष होता है और न वहाँ पर कोई कलश। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि वहाँ का अलौकिक दृश्य है-

समरस थे जड़ या चेतन सुन्दर साकार बना था।

चेतन सा एक विलसती आनन्द अखंड धना था।

अर्थात उस समय प्रकृति के सभी पदार्थ- चेतना था जड़ दोनों प्रकार के समान आनन्द में लीन थे। सर्वत्र इतनी सुन्दरता छाई हुई थी मानो सौन्दर्य साकार ही प्रकट हो गया हो। सभी एक ही विराट चेतना शक्ति को समूची प्रकृति में क्रीडा करते हुए देख रहे थे और सर्वत्र अखंड तथा अत्यधिक आनन्द छाया हुआ था।

5.3.2. आनन्दुवाद

शैवों के इस आनन्दवाद के दर्शन उपनिषदों में होते हैं। शैव- दर्शन में शिव एवं शक्ति तथा उसके समस्त अवयवों को पूर्णा पूर्णतथा आनन्द- स्वरूप माना है। कामायनी में भी शिवत्व को प्राप्त हुए मनु की स्थिति का चित्रण करते हुए – "निज शक्ति तरंगाचित था आनन्द अम्बुनिधि शोभन" कहकर इस आनन्द सागर की ओर ही संकेत किया गया है।

प्रसाद जी ने जीवात्मा के लिए, जो कि आनन्द पथ पर अग्रसर है, संकेत किया है कि प्रत्येक प्राणी को ही उस आनन्द तत्व तक पहुँचने का प्रयत्न करना चाहिए। इसके लिए प्रत्येक जीवात्मा को प्रकृति के अनुरूप सदैव कर्मशील जीवन को अपनाना होगा। यदि जीवात्मा उचित कर्मों में सदा लीन रहेगा. तो वह विजयी और शक्तिशाली होता हुआ मंगलमय दृष्टि एवं सुख समृद्धि को प्राप्त कर सकता है। यह भी आनन्द की एक स्थिति है। श्रद्धा के प्रयत्न द्वारा मनु आनंद प्राप्त करते हैं। आनन्द भूमि पर पहुँचने के उपरान्त ईच्छा ज्ञान और किया का समन्वय हो जाता है। यदि यह समन्वय नहीं हो पता तो जीवात्मा को जीवन की विभिन्न विडम्बना में फँसना पड़ता है। आनन्द प्राप्ति के लिए हृदय और बुद्धि में भी ऐक्य होना आवश्यक है। क्योंकि इसके बिना वैयक्तिक जीवन आनन्दमय नहीं हो सकता। बुद्धिवाद के कारण ही मानव विभाजन प्रणाली को अपनाने लगता है, जिससे आत्मीयता नष्ट हो जाती है। परन्तु जब हृदय और बुद्धि का समन्वय हो जाता है तो अखंड आनन्द का अजस्त्र प्रवाह होने लगता है।

कामायनी में प्रसाद जी ने जीवात्मा की उस आनन्द भूमि का भी उल्लेख किया है, जहाँ पहुँचकर जीव आत्म साक्षात्कार कर लेता है और तब जीव, परम तत्व, जड़ और चेतन में कोई अन्तर नहीं रह जाता और सभी समरस प्रतीत होने लगते है-

समरस्य थे जड़ या चेतन सुन्दर साकार बना था।
चेतनता एक विलसती आनन्द अखंड बना था॥

कामायनी का मुख्य दर्शन प्रत्यभिज्ञादर्शन के सिद्धांतों का प्रतिपादन करना है। लेकिन इसके साथ ही अनेक अन्य दर्शनों जैसे बौद्ध दर्शन तथा न्याय वैशेषिक दर्शन का प्रभाव भी इसकी विचार धारा में परिलक्षित होता है। कथा वस्तु को हृदयग्राही बनाने के लिए आज कथा में केवल आध्यात्मिक तत्व ही अपने आप में पर्याप्त नहीं है अतः इसके साथ-साथ अनेक वैज्ञानिक सिद्धांतों का भी स्थान दिया गया है। इन सिद्धांतों पर विचार कर इनके दोषों पर पर्याप्त प्रकाश भी डाला हैं तथा गुणों का कारण करते हुए प्रत्यभिज्ञा दर्शन के अनुसार आनन्दवाद की स्थापना की गई है जो कि मानव समाज एवं मानवता वाद के विकास के लिए श्लाध्य है। अस्तु संक्षेप में कहा जा सकता है कि अन्य सभी दर्शन एवं विचारधाराएँ एक मूल आनन्दवादी विचारधारा के ही अंग है और अन्त में इसी में उनका पर्यवसान भी हो जाता है।

5.4. सौन्दर्य बोध

'कामायनी' जयशंकर प्रसाद की काल-जयी एवं हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ कृति है। प्रसाद कामायनी में पात्रों की संख्या कम रखी है। उन्होंने रस और भाव के द्वारा प्रेम और राग के साथ सौंदर्य निरूपण किया है। यह मानवीय रूप सौंदर्य और प्राकृतिक सौंदर्य को विविध रूपों से सशक्त चित्रण किया। उन्होंने प्रकृति का चित्रण भयानक और रमणीय

रूपों के अतिरिक्त मानवीकरण भी किया है। इसके साथ ही प्रकृति के उद्दीपन रूप में भी चित्रित किया है। वातावरण निर्माण की दृष्टि से भी प्रकृति का 'काम' सर्ग में वसन्त वर्णन काम की प्रवृत्ति को सूक्ष्मता से अभिव्यक्त करने में समर्थ हुआ है-

"माधवी निशा की अलसाई
अलकों में लुकते तारों सी;
क्या हो सूने अरु अंचल में
अन्तः सलिला की धारा सी।"

'कामायनी' में प्रकृति का प्रतीक रूप में भी चित्रण मिलता है। प्रसाद ने 'कामायनी' में जो प्रकृति-चित्रण किया है, उसमें भावाक्षिप्त और संश्लिष्ट चित्रों को ही प्रधानता है। प्रसाद सौन्दर्य के उपासक थे। उन्होंने मानवीय सौंदर्य के अतिरिक्त प्राकृतिक सौंदर्य का वर्णन बड़ी सुन्दरता से किया है। वे मानते हैं कि प्रकृति और मानव में परस्पर बेजोड़ मेल है तथा मानव प्रकृति से सदैव प्रेरणा लेता है। कामायनी में मानवीय सौंदर्य के पक्ष में रूप सौंदर्य को वर्णन अधिक सुन्दर एवं विस्तार से किया है। मनु के शारीरिक सौंदर्य को बड़े विस्तार से अभिव्यक्त किया गया है-

"अवयव की दृढ़ मांस-पेशियां या वीर्य अपार
स्फीत शिराएं, स्वस्थ रक्त का होता था जिनमें संचार।"

मनु के साथ यानी पुरुष के अतिरिक्त नारी के सौन्दर्य को भी अद्वितीय रूप में चित्रण किया है।

"आह वह मुख! पश्चिम के व्योम बीच जब घिरते हैं। घनश्याम,
अरुण रति-मंडल उनको भेद दिखाई देता हो छविधामा।
था कि, जब इन्द्रनील लघु श्रृंग फोड़ कर धधक रही हो कांत –
एक लघु ज्वालामुखी अचेत माधवी रजनी में अश्रांत।"

श्रद्धा के सौंदर्य का वर्णन करता हुआ कवि करता है कि श्रद्धा का मुख लालिमा से परिपूर्ण था जो ऐसा प्रतीत होता था मानो जब पश्चिम के आकाश में नीले नीले बादल घिर आए हों तो उनको भेद कर सौन्दर्य का भंडार लाल सूर्य दिखाई देने लगे और कवि श्रद्धा के मुख के सौन्दर्य का वर्णन करता हुआ करता है कि वह नवयौवन की लालिमा से युक्त मुख ऐसे दिखाई दे रहा था मानो बसंत की रात में नीलम के पहाड़ की चोटी को फोड़ कर कोई ज्वालामुखी बिना विस्फोट किए लगातार धधक रहा हो और आगे कवि श्रद्धा के सौंदर्य का वर्णन करता हुआ कहता है कि उस लालिमायुक्त मुख के पास ही कोमल और घुँघराले बाल फैले हुए थे। वह ऐसे लगते थे मानों नीले बादलों के छोटे छोटे टुकडे अमृत भरने के लिए चन्द्रमा के निकट आए हो।

श्रद्धा के बाद कामायनी की दूसरी स्त्री पात्र इड़ा है, श्रद्धा हृदय की प्रतीक है और इड़ा बुद्धि की प्रतीक है।

बिखरी अलकें ज्यों तर्क जाल -

वह विश्व मुकुट सा उज्ज्वलतम शशिखंड सदृश था स्पष्ट भाल
दो पद्म - पलाश चषक से दृग देते अनुराग विराग ढाल

गुंजरित मधुप से मुकुल सदृश वह आनन जिसमें भरा गान
वक्षस्थल पर एकत्र धरे संस्कृति के सब विज्ञान ज्ञान
था एक हाथ में कर्म-कलश वसुधा-जीवन रस सार लिये
दूसरा विचारों के नभ को था मधुर अभय अवलंब दिये
त्रिवली थी त्रिगुण-तरंगमयी, आलोक - वसन लिपटा अराल
चरणों में थी गति भरी ताल।

कवि इड़ा के व्यक्तित्व का वर्णन करता हुआ कहता है कि उसके घुँघराले बाल तर्क-समूह के समाल थे। उसका ललाट अत्यन्त उज्ज्वल था, जो संसार के मुकुट के समान अर्द्ध चंद्रमा के समान प्रतीत होता था। उसके दोनों नेत्र कमल के पत्तों से बने हुए दो प्यालों के समान थे, जिनमें से प्रेम और वैराग्य छलक रहे थे। उसका मुख अधखिले फूल के समान था, जिससे निकलती हुई आवाज ऐसी प्रतीत होती थी मानो फूल पर कोई भौंरा गूंज रहा है। उसकी ऊँची छाती को देखकर ऐसा जान पड़ता था जैसे वह अपने हृदय में नगार के समस्त ज्ञान और विज्ञान को एकत्रित किये हुए हो। उसके एक हाथ में कर्म का पात्र था, जिसमें पृथ्वी पर रहने वाले समस्त प्राणियों के जीवन के आनन्द का भार भरा हुआ था, अर्थात् जिससे सभी लोगों को वास्तविक जीवनानन्द प्राप्त होता है और उसका दूसरा हाथ विचारों के आकाश को मधुरता तथा निर्ममता के साथ सहारा दे रहा था, अर्थात् केवल विचारों की गहनता थी। उसकी नाभि के समीप स्थित उदर की तीन रेखाएँ ऐसी जान पड़ती थी मानो सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण की तरंगे लहरा रही हों। उसने खेत वस्त्र को टेढ़ा करके धारण कर रखा था। जिस प्रकार नाचने वाले के चरण ताल के अनुसार ही आगे बढ़ते हैं, उसी प्रकार इड़ा के चरण भी उसके विचारों के अनुकूल ही आगे बढ़ते थे, इसीलिए उसके चरणों में गति और ताल विद्यमान थी। यहाँ कवि ने इड़ा का वर्णन उसे बुद्धि की प्रतीक मानकर किया है।

ऐसा ही प्रसाद ने कामायनी में प्रकृति के विभिन्न पक्षों का चित्रण किया है। प्रकृति के आलम्बन रूप, उद्दीपन रूप का वर्णन कामायनी में मिलता है। इसी तरह प्रकृति का मानवीकरण, रहस्यात्मकरूप, अलंकाररूप, प्रतीकात्मक रूप तथा उपदेशात्मक रूप भी देखा जा सकता है। प्रकृति के आलम्बन रूप के अन्तर्गत कवि ने हिमगिरि, प्रलय, प्रातः, संध्या, रात्रि, कुटीर, नदी आदि का वर्णन किया है। प्रकृति के रम्य और भयावह दोनों रूपों का आशा मर्ग में चित्रण किया है-

स्वर्ण शालियों की कलमें थीं दूर-दूर तक फैल रहीं,
शब्द इंदिरा के मंदिरा के मनों कोई गैल रही।

मनु प्रलय के समाप्त हो जाने पर प्रकृति के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कहते हैं कि सुनहरे धानों की कलमें दूर-दूर तक फैल रही थीं। उनको देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानो शरद ऋतु रूपी लक्ष्मी के अन्दर तक जाने के लिए यह कोई मार्ग बना हुआ हो।

हिमालयों का वर्णन भी अति सुंदर रूप से किया है। मनु के अपार, सौंदर्य को देखकर कहते हैं कि विश्व का निर्माण करने वाले सृष्टा के मन में उठने वाले उच्च विचारों के समान यह हिमालय सबको सुख, शीतलता और सन्तोष प्रदान करता है। हिमालय का हरी-भरी लताओं से ढका हुआ पवित्र एवं सुदृढ़ श्रृंगों वाला सुन्दर हशरीर ऐसे लगा रहा

था जैसे मानो वह सुख की निद्रा में सो रहा हो और कोई मधुर स्वप्न देखने के कारण अधीर होकर उसका शरीर रोमांचित हो उठा।

प्रसाद ने कामायनी में प्राकृतिक सौन्दर्य का सुन्दर वर्णन किया है। प्रकृति नायक और नायिका के भावों को उद्दीपक भी दिखाई गई है। प्रसाद जी ने प्रकृति के आलम्बन रूप को कम चित्रित किया है। वियोग उद्दीपन रूप में प्रकृति वर्णन का एक उदाहरण -

संध्या नील सरोरुह से जो श्याम पराग बिखरते थे
शैली - घारियों के अंचल को वे धीरे से भरते थे,
तृंग गुल्मों से रोमांचित सुनते थे दुख की गाथा
श्रद्धा की सूनी सांसों से जो मिलकर शबर भरते थे।

विश्व-विधुरा श्रद्धा की असहाय दशा का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि जब सन्धा रूपी नीले कमल से अंधकार रूपी पराग झरने लगता, अर्थात् सन्ध्या का अंधकार फैलने लगता और यह अंधकार धीरे-धीरे की घाटियों में भर जाता, तब श्रद्धा की विरह-वेदना असह्य से उठती। उसकी विरह-वेदना को घास और झाडियों से भरे हुए - केवल पर्वत ही पाते। वह वेदना श्रद्धा की सूनी साँसों से मिलकर स्वर का रूप धारण कर लेती थी।

छायावादी कवियों प्रकृति का मानवीकरण करते हुए अपनी रचनाएँ लिखी थी। प्रसाद ने भी रात्रि का मानवीकरण करते हुए रहते हैं कि रात्रि किसी से मिलने के लिए चली जा रही है और शायद वह देखने के लिए उत्सुकता पूर्वक घूंघट उठाती है, मुस्कुराती है और ठिठकती आगे बढ़ती है-

घूंघट उठा देख मुसक्याती किसे ठिठकती - सी आती
विजन गगन में किसी भूल सी किसको स्मृति पथ में लाती।

मनु रात्रि को सम्बोधित करते हुए करता है कि - हे रात्रि ! वह कौन है जिसे देख इस चाँदनी के घूँघट को उठाती हुई तू मुस्कुराकर रुक रुक कर चलती है ? तुझे ठिठकते देख ऐसा प्रतीत होता है मानो तुम इस सूने आकाश में घूमती हुई भूली बात को फिर से स्मरण करने के समान अपने किसी विस्मृत प्रेमी को याद करने का प्रयत्न कर रही हो। यह स्पष्टता से याद आती नहीं इसलिए रुक रुक कर चल रही हो।

इसी तरह प्रसाद कामायनी के आशा सर्ग में उषा को जयलक्ष्मी के समान वर्णित करते हैं। कवि ने प्रकृति के परागण से असंख्य उपमानों का चयन किया है। श्रद्धा के लिए कवि ने कामायनी में अनेक प्राकृतिक उपादानों का प्रयोग किया है। प्रकृति को द्वती रूप उपदेशात्मक रूप में तो चित्रित किया ही है। इसके अतिरिक्त प्रसाद ने प्रतीकात्मक रूप में भी प्राकृतिक सौन्दर्य का चित्रण किया है।

5.4.1. भाव सौन्दर्य

कामायनी में मनु और श्रद्धा की कथा के माध्यम से आधुनिक मानव के बौद्धिक तथा भावात्मक चित्रों को मनोवैज्ञानिक दृष्टि से चित्रित किया है। प्रसाद जी ने नायक मनु को परम्परागत महाकाव्यों की भांति उदात्त गुणों से संयुक्त नहीं किया है, बल्कि चारित्रिक दुर्बलताओं का समावेश कर यथार्थता का चित्रण किया है। इसका एक कारण यह है कि 'कामायनी' नायक प्रधान काव्य न होकर नायिका प्रधान काव्य है। इसलिए प्रसाद नायक की अपेक्षा

आधुनिक नारी की उदात्त विचारधारा प्रस्तुत किया है। इसके अतिरिक्त प्रसाद ने 'कामायनी' में पात्रों की संख्या कम रखी है, किन्तु उन्होंने इस की ओर ध्यान रखते हुए पात्रों के चारित्रिक विकास को रूपायित करने का प्रयास किया है। प्रसाद ने मनोवैज्ञानिक धरातल पर पात्रों की नागरिक विशेषताओं का सशक्त चित्रण किया है, जो महाकाव्य के अनुकूल है। इन्होंने 'कामायनी' के भावों में रसों का अत्यधिक सशक्त तथा सजीव चित्रण किया है। वस्तुतः भावानुभूति को तन्मयता के कारण ही प्रसाद, कथा के प्रति सजग नहीं रह सके है। उन्होंने भाव निरूपण में सम्पूर्ण सर्ग की रचना कर रही हैं। लज्जा सर्ग में लज्जा भाव अत्यंत सशक्त उत्कृष्ट किया है-

"स्थित बन जाती है तरल हँसा नयनों में भर कर बाँकना;

प्रत्यक्ष देखती हूँ सब जो वह बनता जाता है सपना।"

भावों के अतिरिक्त कामायनी में रसों का भी वर्णन मिलता है। प्रसाद ने कामायनी में श्रृंगार के दोनों पत्रों का संयोग एवं वियोग का अनुप चित्रण किया है।

'मनु बिखरने लगे ज्यों ज्यों यामिनी का रूप

वह अनन्त प्रगट छाया फैलती अपरूप

बरसता था मन्दिर कण-सा स्वच्छ सतत अनन्त

मिलन का संगीत होने लगा था श्रीमन्त।'

इस प्रकार 'कामायनी' में प्रायः सभी रसों का चित्रण हुआ है। किन्तु उन्होंने हास्य रस का वर्णन नहीं किया है। अतएव कामायनी में महाकाव्य सदृश भाव और रसों का उत्कृष्ट रूप में चित्रण मिलता है। जहाँ तक कलागत विशेषताओं का प्रश्न है, प्रसाद ने प्रत्येक सर्ग में अलग अलग छन्द का प्रयोग किया है। इसके साथ ही सम्पूर्ण छन्द विधान भी शास्त्रानुकूल है, किन्तु 'इड़ा' सर्ग में नूतन प्रगीत प्रणाली आधार पर प्रसाद ने नए छन्दों का भी प्रयोग किया है और अपनी मौलिकता का परिचय दिया है। अतएव यह कहा जा सकता है कि 'कामायनी' महाकाव्य की रचना प्रसाद ने स्वतंत्र पद्धति से की है, जिसमें भारतीय और पाश्चात्य दोनों प्रणालियों के समन्वित स्वरूप दृष्टिगोचर होते हैं।

5.5. सारांश

'कामायनी' हिन्दी साहित्य में एक उत्कृष्ट काव्य है। छायावादी के प्रवर्तक कवि जयशंकर प्रसाज जी इसे एक ऐतिहासिक - दार्शनिक महाकाव्य के रूप में रचा है। कामायनी में युग द्रष्टा साहित्यकार प्रसाद ने केवल प्रत्यभिज्ञास दर्शन की उद्भावना ही नहीं बल्कि पुनरुत्थान - युग के समग्र नवीन दर्शनों और भारतीय अद्धद्वैत भावना के साथ युग मानव का पूर्ण विकास को भी दर्शाया। लोक जीवन के प्रांगण में इहलोक के अनुकूल जड़ दर्शनों और आत्मा के पूर्ण परिष्करण के लिए अद्वैत - दर्शन के समन्वय में ही प्रसाद की दार्शनिक चेतना का आलोक मिलता है। कामायनी का मुख्य दर्शन प्रत्याभिज्ञान दर्शन के सिद्धांतों का प्रतिपादन करना है लेकिन इसके साथ ही अनेक अनेक अन्य दर्शनों जैसे बौद्ध दर्शन तथा न्याय वैशेषिक दर्शन का प्रभाव भी इसकी विचार धारा में परिलक्षित होता है।

कथा वस्तु को हृदयग्राही बनाने के लिए आज कथा में केवल आध्यात्मिक तत्व ही अपने आप में पर्याप्त नहीं है अतः इसके साथ-साथ अनेक वैज्ञानिक सिद्धांतों को भी स्थान दिया गया है। इस सिद्धांतों पर विचार कर इनके दोषों पर पर्याप्त प्रकाश भी डाला हैं तथा गुणों का ग्रहण करते हुए प्रत्यभिज्ञादर्शन के अनुसार आनन्दवाद की स्थापना की गई है जो कि मानव समाज एवं मानवता वाद के विकास के लिए श्वाह्य है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि अन्य सभी

दर्शन एवं विचारधाराएँ एक मूल आनन्दवादी विचारधारा के ही अंग है और अन्त में इसी में उनका पर्यवसान भी हो जाता है । दर्शन के बाद कामायनी में अपने युग के परम्परा और नूतन अधिकांशतः सौन्दर्य और रस सम्बन्धी सामान्यताओं के दर्शन होते हैं इसके अतिरिक्त काव्य के भाव तथा विभाव दोनों पक्षों का अत्यन्त सफलता के साथ निरुपण किया है।

5.6. बोध प्रश्न

1. कामायनी में दर्शाया गया 'दर्शन' के बारे में विस्तृत चर्चा कीजिए।
2. कामायनी के समरसता और आनन्दवाद दर्शन के बारे में बताइए।
3. कामायनी के सौंदर्य बोध के बारे में बताइए।

5.7. सहायक ग्रंथ

1. कामायनी एक पुनर्विचार - गजानन माधव मुक्तिबोध।
2. कामायनी में काव्य, संस्कृतिकता का दर्शन- डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना।
3. छायावादः पुनर्मूल्यांकनः सुमित्रानन्दन पन्त।
4. छायावाद युगः शंभुनाथ सिंह, सरस्वती मंदिर, वाराणसी; 1962 छायावाद के गौरव चिह्नः प्रो. क्षेमेन्द्र।
5. छायावादी कवियों का सौन्दर्य विधानः डॉ. सूर्यप्रसाद दीक्षित।
6. छायावादः राजेश्वरदयाल सक्सेना।
7. छायावादी काव्यः डॉ. कृष्ण चन्द्र वर्मा; मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, म.प्र.।
8. नवजागरण और छायावादः महेन्द्र नाथ राम, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली।

डॉ. एम. मंजुला

6. कामायनी की प्रतीक - पद्धति - महाकाव्यत्व

6.0. उद्देश्य

पिछले अध्यायों में हम छायावाद धारा के प्रमुख कवि प्रसाद के बारे में और उनकी प्रमुख काव्य कृति कामायनी के कथासार और दार्शनिक तत्वों के बारे में और सौंदर्य के बारे में जान चुके हैं। इस अध्याय कुछ अन्य विषय जैसे कामायनी के प्रतीक- पद्धति, महाकाव्यत्व के बारे में पढ़ेंगे। इस अध्याय को पढ़ने के बाद हम-

- कामायनी में व्यक्त प्रतीक - रूपक - पद्धति के बारे में जान पायेंगे।
- कामायनी के महाकाव्यत्व के बारे में जान पायेंगे।
- कुछ संदर्भ सहित व्याख्याओं को बारे में जान पढ़ेंगे।

रूपरेखा

6.1. प्रस्तावना

6.2. कामायनी में प्रतीक पद्धति

6. 3. कामायनी का महाकाव्यत्व

6.3.1. कामायनी कथावस्तु – ऐतिहासिकता

6.3.2. वस्तु निर्देश

6.3.3. धीरोदत्त नायक

6.3.4. प्रकृति चित्रण

6.3.5. भाव-रस

6.4. सारांश

6.5. बोध प्रश्न

6.6. सहायक ग्रंथ

6.1. प्रस्तावना

कामायनी की कथावस्तु वैदिक साहित्य से स्वीकृत है। कामायनी में वर्णित आख्यानों की रूपकता सर्वमान्य है वे सब किसी न किसी भावना के प्रतीक है। कामायनी में मानसिक आनंन्दवाद एवं मानवता की प्रतिष्ठा है। भावों का प्रतिष्टापक मन, श्रद्धा, काम एवं रीति कामना, आकुली और किलात, इड़ा विकृत बुद्धिवाद मानव, मानवता के साथ समरसता एवं शिव शिवत्व के प्रतीक हैं। कवि के अनुसार आनन्द मन की वृत्ति हैं। श्रद्धा के बिना मन या मनुष्य को आनन्द की उपलब्धि असंभव है। मन आनंद का उपयोग करना चाहता है। मन का विचार है कि अधिकार, बल वैभव, कीर्ति, दीप्ति, शक्ति, विश्व व्यापक प्रभाव, कोलाहल, सौन्दर्य का आस्वादन, संगीत-विलास

द्वारा आनंद की प्राप्ति संभव है। प्रसाद ने कामायनी में मानव को भी ऐतिहासिक भूमि पर प्रतिष्ठित्व किया है, किन्तु घटनाओं की प्राचीनता के कारण ऐतिहासिकता के साथ-साथ उनमें रूपक का भी समावेश हो गया है। प्रमुख पात्र ऐतिहासिक ही नहीं वरन् मानव वृत्तियों के प्रतीक रूप में प्रस्तुत हो गए हैं। इससे स्पष्ट होता है कि प्रसाद ने इतिहास के मूल में मानव वृत्तियों के विकास को भी देखने की चेष्ठा की है। अतएव ऐतिहासिक कथानक होते हुए भी कामायनी में मनोवैज्ञानिक व्यंजना भी हो गयी है।

6.2.कामयनी में प्रतीक पद्धति

कामायनी में केवल तीन ही पात्र मिलते है- मनु, श्रद्धा, इड़ा। मनु आदि पुरुष है, जो जल प्रलय के बाद बचा हुआ अकेले देव जाति के व्यक्ति है। श्रद्धा गांधार देश की राजकुमारी और इड़ा सारस्वत प्रदेश की रानी है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से मनु मन का, श्रद्धा- हृदय का और इड़ा - बुद्धि का प्रतीक है। कामायनी के 'आमुख' में प्रसाद जी ने लिखा है- 'मनु अर्थात मन के दोनों पक्ष हृदय और मस्तिष्क का सम्बन्ध क्रमशः श्रद्धा और इड़ा से भी सरलता से लग जाता है। अतः यहाँ पर मनु की क्या अनुस्यूत है तथा उनका सम्बन्ध हृदय और मस्तिष्क से है तथा उसके द्वारा जो परिणाम होते हैं, वही-कथा कामायनी में अंकित की गई है।'

भारतीय दृष्टि से 'मन' का विवेचन वैदिक काल से मिलता है। ऋग्वेद में मन की उत्पत्ति काम से दिखाई गई है। बौद्ध दर्शन में विज्ञान स्कन्ध को ही चेतना या मन कहा गया है। न्याय एवं वैशेषिक दर्शन में मन को सुख - दुःखादि का अनुभव करने वाली साधन इन्द्रीय माना गया है। वेदान्त दर्शन में इसे एक आन्तरिक इन्द्रिय माना गया है। मन के गुणों में सत्व, रान तथा तम को स्वीकार किया गया है। मन के दो रूप माने गए हैं- शुद्ध एवं अशुद्धी। काम-क्रोध आदि से रहित मन शुद्ध मन कहलाता है। मन को आत्मा की सहायता करने वाली अत्यंत चंचल, दृढ़ एवं बलशाली इन्द्रिय माना गया है। मानव जीवन की उन्नति एवं अवनति मन पर ही निर्भर है। मन शुद्ध, संयमित एवं शान्त होकर ही अन्त में आनन्द प्राप्त करता है। ऐसी मन का प्रतीक ही कामायनी में मनु का है।

स्वयं प्रसाद जी ने मनु की मनन शक्ति का निर्देशन आमुख में किया है। मन के प्रतीक होने के कारण मनु, मनोमय कोश में स्थित जीव के प्रतीक हो जाते हैं। इस प्रकार यहाँ मन और मनु को एकार्थक माना गया है। मन से तात्पर्य उस चेतना से है जो मूलतः अहंकारमची, चंचल, स्वच्छन्द्र, संघर्षमयी, असंतुष्ट, चिन्ताशील रहने वाली होती है। मनु प्रारम्भ से ही चिन्ताशील मुद्रा में सामने आते हैं। वे चिंता और अहंकार के कारण संकल्प और विकल्प के पलड़े में झूलते रहते हैं। आदि से अंत तक इनका यह रूप देखने को मिलता है। चिन्ता सर्ग में उनके यह भाव स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं।

श्रद्धा विश्वासमयी है। विश्व हृदय की अनुभूति है। प्रसाद ने श्रद्धा का 'हृदय' का प्रतीक माना है। मनुष्य के हृदय में स्थित इच्छा संकल्प के द्वाश श्रद्धा का प्राप्त होती है और श्रद्धा के द्वारा सब प्रकार की समृद्धि, सम्पत्ति प्राप्त होती है, वह जीवन में सब प्रकार से स्थित और सफल होता है। श्रद्धा कामायनी में दया, माया, ममता, मधुरिमा तथा विश्वास से पूर्ण है। यह सब हृदय की उदात्त वृत्तियाँ है। श्रद्धा को विश्वासमयी रागात्मिका वृत्ति कहा गया है। कामायनी में इसे प्रारम्भ से अन्त तक इसी रूप में पाते हैं और मनु रूप मन पूर्ण श्रद्धायुक्त हो जाता है तब उसे की प्राप्ति होती है। श्रद्धा ही मनु को इस आत्मानन्द शिवत्व आत्मानन्द तक पहुंचाती है।

इड़ा का सम्बन्ध मन की दूसरी वृत्ति बुद्धि से है। जिसमें तर्क, ज्ञान-विज्ञान का समावेश किया गया है। यह अपने बुद्धि - बल से ऐश्वर्य भोग तथा भौतिक सुखों की प्राप्ति कराती है। इसमें हृदय पक्ष का अभाव है। चिन्ता, सर्ग

प्रसाद जी ने इसे बुद्धि, मनीषा, मति, आशा, चिन्ता आदि अनेक नाम-भेद-रूपा कहा है। इस दृष्टि से बुद्धि "पुण्य सृष्टि में सुन्दर पाप" रूप में मनुष्य के जीवन में उपस्थित रहती है। उसी के कारण 'गृह- कक्ष' में हरी भरी दौड़-धूप प्रारम्भ होती है। मनु के जीवन में इड़ा इसी दौड़ - धूप की केन्द्र बनती है।

प्रसाद जी के अवधारणा है कि भारतीय एवं पाश्चात्य सिद्धांतों की भाँति मन, समस्त मनोवृत्तियों मनोविकारों एवं संवेगों का मूलाधार है। मन, चेतन और अचेतन अवस्था में नाना प्रकार के विकारों में लीन रहता है। चिन्ता विषाद, क्रोध निर्वेद, लोभ और आनन्द आदि मनोविकारों का संबंध मन से है। इसके वशीकृत होकर वह चंचल बना रहता है। यह सद्बुद्धि और हृदय के साथ मिलकर ही आनन्द-मार्ग का अनुगामी हो सकता है। यदि मन सद्बुद्धि का साथ छोड़ दें, तो विवेक शून्य हो जायेगा। अतः दोनों से संयुक्त होने पर ही इसकी गंतव्य पर सफलता प्राप्त होती है। कामायनी में आधान्त मन का यही सम्बन्ध तथा परिणाम दिया गया है।

श्रद्धा और मनु का पुत्र कुमार है। वह देव द्वन्द्व का प्रतीक है। श्रद्धा ने इसे इड़ा से तर्कशीलता अपनाकर, निर्भय कर्म करने, सबका सम्पात हरने, नये ढंग से मानव का भाग्योदय करने एवं सबकी समरसता प्रचार करने का आदेश दिया है। इस प्रकार कुमार (श्रद्धा - मनु- इड़ा से समरस) 'नव मानव' का प्रतीक बनता है।

कामायनी में देव जलप्लावन, श्रद्धा का पशु वृषभ, मानसरोबर तथा कैलाश पर्वत भी अपने सांकेतिक अर्थ देते हैं। देव इन्द्रियों के प्रतीक हैं। इन्द्रियाँ सदैव विषयों की ओर जाती है। यही स्थिति देवों की हैं। जलप्लावन को वासनामय, अन्नमय कोश माना गया है। जीवन जब आनन्दमय कोश की ओर न जाकर अन्नमय कोश में ही रहता है तब उसकी चेतना माया में लिप्त हो जाती है। कैलाश शिखर पर स्थित यह सरोवर सांसारिक माया से ग्रस्त मानव को निर्मलता प्रदान करता है। जो मन की समरसता का प्रतीक है 'कैलाश पर्वत' आनन्दमय कोश का प्रतीक है। जहाँ मनु श्रद्धा के साथ पहुँचकर अखण्ड आनन्द को प्राप्त करते हैं। 'त्रिंकोण' इच्छा -ज्ञान एवं क्रियावृत्ति का प्रतीक है।

कामायनी में सर्गों का नामकरण, स्थान, घटना या पात्र के आधार पर न होकर, मानसिक वृत्तियों के आधार पर हुआ है। इन वृत्तियों का सम्बन्ध कामायनी के विविध पात्रों के आधार पर है। प्रसाद ने प्रथम सर्ग का नाम चिन्ता मनोभाव ही रखा है। उन्होंने इसे दुःखात्मक माना है। चिन्ता संसार का मनोमय व्यापार है। इसमें संसार की प्रवृत्ति तो रहती है; किन्तु कर्म सम्बन्धी कोई प्रवृत्ति नहीं। यहाँ पर मन अर्थात मनु केवल देवताओं के अतीत के वैभव-विलास के विनाश पर पाश्चाताप के आँसू बहाते हैं-

'वे सब डूबे, डुबा उनका विभव, बन गया पारावार
देव सुखों पर तैर रहा है दुख जलधि का बाद अपारा।'

यहाँ उनके सामने न तो कोई कर्म हैं और न ही भविष्य - निर्माण का प्रश्न। अतः मनु का मन ऐश्वर्य- विनाश की चिन्ता से ग्रस्त हो गया है इसका स्वरूप भी दुःख मूलक है-

"से चिन्ता की पहली देखा भी विश्व बन की बयाली
हे प्रभाव की चपल बालिके की सलाह की खलल लेखा।"

चिन्ता के पाश्चात्य विश्व में व्यावसायिकता जीवन का द्वितीय चरण आशा का होता है। बिना आशा के सृष्टि का व्यापार नहीं चल सकता। इसीलिए कामायनी में चिन्ता के पश्चात् आशा सर्ग रखा गया है। आशा चिन्ता की

भांति निष्क्रिय नहीं, यह मानव मल की विधायक वृति है। यह मानव को क्रियाशील परिचय होने के लिए प्रेरणा प्रदान करती। कामायनी में भी इसी क्रियाशीलता का परिचय मिलता है। श्रद्धा सर्ग में मन तथा हृदय का पारस्परिक सम्बन्ध जोड़ा गया है। श्रद्धा हृदय की रागात्मक वृत्ति है किन्तु कामायनी में अड्डा केवल हृदय वृत्ति के प्रतीक रूप में ही नहीं है, वरन एक स्वतन्त्र व्यक्तित्व भी रखती है। नारी के रूप में वह काम वासना आदि वृत्तियों को लिए हुए है। प्रतीक रूप में वह हृदय की सभी उदार-वृत्तियों की प्रतिभा उपस्थित करती है। इसलिए जब मन विश्वास, आस्तिकता, रागात्मिका वृत्ति, प्रीति एवं हृदय की ओर उन्मुख होता है, तब उसका सम्बन्ध श्रद्धा से हो जाता है, क्योंकि ये सभी गुण श्रद्धा के हैं। इसलिए आशा के उपरान्त मन में श्रद्धाभाव का जग्रत होना अत्यन्त स्वाभाविक ही है।

कामायनी का चौथा सर्ग 'काम' है। न्याय-दर्शन में इच्छा को ही काम कहा गया है – "इष्ट – विषयाभिलाषः" अर्थात इष्ट - विषय को प्राप्त करने की ही इच्छा या काम कहा जाता है। श्रद्धा से सम्बन्ध होते ही मन में भविष्य निर्माण की अभिलाषा जाग्रत हुई क्योंकि हृदय न हो मनु प्रवृत्ति मार्ग पर लगाया है। अतः इच्छा के उद्भुत होते ही मन में काम का जन्म होता है।

'वासना' काम का व्यक्त रूप है। वासना का अर्थ है- विषय में प्रवृत्त होना। आसक्ति एवं वासना की प्रबलता के कारण रजोगुण की भी वृद्धि होती है। इसलिए मनु का सारा ज्ञान काम से आवृत हो जाता है। इस अवस्था में मन मोहित हो जाता है। यह मोहित अवस्था ही यहाँ मन की वासनामयी अवस्था है, जिसका चित्रण कामायनी में हुआ है।

छूटती चिनगारियाँ उत्तेजना उद्भान्त,

धधकती ज्वाला मधुर, वक्ष विकल अशांत॥

'वासना' के उपरान्त 'लज्जा' का चित्रण किया गया है। वासना काम का व्यक्त रूप है और लज्जा, नारी के व्यक्त रूप को रोकने वाला मनोभाव है। लज्जा का अर्थ है 'स्वछन्छ किया संकोच'। श्रद्धा नारी रूप में अपनी मुग्धावस्था में है और इसी कारण पुरुष के निकट उसमें लज्जा का होना स्वाभाविक ही हैं। नारी भावना में लज्जा धात्री के रूप में कार्य करती है। लज्जा एक प्रकार का संचारी भाव है। स्तियों के मन में पुरुष को देखने से प्रतिज्ञा-भंग, पराजय, अनुचित कार्य आदि से इसका उदय माना गया है। इस प्रकार वासनानुभूति मन का यह सहज स्वाभाविक व्यापार है।

लज्जा के उपरान्त 'कर्म' सर्ग रखा गया है। वासना का परिणाम होता है- अधिकाधिक तृष्णा की वृद्धि और उसकी तृप्ति के लिए पुरुष में प्रवृत्ति इस कर्म का स्वरूप हिंसात्मक है क्योंकि, वासना के कारण मनु तमोगुणी हो जाता है। तमोगुणी पुरुष में आसुरी प्रवृत्ति जाग्रज हो जाती है। कामायनी में मनु भी आकुलि किलात द्वारा भ्रमित होकर हिंसा मादकता, विलसिता आदि निकृष्ट कर्मों में लीन हो जाते हैं और एक मात्र अपने दैनिक सुख को ही सर्वस्व समझने लगते हैं-

'तुच्छ नहीं है अपना सुरत भी श्रद्धे! वह भी कुछ है,

दो दिन के इस जीवन को तो वही चरम सब कुछ है।'

वस्तुतः भारतीय दृष्टिकोण से यह मन की पतनोन्मुख स्थिति का चित्रण है। पाश्चात्य दृष्टिकोण से थे मन की संग्रह वृत्ति का रूप है। कर्म वर्ग में इस प्रवृत्ति को पूर्ण करने वाली अभिलाषा के दर्शन होते हैं और मन इसी भावना से प्रेरित हो कर पशु-यज्ञ करता है। जब हिंसात्मक कर्मों के दुवारा 'स्व' का विस्तान होता है वहाँ बाधक वस्तुओं के रूप में ईर्ष्या- द्वेष का समावेश होना स्वाभाविक है। इसलिए कर्म के पश्चात् 'ईर्ष्या' सर्ग का निरूपण हुआ मनु एकाधिकार की प्रवृत्ति एवं व्यक्तिवाद के रूप के अपने अधिकारों पर किसी प्रकार की बाधा नहीं चाहते। वे सब पर अपना असीम अधिकार स्थापित करना चाहते हैं। बाधा डालने वाले के प्रति मनु के मन में ईर्ष्या उत्पन्न होती है। *

'यह जलन नहीं सह सकता मैं चाहिए मुझे मेरा ममत्व;

इस पंचभूत की रचना में मैं रमण करूँ बन एक तत्व' ॥

'ईर्ष्या' के पश्चात् कामायनी में 'इड़ा' सर्ग है। मानव अपनी अहंभावना की तुष्टि एवं तृप्ति के लिए बुद्धि - क्षेत्र में प्रविष्ट होता है। मनु भी इसी बुद्धि क्षेत्र में प्रवेश करते हैं। परन्तु ईर्ष्या के कारण अब उसे हृदय में कोई आकर्षण नहीं दिखाई देता और वह उस क्षेत्र को छोड़कर बुद्धि के क्षेत्र में प्रवेश करता है। कामायनी में बुद्धि का प्रतीक 'इड़ा' है। प्रसाद जी ने इसे स्वतंत्र व्यक्तित्व का रूप भी दिया है, यथा – 'बिखरी अलकें ज्यों तर्क जाल' तथा 'त्रिबली थी तरंगमयी' इत्यादि। वह इस रूप में श्रद्धा की तरह मनु के सामने उपस्थित हुई है। श्रद्धा अर्थात हृदय को त्याग पर, मन बुद्धि की ओर अग्रसर होता है और बुद्धि के सहयोग से मनु साम्राज्य में व्यवस्था करते हैं।

तदुपरांत व बुद्धि की अधिष्ठात्री इड़ा पर भी अधिकार चाहते हैं, वास्तव में व्यभिचार है। इसी अनाचार तथा व्यभिचार के कारण मनु नाना प्रकार की विपत्तियाँ टूटती है। मनु के जीवन में विपत्ति बाने के बहुत पहले श्रद्धा उन विपत्तियों को स्वप्न में देखती है। श्रद्धा वह शक्ति है जो अदृष्ट को देख सकती है। प्रतीक रूप में उसकी यह व्यंजना है कि दुःख में श्रद्धा वृत्ति सदा जागरूक रहता है। कामायनी के 'स्वप्न' सर्ग इसी मनोभाव का प्रतीक है। बुद्धि का अतिचार संघर्ष में परिणत होता है और मनु के जीवन में भी संघर्ष होता है। प्रकृति के साथ इस संघर्ष में मानव सफल नहीं हो सकता। बुद्धि के तर्क जाल और नाना प्रकार के कर्म करने पर विफलता मिलती है। उसके छूटने के लिए उसे वैराग्य विरक्ति, 'नर्वेद' की आवश्यकता होती है। कामायनी के निर्वेद सर्ग में मन का समस्त ऐश्वर्य नष्ट हो जाता है। आघात के कारण उसे दुःख घेर लेते है। प्रजा द्वारा उसका अपमान होता है। इन सब के कारण मन भौतिकता की निस्सारता तथा बुद्धि के अतिचार से तत्वज्ञान की ओर उन्मुख होता है।

'सोच रहे थे जीवन सुख है ना, यह विकट पहेली है

भाग अरे मनु ! इन्द्रजाल से कितनी व्यथा न झेली है ?'

अतः मन यहाँ पूर्णतः दृष्ट एवं जैविका विषयों में वितृष्ण हो जाता है और तभी उसमें निर्वेद जग जाता है। मनोविज्ञान की दृष्टि से निर्वेद भी एक प्रकार की मूल प्रवृत्ति है। निर्वेद के पश्चात 'दर्शन' सर्ग है। निर्वेद के पश्चात् मन द्वैतबुद्धि से पराङ्मुख हो जाता है और निवृत्ति प्राप्त करने पर उनकी भावना आत्ममुखी हो जाती है। तब उसे 'विचार प्रयोजन ज्ञान दर्शन' प्राप्त हो जाता है। 'दर्शन' सर्ग में मनु संचार की समग्र कामनाओं, अहंकार, इच्छा, स्पृहा आदि से दूर हो जाते हैं। उनमें एक मात्र तत्वज्ञान के प्रति आस्था होने के कारण विशद- शक्ति में विश्वास उत्पन्न हो जाता है। इसी विश्वास के कारण उन्हें नर्तित नटराज का साक्षात्कार होता है। नरेश का साक्षात्कार होते ही मनु को तत्व का आभास होने लगता है और वह संसार की इस विभीषिका एवं विषमता से पूर्णतः परिचित हो जाता है। इच्छा, क्रिया

और ज्ञान पृथक-पृथक रहने से ही संकट उपस्थित होता है। जीवन की विडम्बना इनके वैषम्य में है। इनके समन्वय से ही अखण्ड आनन्द को प्राप्त किया जा सकता है किन्तु यह समन्वय श्रद्धा द्वारा ही सम्भव है। आनन्द सर्ग में प्रसाद जी ने इसी समन्वय को दिखाकर मन की उच्चतम स्थिति को प्रस्तुत किया है। यहाँ मनु में आस्तिकता का भाव और विराट की वास्तविकता का ज्ञान उत्पन्न हो जाता है।

इस तरह प्रसाद ने 'कामायनी' के प्रत्येक सर्ग के शीर्षक के अनुकूल तत्सम्बन्धी सभी भावनाओं का समावेश किया गया है। जैसे चिन्ता सर्ग में चिन्ता के अतिरिक्त तज्जन्य अनुभवों- स्मृति, वैवर्ण्य, जडता आदि का भी उल्लेख है, यही बात काम,वासना, स्वप्न, निर्वेद आदि अन्य सर्गों की भी है।

6.3. कामायनी को महाकाव्यत्व

साहित्य में काव्य के दो रूप मिलते हैं + दृश्य काव्य, श्रव्य काव्य। श्रव्य काव्य के पुन: वो रूप- पद्यकाव्य और चम्पू काव्य है। पद्य काव्य के महाकाव्य, खण्ड-काव्य और मुक्तक तीन प्रकार हैं। इसमें महाकाव्य जो है इसके लक्षण संस्कृत लक्षण ग्रंथों के आधार पर ही निर्धारित किए गए है। प्राचीन आचार्यों के अनुसार महाकाव्य के लक्षण इस प्रकार

हैं - 1. महाकाव्य में जीवन का चित्रण व्यापक रूप में होता है।

2. इसकी कथा इतिहास - प्रसिद्ध होती है।

3. इसका नायक उदात्त और महान चरित्र वाला होता है।

4. इसमें वीर, श्रृंगार तथा शान्तरस में से कोई एक रस प्रधान तथा शेष इस गौण होते हैं।

5. महाकाव्य सर्गबद्ध होता है, इसमें कम से कम आठ वर्ग होने चाहिए।

6. इसकी कथा में धारावाहिकता तथा हृदय को भाव-विभोर करने वाले मार्मिक प्रसंगों का समावेश होना अनिवार्य है।

आधुनिक युग में महाकाव्य के प्राचीन प्रतिमानों में परिवर्तन हुआ है। अब इतिहास के स्थान पर मानव जीवन की कोई भी घटना, कोई भी समस्या, इसका विषय हो सकती है। महान पुरुष के स्थान पर समाज का कोई व्यक्ति इसका नायक हो सकता है। परन्तु उस पात्र में विशेष क्षमताओं का होना अनिवार्य है।

पाश्चात्य महाकाव्यों की मुख्य प्रवृत्तियाँ

1. इसका कथानक प्रख्यात होता है।

2. इसमें एक ही छंद का प्रयोग होता है।

3. इसका आधार आदि, मध्य, अवसान युक्त होता है।

4.संगठन में यह ऐतिहासिक रचना से भिन्न होता है।

5. इसमें एक ही समय में घटित अनेक घटनाएँ होनी चाहिए।

6. एक मुख्य आख्यान के साथ -अनेक उपआख्यानों की योजना होती है।

कामायनी छायावादी काव्यधारा के प्रमुख महाकाव्य है। इसमें संस्कृत और पाश्चात्य महाकाव्य के लक्षणों में विलक्षणता तो दिखाई देती है फिर भी कुछ प्रमुख लक्षण पाडा जाते है। डॉ. नगेंद्र ने कामायनी के महाकाव्यत्व पर विचार करते हुए कहते हैं- 'स्वदेश' – 'विदेश' के काव्य शास्त्र में निर्दिष्ट महाकाव्य के लक्षणों की गणना प्रस्तुत सन्दर्भ में कदाचित सार्थक न होगी। इसलिए मैं महाकाव्य के उन्हीं तत्वों को लेकर चलूंगा जो देशकाल सापेक्ष नहीं है, जिसके अभाव में किसी भी देश अथवा युग की कोई रचना महाकाव्य नहीं बन सकती और जिनके सद्भाव में परम्परागत शास्त्रीय लक्षणों की बाधा होने पर भी किसी कृति को महाकाव्य के गौरव से वंचित नहीं किया जा सकता ।

कामायनी में प्रसाद जी ने शास्त्रीय रुढ़ियों का अनुगमन नहीं किया है। उनकी रचना में शास्त्रीय संस्कार तो है किन्तु उसकी आत्मा कवि के मानसिक संगठन एवं जीवन दृष्टि के आधार पर निर्मित है। इसलिए कामायनी के महाकाव्यत्व का मूल्यांकन हम शास्त्रीय लक्षणों के आधार पर न करके उसमें निहित काव्य-तत्वों की महनीयता के आधार पर करेंगे। प्रायः महाकाव्यों की रचना में कथानक, नायक, चरित्र-चित्रण, प्रकृति वर्णन, युग चित्रण, भाव और रस तथा शैली आदि उपादानों का संगठन किया जाता है।

महाकाव्य का प्रथम वैशिष्ट्य जो कामायनी में गृहीत हुआ, वह है सर्ग वाद विविध भावों के विस्तृत चित्रविधान की दृष्टि से यह आवश्यक कि काव्य को अधिक सर्गों में निबद्ध किया जाय। यह ध्यान में रखने की बात है कि, कर्म संकुल विस्तृत मानव समाज और विविध भावाक्षेपी मानव जीवन के आधार भूत विस्तृत वस्तु विधान के आग्रह से यहाँ 15 सर्गों में काव्य शरीर घठित हुआ है। सर्पों के नाम इस सत्य के द्योतक हैं। कामायनी और मनु के मिलन और अंत: संबंध स्थापन में ही आशा, श्रद्धा, काम, वासना, लज्जा और कर्म थे। कामायनी में चिन्ता से लेकर आनन्द तक पंद्रह सर्ग है।

6.3.1.कामायनी कथा वस्तु – एतिहासिकता

कामायनी की कथावस्तु पौराणिक एवं ऐतिहासिक है। मूल कथा में ऐतिहासिक तथ्य बहुत कम है लेकिन कवि ने कल्पना तत्व का सम्मिश्रण कर इसे विस्तृत कर दिया है। कामायनी के मूलाधार ग्रंथ शतपथ ब्राह्मण ऋग्वेद तथा पुशाणों में श्रद्धा, मनु तथा इड़ा की कथाएँ क्रमहीन असम्बद्ध तथा परस्पर उलझी हुई हैं। ये घटनाएँ परम्परा से सर्वथा भिन्न तथा विविध रूपों में मिलती है, जिसके कारण श्रद्धा और मनु के जीवन में घटने वाली घटनाओं का स्पष्ट रूप से पता नहीं चलता। नव-सृष्टि के निर्माण से पूर्व इनका मिलन किस प्रकार हुआ तथा उनका जीवन किस प्रकार व्यवस्थित हुआ आदि कुछ घटनाएँ ऐसी हैं, जिन पर प्रकाश नहीं बड़ा। फिर भी कवि ने इन सब का श्रृंखलाबद्ध करके कामायनी का कथा वस्तु वास्तविक रूप में ऐतिहासिक बना दिया। प्रलय से बचे मनु यज्ञ आदि करना, श्रद्धा से दाम्पत्य सूत्र में बाँधना, गृहस्थ जीवन के प्रतीक के स्वरूप पशु-पालन, पुत्र-जन्म, श्रद्धा से विश्वत होने के कारण गृह-त्याग, सारस्वत प्रदेश का शासन, अस नगर की उन्नति करना, संघर्ष, युद्ध आदि का वर्णन श्रद्धा के साथ कैलाश यात्रा, नटराज के दर्शन, तत्वज्ञान के साथ आनन्द की स्थिति प्राप्त करना इस काव्य की मुख्य मथानक है। सीमित पात्र होने के कारण इसमें प्रासंगिक कथाएँ नहीं मिलती हैं। कामायनी का कथानक लघु होते हुए भी एक महाकाव्य के अनुकूल है। इस में मनु और श्रद्धा की जीवन गाथा के सहारे आधुनिक मानव के बौद्धिक एवं भावात्मक चित्र अंकित किये गए हैं।

6.3.2. वस्तु निर्देश

महाकाव्य के लक्षणों के अनुसार काव्य मंगलाचरण, आशीर्वाद नमस्कार आदि से आरंभ होना है। कामायनी में आशीर्वाद, मंगलाचरण तथा वस्तु के निर्देश की योजना नहीं की गई है। लेकिन चिंता सर्ग के पहले वस्तु निर्देश के रूप में हिमालय का वर्णन किया गया है। काम और मोक्ष का विशेष रूप से बड़ा अर्थ और धर्म का सामान्य रूप से ग्रहण हुआ है। काव्य को मोक्ष प्रधान ही माना जायेगा। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार वर्गों में एक की प्राप्ति, महाकाव्य के अनिवार्य लक्षणों में से एक है। कामायनी इस दृष्टि से पूर्ण है। ऋतुएँ, सूर्य, चन्द्रोदय, मधुपान आदि वर्णनीय विषयों का बडा मार्मिक वर्णन मिलता है।

6.3.3. धीरोदत्त नायक

भारतीय महाकाव्य के लक्षणों के अनुसार महाकाव्य का नायक धीरोदत्त होना आवश्यक है। कामायनी महाकाव्य के नायक मनु है। वे देव पुरुष है। उच्चवंश के हैं। परन्तु वह धीरोदत्त नहीं है। प्रसाद ने नायक मनु को मानव रूप में दर्शाया है। मनु में मानवीय शक्ति और दुर्बलताएँ दोनों विद्यमान हैं। पहले मानव दुर्बलताओं को मनु में चित्रण किया फिर बाद में उन्हें ऊपर उठाया है। वे दुर्बलताओं पर विजय प्राप्त करते हैं। श्रद्धा की सहायता से मनु अंत में आनंद भूमि तक पहुँचते हैं। नायक मनु में जातीय गुण विद्यमान है। कामायनी नायक प्रधान महाकाव्य न होकर नायिका प्रधान महाकाव्य है। एक और मनु में जहाँ निर्बलता और सबलता दोनों विद्यमान है वहीं श्रद्धा में मात्र उच्चगुणों का समावेश है। श्रद्धा में नायिका के समस्त गुण विद्यमान है 'वह दया, माया, ममता, मधुरिमा और अगाध विश्वास की प्रतिमूर्ति है। उसमें प्रारम्भ से अन्त तक सभी गुण रहते है।

6.3.4. प्रकृति-चित्रण

प्रसाद जी ने प्रकृति को एक शक्ति के रूप माना है, उसे खुले नेत्रों से बड़ी आत्मीयता के साथ देता है। वे इसके बीच हँसते-खेलते हुए पाए जाते हैं। कामायनी में प्रकृति चित्रण के सारे रूप पाए जाते हैं। परन्तु प्रसाद ने प्रायः प्रकृति के उद्दीपन रूप का चित्रण किया। कामायनी में वन, निर्झर, नदी, पर्वत आदि अनेक प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन है साथ ही एक महाकाव्य के लिए अपेक्षित सभी प्रकार के चित्र सुलभ हैं। प्रसाद के प्रकृति-चित्रण की सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि उन्होंने उसे मानवीय चेतना मे युक्त कर दिया है। शैव दर्शन के प्रभाव से उन्होंने प्रकृति में एक चेतन तत्व माना है। प्रसाद ने प्रकृति चित्रण में प्रकृति वर्णन के साथ वस्तुओं की गणना और उनका संश्लिष्ट चित्र अंकित किया है। उनकी दृष्टि में प्रकृति के अन्तर्गत एक ऐसी चेतना सम्पन्न विशद सत्ता विराजमान है। जिसके उदर में वन, गिरि, नदी, निर्झर सभी समाये हुए हैं, जो समयानुकूल परिवर्तनों द्वारा अद्भुत और आश्चर्य जनक, अलौकिक आनंद प्रदान करती है।

6.3.5. भाव और रस

कामायनी में सभी रसों का वर्णन मिलता है। इसका प्रधान इस श्रृंगार है साथ ही शान्त रस से लेकर सभी रसों का अद्भुत वर्णन मिलता है। महाकाव्य होने के कारण कामायनी में जीवन की विविध दशाओं का वर्णन और उसके परिणामस्वरूप नाना रसों की अभिव्यंजना हुई है।

श्रृंगार रस को रसराज कहा जाता है। इसके दो भेद संयोग और वियोग श्रृंगार इस को कामायनी में नायक-नायिका के माध्यम से प्रसाद जी ने श्रृंगार रस का वर्णन किया।

संयोग श्रृंगार का एक उदाहरण -

मनु निरसने लगे ज्यों ज्यों यामिनी का रूपा।

वह अनन्त प्रगाढ़ छाया फैलती अपरूप ॥

वात चक्र समान कुछ था बाँधता आवेश

धैर्य का कुछ भी न मनु के हृदय में था लेश ॥

यहाँ पर श्रद्धा आलम्बन विभाव है। ज्योत्स्नापूर्ण रात्रि तथा श्रद्धा का सौंदर्य उद्दीपन है। चिनगारियाँ छूटना, हृदय में मधुर ज्वाला धधकना, मनु का हताश, विकल तथा अधीर होना अनुभाव है। आवेग, चंचलता, उग्रता आदि संचारी भाव है और इन सबसे पुष्ट रतिस्थायी भाव है। मनु ने कामायनी के ऋषभ को मार कर यज्ञ किया जिसके कारण वह रूठ जाती है और मनु उसे वहाँ मनाने के लिए वहाँ पहुंचने हैं, जहाँ वह स्नेहजन्य अमर्ष से भरी हुई मृग-धर्म पर पडी हुई हैं। उसके हृदय - गगन में मधुर विरक्ति, भरी आकुलता थी, जिससे उसके असहाय नयन कभी खुलते थे और कभी बन्द हो जाते और स्नेह का पात्र कुटिल कटुता में सामने ही खड़ा रहता है-

मधुर विरक्ति भरी आकुलता, घिरती हृदय-गगन में,

अन्तर्वाहि स्नेह का तब भी होता था उस मन में।

यहाँ पर मनु आलम्बन विभाव है, पशु-वध उद्दीपन विभाव है। दुखी लौट आना, मन में बिलखना, आकुल होना, मन में स्नेह का अन्तर्वाह होना अनुभाव हैं। अमर्ष, आवेग तथा विषाद आदि संचारी भाव है और इन सब से पुष्ट रति स्थायीभाव है क्यों कि यह प्रणायमान हैं।

श्रृंगार रस के बाद वीर रस का भी कामायनी में वर्णन किया है। संघर्ष सर्ग में वीर-रस का सुन्दर परिपाक हुआ है। मनु से असुर पुरोहितों का जब उत्पात होता है तो मनु आकुलि-किलत को कायर करते हुए उनको ललकारते है-

कायर तुम दोनों ने ही उत्पात मचाया,

अरे समझकर जिनको अपना था अपनाया,

लो फिर आओ देखो कैसे होती है बलि,

रण यह यज्ञ पुरोहित ओकिलात ओ आकुलि ॥

संघर्ष सर्ग के ही अन्तर्गत रौद्र रख की भी अभिव्यंजना हुई है। मनु का दैवी शक्तियों एवं प्रजाजनों के साथ युद्ध होता है। अन्धड़ बढ़ रहा था 'प्रजा दल झुंझला रहा था और रण वर्षा में विद्युत सदृश, चमक रहा था। किन्तु क्रूर मनु उनका वारणा करते हुए निरन्तर आगे बढ़ते ही जा रहे थे –

अधड़ का बढ़ रहा प्रजा-दल सा झुंझलाता,

रण वर्षा में शस्त्रों का बिजली चमकता।

भयानक इस का वर्णन सम्पूर्ण कामायनी में प्रायः तीनों कामायनी के प्रलय वर्णन में, युद्ध वर्णन में तथा रहस्य सर्ग में। मनु के आचरण को देखकर प्राकृतिक शक्तियाँ अचानक क्षुब्ध हो इसी-

प्रकृति त्रस्त थी भूतनाथ ने नृत्य विकम्पित पद अफला,

उधर उठाय भूत सृष्टि सब होने जाती थी सपना।

आश्रय पाने की सब व्याकुल स्वयं अनु अदिग्ध,

फिर कुछ होगा यही समझकर वसुधा का घर कंचन॥

करुण रस का वर्णन चिन्ता सर्ग में ही हुआ है। मनु देव संस्कृति के विध्वंस पर चिन्ताशील एवं शोकुल दृष्टिगोचर होती है। प्रकृति दुर्जिय ही रही। हम सब मद में भूले हुए थे, इसी कारण पराजित हो गये और उनका सारा वैभव नष्ट हो गया-

प्रकृति रही दुर्जेय, पराजित हम सब थे भूले मद में,

भोले थे, हाँ तिरते केवल सब विलासिता के बद में।

अद्भुत रस का वर्णन दर्शन सर्ग में हुआ है। मनु तपस्या से निरत है और ऐसी अवस्था में ही मनु भूतनाथ के अलौकिक तांडव नृत्य का ही दर्शन करते हैं।

देखा मनु ने नर्तित नरेश, हत चेत, प्रकार उठे विशेष,

यह क्या श्रद्धे। बस तू ले चल, उन चरणों तक, दे निज सम्वत॥

बीभस्त रस की व्यंजना कर्म सर्ग में हुई है। मनु द्वारा किया गया पशु-यज्ञ समाप्त हो चुका था। यज्ञ की ज्वाला धधक रही थी। दृश्य बड़ा दारुण था। रुधिर के छींटे और अस्थि खंड की मला इधर- उधर पड़ी हुई थी। पशु की कालर वाणी यहाँ पर गूंज रही थी। जिसके कारण वहाँ पर एक और ही प्रकार के वातावरण का निर्माण हो रहा था-

यज्ञ समाप्त हो चुका तो भाई धधक रही थी ज्वाला।

दारुण दृश्य ! रुधिर के छाँटि अस्थि खंड की माला॥

वात्सल्य रस की व्यंजना श्रद्धा - कुमार के प्रसंग में मिलती है। श्रद्धा विरह-व्यथिता हैं किन्तु जैसे ही वह अपने पुत्र मानव की किलकारी सुनती है तो हृदयस्थ समस्त उद्वेग जनित भावों को वह भूल जाती है, बालक की सूनी

किलकारी से सारी कुटियां गूंज उठती है, माँ द्विगुणित उत्कंठा के साथ उठकर दौड़ती है और धूल-धूसरित बालक की बाँहें पकड़े उससे लिपट जाती है।

माँ-फिर एक क्लिक दुरागत गूंज उठी कुटिया सूनी,

माँ उठ दौड़ी भरे हृदय में लेकर उत्कंठा दूजी;

शान्त रस की अभिव्यक्ति कामायनी के अन्तिम चार सर्गों - निर्वेद, दर्शन, रहस्थ, आनन्द में हुई है। निर्वेद सर्ग में मनु संसार से विरक्त हो जाती हैं। दर्शन सर्ग में मनु को नटराज शिव के दर्शन होते हैं। रहस्य सर्ग में मनु को त्रिपुर का क्रमश: ज्ञान कराया जाता है जिसके द्वारा संसार की वास्तविकता का पता चलता है तथा आनंद सर्ग में तत्व ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है। संसार के समस्यता के सिद्धांत को समझ जाते हैं। निर्वेद सर्ग में बैठे हुए मनु सोचते हैं कि क्या जीवन सुख है? नहीं यह तो एक विकट पटेली है। अतः हे मनु इस इन्द्रजाल से भाग। पता नहीं कितनी व्यथा को सहन करना होगा।

सोच रहे थे, जीवन सुख है? जा यह विकट पहेली है,

भाग अरे मनु ! इन्द्रजाल से, कितनी व्यथा न झेली है?

कामायनी में हास्य रस का विवेचन नहीं हुआ है, उनका संभवतः कारण की गम्भीरता तथा चिन्तनशील स्वभाव का होना है। इसके साथ ही एक बात और भी है कि आदिमानव मनु की कथा एक गम्भीर वातावरण में चलती है, जिसके कारण इस रस को स्थान देना उचित न था। शेष सभी रसों का पूर्ण परिपाक हुआ है। मनु द्वारा पाक यज्ञ, मैत्रावरुण, यज्ञ के अनुष्ठान में पुरानी यात्रिक संस्कृति के अनुसार धर्म प्राप्ति है। श्रद्धा और मनु के प्रणय- बन्धन व कामव्यापार में काम की इड़ा सर्ग से लेकर संघर्ष तक अर्थ की और शेष में मोल की योजना है।

विद्वानों ने महाकाव्य के तीन भेद माने है - चरित्र प्रधान, वर्णन प्रधान और घटना प्रधान। परंतु कामायनी इन तीनों प्रकार के महाकाव्यों से भिन्न है। यह भाव-प्रधान महाकाव्य है। जिसका कारण यही है कि इसमें कवि की दृष्टि न तो चरित्र पर ही विशेष रूप से केन्द्रित रही है, और न वर्णनों की विविधता अथवा घटनाओं की योजना पर, वरन वह विशेष रूप से भावों की तीव्रता को ही प्रदर्शित करने में प्रयत्नशील रही है। मन का संबंध- हृदय और बुद्धि, दोनों से है। वह कभी - बुद्धि के प्रभाव में चला जाता है और कभी हृदय की सत्ता में आ जाता है। इसी के अनुसार ही वह सुख भी भोगता है। इसीलिए हमें कामायनी में हृदय में उठते हुए विविध प्रकार के भावों का बड़ा सुन्दर चित्रण दिखाई पड़ता है। कामायनी की रचना के मूल में आज के मानव का करुणानंद निहित है और इसी कारण उसमें विविध भावों का संघर्ष और उथल पुथल भी दिखाई पड़ती है। आज का मानव बुद्धिवाद की 'अति' कर रहा है। वह भाँति-भाँति की विनाशकारी लीलाओं में लीन है। प्रसाद जी मानव मन का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत कर मानव सभ्यता के साथ-साथ मानवता की अवनति का चित्र प्रस्तुत कर मानवाला के उद्धार तथा मानव के लिहा आवश्यक उदात्त वृत्तियों से परिचित करते हैं। कामायनी अन्तरपक्ष और बहिःर्पक्ष दोनों कामायनी की विशेषता है।

6.4. सारांश

किसी भी काव्य का साहित्यकार काव्य के लक्षणों के अनुसार सृजन करता है। कामायनी छायावाद धारा का ही नहीं बल्कि संपूर्ण साहित्य धाराओं के प्रमुख महाकाव्य है। इसकी प्रतीक पद्धति वस्तु विश्लेषण प्रसाद जी के

काव्य कौशल को दिखाता है। इस में मन का विवेचन, भावों का विवेचन कथा को आगे बढ़ाते हैं। कामायनी महाकाव्य प्राचीन शास्त्रीय रूढ़ियों से बँधा हुआ नहीं है। इसमें भारतीय तथा पाश्चात्य दोनों ही काव्य दृष्टियों का स्पस्विष्ट विधान के अनुसार एक अभिनव प्रयोग किया गया है। इसमें भौतिक घटनाओं का विकास नहीं हुआ है। मानव चेतना के विकास को लेकर चलने के कारण, भौतिक धरातल पर घटित होने वाली घटनाओं की संकुलता नहीं है। डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना के अनुसार "कहने की आवश्यकता नहीं है कि इस - अहाकाव्य में अधिक विस्तार न होते हुए भी अपनी लघु सीमा में ही मानवता के समग्र रूप, उसकी समस्याओं एवं उसके समाधानों को एक उत्कृष्ट एवं भव्य साहित्यिक शैली में चित्रित करने का जो प्रयत्न हुआ है, वह सर्वथा सराहनीय है, और इन सभी विशेषताओं के आधार पर 'कामायनी' को आधुनिक युग का एक प्रतिनिधि महाकाव्य कहा जा सकता है।"

6.5. बोध प्रश्न

1. कामायनी में दर्शाया गया प्रतीक पद्धति पर सारगर्भित लेख लिखिए।
2. मनु, श्रद्धा, इड़ा किसके प्रतीक है- कामायनी काव्य के आधार पर विस्तृत चर्चा कीजिए।
3. कामायनी के 'महाकाव्यत्व' को महाकाव्य के लक्षणों के साथ विवेचन कीजिए।
4. संस्कृत और पाश्चात्य महाकाव्य के लक्षणों के साथ कामायनी महाकाव्य की तुलना करते हुए सोदाहरण चर्चा कीजिए।

6.6. सहायक ग्रंथ

1. कामायनी - जयशंकर प्रसाद।
2. कामायनी का प्रवृत्ति - मूलक अध्ययन प्रसाद सिंह, डॉ. कामेश्वर।
3. कामायनी एक पुनर्विचार - गजानन माधव मुक्तिबोध
4. हिंदी साहित्य- 20वीं शताब्दीः आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी।
5. छायावादः पुनर्मूल्यांकनः सुमित्रानन्दन पन्त।
6. छायावाद युगः शंभुनाथ सिंह, सरस्वती मंदिर, वाराणसी; 1962 छायावाद के गौरव चिह्नः प्रो. क्षेमेन्द्र।
7. छायावादी कवियों का सौन्दर्य विधानः डॉ. सूर्यप्रसाद दीक्षित।
8. छायावादी काव्यः डॉ. कृष्ण चन्द्र वर्मा; मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, म.प्र.।

- डॉ. एम. मंजुला

7. निराला जीवन : काव्य गत विशेषताएँ

7.0. उद्देश्य

इस इकाई में छायावाद के प्रमुख कवि सूर्यकांत त्रिपाठी निराला के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे । इस इकाई को पढ़ने के बाद -

- सूर्यकांत त्रिपाठी निराला के जीवन, व्यक्तित्व के बारे में जान पायेंगे।
- निराला की काव्यगत विशेषताओं के बारे में जान पायेंगे।
- निराला की प्रमुख काव्य कृतियों के बारे में जान पायेंगे।

रूपरेखा

7.1. प्रस्तावना

7.2. निराला का जीवन- व्यक्तित्व

7. 3. निराला की काव्य गत विशेषताएँ

7.3.1. वस्तुगत विशिष्टता

7.3.2. शिल्प गत विशिष्टता

7.4. निराला की प्रमुख काव्य कृतियाँ

7.5. निराला के काव्य में क्रांति चेतना

7.6. सुरोजस्मृति -शोक गीत

7.6.1. संदर्भ सहित व्याख्या

7.7. कुकुरमुत्ता

7.8. सारांश

7.9. बोध प्रश्न

7.10. सहायक ग्रंथ

7.1.प्रस्तावना

निराला जी बहुमुखी प्रतिभा के साहित्यकार थे । कविता के अतिरिक्त इन्होंने उपन्यास, कहानियाँ, निबन्ध, आलोचना और संस्मरण भी लिखे हैं। पर निराला जी मूलतः कवि थे और छायावाद के प्रवर्तकों में इनका स्थान अन्यतम है। निराला की कविताओं में विषय वस्तु और भाषा शैली की दृष्टि से पर्याप्त विविधता दिखलाई पड़ती है। श्रृंगार, प्रेम, रहस्यवाद, राष्ट्रप्रेम, सांस्कृतिक चेतना और प्रकृति चित्रण के अतिरिक्त इनकी कविताओं में शोषण के विरुद्ध विद्रोह का स्वर मुखर हुआ है। निराला पौरुष और विद्रोह के कवि है। काव्य में उदात्तता और ओज है, प्रवाह और गाम्भीर्भ है।

7.2. जीवन और व्यक्तित्व

निराला जी का जन्म सन् 1886 ई. में प. रामसहाय त्रिपाठी के घर हुआ था। बंगाल के महिषादल में निवास के कारण प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा बंगला में हुआ था। इसलिए बंगला भाषा व साहित्य का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया। साथ ही उन्होंने संगीत का भी पर्याप्त ज्ञान अर्जित किया। रामकृष्ण मिशन के सम्पर्क में उन्होंने भारतीय दर्शन वेदान्त का भी गहन अध्ययन किया। इस प्रकार निराला के काव्य में अनुभूति, संगीत व दर्शन की जो त्रिवेणी दिखलाई पड़ती है उसकी नींव बंगभूमि में ही पड़ी। संस्कृत व बंगला के ज्ञान, वेदान्त व भारतीय दर्शन के अध्ययन, संगीत की साधना व जीवन के संघर्षों ने निराला के काव्य को अपूर्व दीप्ति प्रदान की।

सूर्यकान्त जिस स्कूल में पढ़ते थे, वहाँ अंग्रेजी, बंगला तथा संस्कृत की तो नियमित शिक्षा दी जाती थी, परन्तु हिन्दी के अध्ययन की कोई व्यवस्था नहीं थी। परन्तु हिन्दी के प्रति इनमें सहज-स्वाभाविक आकर्षण था। वह अपने पिताजी के मित्रों के साथ बैठ कर श्रीराम चरित मानस और ब्रज विलास पढ़ा करते थे और अपने खुरीले कण्ठ से गायक सबको मुग्ध किया करते थे। इस तरह इनका हिन्दी का ज्ञान धीरे-धीरे बढ़ता गया। निराला जी ने अपने स्कूली जीवन में कविता लिखना आरम्भ किया। नवीं कक्षा में ही उन्होंने अवधी और ब्रज भाषा में पद लिखने लगे थे। चौदह वर्ष की अवस्था तक निराला जी संस्कृत में भी पद लिखने लगे थे।

निराला जी का विवाह 13 वर्ष की अल्प आयु में ही हुआ था। इनकी पत्नी श्रीमती मनोहरा देवी बडी सुन्दर और विदुषी थी। हिन्दी में लिखने की प्रेरणा कवि को अपनी पत्नी से ही मिली। श्रीमती मनोहरा देवी की अकाल मृत्यु से [सन् 1917] कवि के मन को गहरा आघात लगा। उन्होंने महिषादल राज्य की नौकरी छोड़ दी। इसके बाद क्रमशः निराला जी एक देदीप्यमान नक्षत्र के समान हिन्दी के साहित्य के जगत में अवतरित हुए। 'मतवाला' और 'समन्वय' जैसी पत्रिकाओं में उनके साहित्यिक जीवन का निर्माण किया।

निराला जी बहुमुखी प्रतिभा के साहित्यकार थे। उन्होंने कविता, कहानी, उपन्यास, निबंध, आलोचनात्मक लेख, रेखा-चित्र जीवनी, अनुवाद आदि द्वारा हिन्दी साहित्य के भण्डार को समृद्ध किया। निराला के काव्य में उनकी व्यक्तित्व झलकती थी। जैसा अनूठा व बहुआयामी निराला का व्यक्तित्व था, वैसा ही विविधता पूर्ण निराला जी का काव्य है। एक ओर उनके व्यक्तित्व में विद्रोह व स्वाभिमान भरा था तो दूसरी ओर गहरी सहानुभूति व करुणा से उनका हृदय ओत-प्रेत था। उनकी पत्नी की मृत्यु से निराला विक्षिप्त - से हो गये। वे घंटों शमशान में बैठे रहते। 'जूही की कला' कविता की प्रेरणा इन्हें शमशान भूमि में ही मिले। गरीबों, मजदूरों, किसानों, शोषितों, तथा समाज द्वारा उपेक्षिता नारियों के प्रति निराला के हृदय में गहरी समवेदना थी। 'भिक्षुक', 'वह तोड़ती पत्थर', 'विधवा', 'बादल राग' आदि कविताएँ इस बात की साक्षी हैं। निराला के व्यक्तित्व में सन्त कवियों की भी मस्ती, फक्कडपन, विप्लवी भाव, विरोधियों के प्रति उपेक्षा, गहरा स्वाभिमान, प्रियतम के प्रति रागात्मक व्याकुलता व गहन दार्शनिकता जैसी अनेक बातों का समावेश श्वतः हो गया था। यह संघर्ष एक ओर सामाजिक रुदियों तथो अन्यायों के विरुद्ध रहा तो दूसरी ओर साहित्य में एक नवीन धारा के प्रवर्तन व प्रतिष्ठापन के रूप में रहा। इस प्रकार निराला के संघर्षशील संवेदनशील- कलात्मक दार्शनिक विद्रोही व्यक्तित्व में ही उनके कृतित्व का निर्माण हुआ था।

अंतः निराला काव्य की प्रमुख विशेषताओं को समझने जानने के लिए उनके व्यक्तित्व को भी समझना आवश्यक है। वास्तव में निराला के समग्र काव्य में 'राग तत्व' अर्थात् जीवन से जुड़ने की प्रवृत्ति व अमृत तत्व एक ओर तोड़, दूसरी ओर सारे जगत् आकर्षणों के प्रति वैराग्य भाव अर्थात् विराग तत्व के दर्शन होते हैं। निराला का सारा काव्य पार्थिव है, जागतिक है; मानवीय करुणा व संवेदनाओं से ओत-प्रोत हैं। कवि के जीवन की अमृत-विष मयी स्वानुभूतियों की मनोरम अभिव्यंजना है। निराला काव्य को उनका विद्रोह, ओजस्विता, अभिव्यक्ति की

ताजगी व नवीनता, चिंतन की गहनता व वाणी की उदात्तता अप्रतिम बना देती है। एक और उनके काव्य में उनका व्यक्तित्व छाया हुआ है तो दूसरी ओर उनकी तटस्थता व निर्वेयक्तिकता उनके काव्य को जीवन्त बना देती हैं।

7.3. निराला काव्य गत विशेषताएँ

निराला काव्य की विशेषताओं को दो प्रकार से देखी जा सकती है।

7.3.1. वस्तुगत विशेषताएँ

निराला का समय स्वतंत्रता संग्राम का युग था। नव-जागरण और नवीन राष्ट्रीय चेतना के प्रसार का युग था। शताब्दियों से गुलामी में रही भारत की आत्मा उठ खड़ी है होकर स्वतंत्रता संग्राम की ओर आकर्षित हुई थी। इस राष्ट्रीय चेतना व सांस्कृतिक पुनरुत्थान की प्रतिध्वनि तत्कालीन साहित्य में भी सुनाई पड़ रही थी। भारतवासी अपनी संस्कृति, सभ्यता और इतिहास को गर्व के साथ देखने लगे थे। राष्ट्र का सोया हुआ पौरुष और सोया हुआ स्वाभिमान जाग उठा था। निगला जी की काव्य रचना का समय भी सन् 1916 से सन् 1960 तक माना जाता है। इस समय हिन्दी साहित्य जगत के दिग्गज कवि भारतेंद्र और द्विवेदी के सामने खड़े थे वही दूसरी ओर निराला जी ने तीनों वाद छायावाद, प्रगतिवाद, तथा प्रयोगवाद के रचनाकार के रूप में खड़े हुए थे। अतः निराला के काव्य में लगभग अर्थ शताब्दी की काव्य प्रवृत्तियाँ दृष्टिगोचर होती हैं।

निराला की काव्यगत विशेषताओं में पहले इनको नवजागरण कवि के रूप में देखते है। भारत का राष्ट्रीय, आध्यात्मिक व सांस्कृतिक नवजागरण निराला जी की कविता में पूर्णतः अभिव्यक्त हुआ है। डॉ. भटनागर के शब्दों में "निराला हमारे नवजागरण के कवि है। वस्तुतः नवजागरण के कवि होने के नाते ही उनके काव्य में स्वच्छन्दतावादी और मानववादी आयाम स्वतः आ जाते हैं।" नवजागरण में कोई भी राष्ट्र प्राचीन से प्रेरणा ग्रहण करता है, अपने की राष्ट्र की आत्मा से साक्षात्कार करता है तथा भविष्य के प्रति आस्थावान बनता है। थे सारे तत्व निराला काव्य में देखे जा सकते हैं।

निराला की काव्यगत विशेषताओं में राष्ट्रीयता प्रधान विशेषता है। भारतीय स्वाधीनता संग्राम की चेतना के विस्तार के साथ ही भारतीयों में संकुचित क्षेत्रीय वृत्ति के बदले क्रमशः विशद- व्यापक राष्ट्रीय भावना का प्रसार हुआ। राष्ट्रीयता सम्भवतः ही इतिहास, धर्म, संस्कृति व प्राकृतिक, वैभव से जुड़ गई। भारतवासियों ने अपने खोये हुए व्यक्तित्व को पुनः खोजने का प्रयास किया। निराला के काव्य के राष्ट्रीयता के भाव प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष दोनों रूपों में व्यक्त हुए हैं। आध्यात्मिकता निराला काव्य का प्राण है। निर्गुण, सगुण काव्य ढंगों से लेकर विनय-पद जैसी रचनाओं में भी निकाला का आध्यात्मिक भाव देखने को मिलती हैं। ज्ञानमार्गी और सगुण सन्तों की परम्परा निराला के खडीबोली के काव्य में सिमट आई है। आध्यात्मिकता में अहं का विसर्जन होता है और आत्म तत्व, परमतत्व या ब्रह्म के साथ एकात्मकता की अनुभूति करता है। इसमें व्यक्ति भौतिक जीवन की जड़ता से ऊपर उठकर चैतन्य जगत् में पहुँच जाता है। निराला के 'परिमल', और 'गीतकाव्य', 'अर्चना', 'आराधना' और गीत गुंज में भक्ति पूर्ण आध्यात्मिकता का स्वर दिखते है तो 'राम की शक्ति पूजा' में तो आध्यात्मिक साधना के सोपानों और आत्मा के आरोह का स्पष्ट चित्रण देखने को मिलता है। निराला काव्य का प्रमुख तब उनकी आध्यात्मिकता और दार्शनिकता है।

निराला के काव्य में 'दर्शन' एक आधारभूत विशेषता है। निराला को दार्शनिक कवि कहा गया है। उनकी प्रचण्ड बौद्धिकता व व्यापक अनुभूति का आधार दर्शन - शास्त्र का गम्भीर अध्ययन ही है। उन्होंने केवल दार्शनिक सिद्धांतों का वर्णन या व्याख्यान मात्र नहीं किया है, इन्हें 'रूपकों' व 'प्रतीकों' में ढालकर गंभीर दार्शनिक निष्कर्षों को भी सुंदर-सरस काव्य रूप में परिणत कर दिया है। निराला के काव्य में हर जगह रहस्यवाद

की अभिव्यक्ति पाई जाती है। इनके काव्य में रहस्यवाद के सभी प्रकार के देखे जा सकते हैं। निराला की चिन्तन पद्धति अद्वैतवादी थी। पर निराला का अद्वैतवाद सक्रिय व संघर्षशील अद्वैतवाद है। निराला का ईश्वरीय प्रेम मानव- प्रेम व सहानुभूति की दृढ़ आधार शिला पर खडा था, अन्याय का प्रतिरोध करने में वे विश्वास रखते थे। इनका दर्शन निष्क्रिय वैयक्तिक सुख-दुखों की अभिव्यक्ति मात्र न होकर समिष्टगत संघर्ष की भूमिका में निहित है।

निराला छायावाद कवि थे। छायावादी कवियों में सर्वाधिक समाजोन्मुखी कवि निराला ही थे। सामाजिक चेतना निराला काव्य की एक और विशेषता है। समाज में व्याप्त अन्याय, अनाचार, अत्याचार, मूढं अन्ध-विश्वासों तथा समानवीय कृत्यों के प्रति निराला ने अपने जीवन और काव्य - दोनों में सर्वत्र शेष व्यक्त किया। समान्तवादी, हृदयहीनता, धन लिप्सा, गरीबों व किसानों की उपेक्षा, नारी पर किये जा रहे अत्याचारों आदि का उन्होंने डटकर विरोध किया। निराला मानव जीवन के कवि है। स्वीकार और संघर्ष के कवि है, प्रत्युत मानवीय करुणा और सहानुभूति के कवि है। यह गहन सहानुभूति सामाजिक यथार्थ के साक्षात्कार से उत्पन्न हुई हैं। परिमल, भिक्षुक, विधवा, दान, वह तोड़ती पत्थर आदि सभी इनकी सामाजिक चेतना काव्यों के उदाहरण हैं। निराला के गद्य में सामाजिक यथार्थ और भी अधिक विशदता के साथ मुखर हुआ।

विद्रोह एवं स्वच्छन्दता निराले काव्य की एक और वस्तुगत विशेषता है। वस्तुतः निराला विद्रोह और स्वच्छन्दता के कवि है। परंपरा के विरुद्ध यद्यपि छायावाद का मूल स्वर रहा पर निराला तो स्वभावतः विद्रोही थे। निराला की बादल राग कविता में बंगला के विप्लवी कवि नज़रूल इस्लाम की तरह विद्रोह व विप्लव का राग सुनाई पड़ता है। इसी कविता में क्रांतिकारी व्यंजना मुखरित हुई है। निराला जी ने स्त्री को सौंदर्य के रूप में सामाजिक और पारिवारिक रूप में भी चित्रित किया। समाज द्वारा उपेक्षित प्रताडित नारी की पीड़ा को उन्होंने अपनी कविताओं में व्यक्त किया। निराला जी ने स्वाधीनता और सामाजिक परिवर्तन के पक्ष में क्रान्तिकारी चेतना का आह्वान किया। उनकी क्रांति व्यापक था और प्रेमचंद की तरह हिन्दी में नई क्रान्तिकारी चेतना के अग्रदूत निराला थे। यह क्रान्तिकारी चेतना केवल ब्रिटिश पराधीनता से मुक्त लाभ ही नहीं चाहती थी, प्रत्युत व्यापक सामाजिक परिवर्तनों के लिए तत्पर थी।

निराला जी जाति प्रथा, धार्मिक भेद-भाव, ऊँच-नीच और छुआ -छूत के तीव्र विरोधी थे। वस्तुतः निराला के विद्रोह के पीछे उनकी गहन मानवीय सहानुभूति ही व्यक्त हुई है।

7.3.2. शिल्पगत विशेषताएँ

छायावादी कवियों ने शिल्प के क्षेत्र में अपनी विशिष्ट स्थान रखते हैं। पन्त और निराला दोनों ने प्रारंभिक खड़ी बोली के स्वरूप को निखारा। भाषा की अभिव्यंजना शक्ति का विस्तार किया। निराला काव्य की शिल्पगत विशेषताओं को नवीन भाषा-शब्द-विधान, संगीतात्मकता, लाक्षणिकता, अलंकारिकता, प्रतीकात्मकता तथा लयात्मकता के रूपों में देख सकते हैं। निराला ने काव्य बिम्बों का बड़ा ही सशक्त प्रयोग किया है। निराला के बिम्ब मात्र अन्तकरण ही नहीं, प्रत्युत वे काव्यार्थ व भाव संवेदना के संवाहक हैं। निराला के बिम्ब विधान चित्रात्मक व स्पौन्दर्यात्मकता के साथ-साथ विचार तत्व को भी अभिव्यंजित करते हैं। राम की शक्ति पूजा में निराला की बिम्ब विधान को देख सकते हैं। निराला जैसा बिम्ब विधान कम कवियों में देख सकते हैं। ये बिम्ब कहीं-कहीं रूप, रस- गंध-शब्द - स्पर्श की एन्द्रिय बोध की सघनता को बढ़ाकर काव्य को पूर्णतः ग्राह्य बना देते हैं। बिम्ब अवसर प्रतीकों व रूपकों में बदल कर व्यापक अर्थ ग्रहण कर लेते हैं। बिम्ब, ध्वनि, लय, सम्वेदना व अर्थ इन सभी को निराला अपनी अद्भुत कल्पना शक्ति संयोजित कर एकाकार कर देते हैं। इस प्रकार निराला का काव्य अपनी वस्तुगत व शिल्पगत विशेषताओं के कारण छायावादी काव्य में ही नहीं समग्र हिन्दी साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखता है।

7.4. निराला की प्रमुख काव्य कृतियाँ

निराला का साहित्य बहुमुखी और विपुल है। उन्होंने कविता, उपन्यास, कहाँनियाँ, निबन्ध, रेखाचित्र जीवनियाँ, आलोचनात्मक निबन्ध अनुवाद तथा नाटक सभी कुछ लिखे है।

निराला के कविता संग्रह – अनामिका (भाग-1, 2), परिमल, गीतिका, कुकुरमुत्ता, अणिमा, बेला, नये पत्ते, अपरा, आराधना, अर्चना, श्री रामचरित मानस का खड़ी बोली में रूपान्तरण।

खण्डकाव्य- तुलसीदास।

उपन्यास- अपरा, अलका, प्रभावती, निरूपमा, चोटी की, पकड़, काले कारनामे, अश्रृंखल, चमेली।

कहानी संग्रह - लिली, राखी, चतुरी, चमार, सुकुल की बीबी।

रेखाचित्र - कुल्ली भार और बिल्लेसुर बकरिहा।

निबंध संग्रह - प्रबन्ध पद्म, प्रबंन्ध प्रतिमा, चाबुक, प्रबन्ध परिचय।

आलोचनात्मक ग्रन्थ - रवींद्र कविता कानन।

अनुवाद - आनन्द मंठ, कपालकुण्डला, चन्द्रशेखर, दुर्गेशनन्दिनी, कृष्णकांत का बिल, युगलांगुलीय,
रजनी, देवी चौधरानी; राधारानी, विषवृक्ष, राजसिंह तथा महाभारत का हिन्दी अनुवाद।

जीवनियाँ - ध्रुव, भीष्म, राणाप्रताप।

नाटक - समाज, शकुन्तला, उषा अनिरुद्ध। (अप्रकाशित है)।

निराला के काव्य का प्रवृत्तिगत वर्गीकरण करना भी अनिवार्य है, क्योंकि निराला चारों बाद के प्रमुख कवियों में से एक है। अतः इनकी काव्यों का काव्यगत प्रवृत्तियों के आधार पर चार वर्गों के अन्तर्गत विभाजित किया जा सकता है।

- **रहस्यवादी कविताएँ** –

रहस्यवाद की अभिव्यक्ति छायावाद की एक प्रमुख विशेषता है। छायावादी कवियों की भाँति निराला के काव्य में भी रहस्यवाद की प्रवृत्ति पर्याप्त रूप में दृष्टिगोचर होती है। इनके प्रत्येक काव्य संग्रह में रहस्यवादी कविताओं की संख्या पर्याप्त है।

- **छायावादी कविताएँ**

हिन्दी में छायावाद लाने का श्रेय चार कवियों को है- प्रसाद, पंत, महादेवी वर्मा और निराला। इस प्रकार निराला जी छायावाद के प्रमुख प्रवर्तक कवि है। छायावाद की प्रमुख विशेषता है -अन्तर्जगत का चित्रण, वेदना का अतिरेक, प्रेम और श्रृंगार का प्राचुर्य, नितान्त वैयक्तिकता, प्रकृति के प्रति नूतन दृष्टिकोण, रहस्य भावना, अभिनव अलंकार, नवीन धन्द विधान, प्रतीक विधान, लाक्षणिकता, विशेषण विपर्यय, गीतात्मकता तथा कोमलकान्त पदावली। इन सब लक्षणों को निराला के हर एक कृति में दर्शाए जा सकते हैं।

- **प्रगतिवादी कविताएँ**

जन जीवन की विषमताओं एवं समाज के उपोरित मनुष्यों को विषय बनाकर जिन कवियों ने प्रगति के गीत गाए, उनमें निराला जी प्रमुख थे। प्रगतिवाद वस्तुतः साम्यवाद का साहित्यिक उच्चार है। इसमें शोषित समाज के प्रति सहानुभूति एवं पूंजीपति वर्ग के प्रति आक्रोश एवं घृणा की अभिव्यक्ति की जाती है। अनामिका द्वितीय भाग के पश्चात् निराला जी प्रगतिवाद की ओर उन्मुख थे। निराला जी ने इस वर्ग की कई कविताएँ लिखीं। 'भिक्षुक' और 'विधवा' इस वर्ग की प्रतिनिधि रचनाएँ है।

- **प्रगतिवादी कविताएँ**

निराला जी की कुछ रचनाओं में प्रयोगवाद के अंकुर दृष्टिगोचर होते हैं। इनका प्रत्येक काव्य संग्रह स्वयं में एक प्रयोग है।

निराला के काव्य में युग की अभिव्यक्ति पाई जाती है और उनका कवि सदैव युग - भावना को वाणी देता रहा है कई आलोचकों ने तो यहाँ तक लिखा है कि 'निराला' ने जो कुछ लिखा है उसके अतिरिक्त कुछ भी ऐसा नहीं है जिसको' नया' कहा जा सके।

7.5. निराला के काव्य में क्रांति चेतना

निराला जी स्वभावतः रूढ़ि विरोधी एवं क्रान्तिकारी कवि थे। इनके प्रगतिवादी कविताओं में कृतियों में क्रांति चेतना का अंश दर्शाते है। इन्होंने अपने कृतियों में रूढ़ि का विरोध किया। अपनी संस्कृति का दम्भ करने वालों को ललकारते हुए कविताएं लिखे हैं। समाज में शोषित वर्ग के प्रति सहानुभूति दिखाकर प्रगतिवाद का प्रदर्शन किया है। भिक्षुक, तोड़ती पत्थर तथा विधवा ऐसे ही काव्य है। निराला जी पूंजीवादी के प्रति घृणा दिखाया है। अपनी पैनी दृष्टि से समाज के सच्चे रूप को देखा था और अपने गरीब जीवन में उसकी गरीबी को सहा था। उन्होंने 'सहस्त्राब्दि' में भारतीय समाज का बहुत ही सटीक विश्लेषण प्रस्तुत किया है। उन्होंने कई कविताओं में वर्तमान समाजिक शोषण का चित्र खींचते हुए यह दिखाया है कि संसार में विजयी कहलाने वाले लोग दूसरों का खून पीकर ही बड़े बनते हैं और इस विचारधारा के सन्दर्भ में उन्होंने पूँजीपतियों को बार-बार ललकारा है। समाज के शोषण का अन्त करने के लिए प्रगतिवादी कवि क्रांन्ति का आह्वान करता है। निराला अपनी इच्छा की पूर्ति के लिडा 'श्यामा' में प्रलयंकारी नृत्य का आह्वान करते हैं-

एक बार बस और नाच तू श्यामा।

सामान सभी तैयार,

कितने ही है असुर, चाहिए कितने तुमको हारा

कर मेखला मुंड मालाओं के बल मन - अभिराम

एक बार बस और नाच तू श्यामा।

7.6. सरोज स्मृति - शोक गीत

इस कविता का रचना काल सन् 1935 है। इसकी रचना निराला जी ने अपनी एक मात्र पुत्री सरोज की मृत्यु अवसर पर की थी। यह एक उच्चकोटी का शोक गीत है। सरोज की दुःख भरी जीवन गाथा इसका वर्ण्य विषय है। यह शोक गीत अपनी 18 वर्षीया पुत्र सरोज के निधन पर लिखी गई लंबी कविता है। इस कविता की प्रथम प्रकाशन 1938 में प्रकाशित अनामिका के संस्करण में हुआ। यह कविता किन परिस्थितियों में लिखी गई

है, इसका वर्णन डॉ. रामविलास वर्मा ने एक प्रत्यसदर्शी के रूप में करते हुए लिखा है- "एक दिन नीचे से पोस्टकार्ड उठाकर ऊपर वापस आये और इतना ही कह – 'सरोज नहीं रहीं'। दुःख से उनका चेहरा स्याह पड़ गया था। उसे सहन करने के प्रयास में वे कुछ देर तक कमरे में टहलते रहे। इसके बाद अचानक घर से निकल कर घूमने चले गए। दो दिन तक सरोज की कोई चर्चा नहीं हुई। इस बीच में उनका चित्त स्थिर हो गया। कविता में उस समय का दुःख ही नहीं, एक आलम्बन पाकर सोलह साल पहले की उसकी वेदना उमड़ आई।" जब सरोज केवल सवा साल की थी, तब उसकी माता स्वर्गवासिनी हुई।

कवि के संघर्षपूर्ण जीवन के साथ-साथ सरोज नानी की क्या छात्र छाया में बड़ी हुई। उसके भोले मुंह की ओर देखकर ही निराला ने दूसरा की चिन्ता विवाह नहीं किया। विवाह योग्य होने पर कवि ने समाज की चिन्ता न करके उसका विवाह पं. शिव शेश्वर द्विवेदी के साथ कर दिया। विवाह के कुछ समय उपरान्त सरोज भयंकर रूप से बीमार हुई और काल- कवलित हो गयी। आर्थिक सीमाओं के कारण निराला पुत्री की प्राण- रक्षा न कर सके - ऐसी उनकी धारणा रही। पुत्री की मृत्यु निराला को वेदना विश्वल बना दिया और उनकी वही सघन वेदना 'सरोज-स्मृति' के रूप में हिन्दी साहित्य को प्राप्त हुई। इस शोक गीत में कवि निराला अपनी पुत्री सरोज के बाल्यकाल से लेकर मृत्यु तक की घटनाओं को बड़े प्रभावशाली ढंग से अंकित किया है। इसमें सरोज की बाल्यावस्था एवं कौमारदशा को बड़े ही मार्मिक और पवित्र रूप में चित्रित किया है। इस लंबी कविता में एक भाग्यहीन पिता का मानसिक स्थिति, पुत्री के लिए कुछ न कर पाने वाले पिता का संघर्षमय जीवन का वर्णन किया गया है। इस कविता के माध्यम से निराला का जीवन-संघर्ष भी प्रकट हुआ है।

सरोज की मृत्यु के अघात ने निराला को तोड़ दिया। निराला स्वभावतः एक उद्धृत एवं उत्साही वीर थे। वह नियति को भी चुनौती देने वाले थे-

खण्डित करने को भाग्य अंक,

देखा भविष्य के प्रति अशंक॥

वे ही निराला पुत्री की मृत्यु के अवसर पर जर्जर हो उठे। उनका वेदना जर्जर हृदय पुकार उठता है—

दुख ही जीवन की कथा रही,

क्या कहूँ आज जो नहीं कहीं।

कविता का आरम्भ ही इस प्रकार होता है-

धन्ये, मैं पिता निरर्थक था,

कुछ भी तेरे हित कर न सका।

इस कविता में कवि उन समस्त संघर्षों का वर्णन कर देता है, जो उसने साहित्यिक के रूप में पग-पग पर झेले थे। कहने का अभिप्राय यह है कि इस कविता में कवि के अनेक कटु - तिक्त यथार्थ तथ्यों की अभिव्यक्ति हुई है। कवि निराला बिना जाने ही जीवन के एक कठोर सत्य की अभिव्यक्ति कर गए है कि - सन्तान के शोक से बढ़कर इस जीवन का कोई आघात नहीं हो सकता है। जिसको यह चोट न लगी हो, वह वीर धीर महाप्राण होने का दम्भ न करें। यदि सरोज की मृत्यु का आघात निराला को न लगा होता, तो वह कदाचित कहीं अधिक उदार एवं उदात्त कलावार होते। सिद्धांततः दार्शनिक होते हुए भी व्यवहार में वह अनात्मवादी बन गये; अन्यथा अर्थभाव को वह मृत्यु का हेतु क्यों कर मानते ?

इस कविता में करुणा और सहानुभूति का सन्देश मिलता है। इस कविता के माध्यम से निराला यथार्थ जीवन की एक कटु अनुभूति हमारे सम्मुख प्रस्तुत करते हैं। मस्तक झुकाकर अपने कर्म पर वज्रपात सहने के लिए तत्पर दिखाई देते हैं। शीत से भ्रष्ट होते हुए शतदल के समान वह अपने विफल कार्यों से कन्या का तर्पण करते हैं-

कन्ये, गत कर्मों का अर्पण,

कर करता मैं तेरा तर्पण।

यह एक ऐसा महानाटक है, जो पाठक के हृदय में करुणा और सहानुभूति का संचार करता है।

7.6.1. संदर्भ सहित वाक्य

1. देखा विवाह आमूल नवल,
तुझ पर शुभ पड़ा कलश को जल
देखती मुझे तू हँसी मंद,
होठों में बिजली फँसी स्पंद,
उर में भर झूली छवि सुंदर
प्रिय की अशब्द श्रृंगार - मुखर
तू खुली एक - उच्छवास संग
विश्वास - स्तब्ध बंध अंग-अंग
नत नयनों से आलोक उत्तर
काँपा अधरों पर थर-थर-थर।

संदर्भ -इस कवितांश को निराला जी के सरोज स्मृति नामक शोक गीत से दिया गया है। निराला जी अपनी एक लौति पुत्री का विवाह करके ससुराल भेजते है। कुछ ही दिनों में बीमारी के वजह से उसकी मृत्यु होती है। उस शोक से इन्होंने यह सरोज स्मृति कविता का सृजन किया था।

व्याख्या- कवि अपनी पुत्री की मृत्यु के समय उसको याद करते हुए कहते हैं- तेरा विवाह बिल्कुल नए रूप में मैंने देखा था। तुझ पर कलश का शुभ जल गिराया जा रहा था, तू उस समय मुझे देख कर रो रहे थे। तेरे होठों पर बिजली जैसी कंपन था। तेरे हृदय में प्रियतम की सुंदर छवि झूल रही थी। उसे अभिव्यक्त करना तेरे लिए संभव नहीं था। लेकिन वह तेरे श्रृंगार के माध्यम से अभिव्यक्त से रहा था। तेरे होंठ कांप रहे थे और तेरे झुके हुए नेत्रों से कांति फैल रहा था। शायद तेरी मां का अभाव तुझे दर्द दे रहा होगा।

विशेष - पुत्री के विवाह के समय उसकी मुँह, भाव अपनी भावों को याद करते हुए निराला ने सुंदर वर्णन प्रस्तुत किया है।

2. मुम भाग्यहीन की तू सेवल
युग वर्ष बाद जब हुई विकल
दुख ही जीवन की कथा रही
क्या क्यूँ आज, जो नहीं कहीं !

हो इसी कर्म पर वज्रपाल
यदि धर्म, रहे मत सदा माथ
इस पथ पर, मेरे कार्य सफल
हो भ्रष्ट शीत के- से शतदल।
कन्ये, गत कर्मों का अर्पण
कर, करता मैं तेरा तर्पण।

संदर्भ- इस कवितांश को निराला जी के सरोज स्मृति नामक शोक गीत से दिया गया है। निराला जी अपनी एक लौति पुत्री का विवाह करके ससुराल भेजते है। कुछ ही दिनों में बीमारी के वजह से उसकी मृत्यु होती है। उस शोक से इन्होंने यह सरोज स्मृति कविता का सृजन किया था।

व्याख्या - कवि निराला भावुक होकर कहते हैं कि हे पुत्री! तूं मेरे जैसे भाग्यरीन पिता का एकमात्र सहारा थी। दुख मेरे जीवन की कथा रही है जिसे मैने अब तक किसी से नहीं कहा, उसे अब आज क्या कहूँ। मुझ पर कितने वज्रपात हो अर्थात कितनी ही भयानक कष्ट आए, चाहे मेरे सारे कर्म उसी प्रकार भ्रष्ट हो जाए जैसे सर्दी की अधिकता के कारण कमल पुष्प नष्ट हो जाते हैं। अगर भाग्य मेरे साथ देते हैं तो इन कष्टों को मैं मस्तक झुकाकर स्वीकार लेता हूँ। मैं अपने रास्ते से नहीं हठूँगा। कवि अंत में कहता है कि बेटी मैं अपने बीते हुए समस्त शुभ कर्मों को तुझे अर्पित करते हुए तेरा तर्पण करता हूँ। मैं प्रभु से प्रार्थना करता हूँ कि मेरे द्वारा किए गए अच्छे कर्मों का फल तुझे मिल जाए।

विशेषता - पुत्री को खोए हुए पिता स्वर्ग में भी अपनी पुत्री की शुभ चिंतन करते हैं।

7.7. कुकुरमुत्ता

यह निराला जी से सन् 1942 में लिखी गई प्रगतिवादी कविता संग्रह है। यह व्यंग्य प्रधान कविताओं का संग्रह है। इसमें कुकुरमुत्ता दीन हीन जन का प्रतीक बनकर आया है। प्रगतिवादी विचारधारा ऐतिहासिक विकास का सूचक है। प्रगतिवादियों ने कार्ल माक्स के सिद्धांतों के अनुरूप सामाजिक विषमताओं को ऐतिहासिक रूप देकर इस पर गहन चिंतन किया। निराला जी ने 'कुकुरमुत्ता' लंबी कहानी में तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया। इस कविता का वर्ण विषय द्वितीय विषयुद्ध समय समाज के पूंजीवादी व्यवस्था का चित्रण है। कुकुरमुत्ता निराला की सामाजिक चेतना, प्रगतिवादी, प्रयोगशील प्रवृत्ति को निरूपित करनेवाली कविता है। कवि इसमें किसी एक व्यक्ति था वर्ग को सूचित न करते हैं। बल्कि वे तो कभी पूंजीपतियों पर व्यंग्य करते हैं, तो कभी थो ये समाजवादियों पर व्यंग करते है जो व्यर्थ की बकवास करते हैं। उन्होंने समकालीन साहित्यकारों पर भी व्यंग्य किया है। इस कविता में निराला ने भारतीय एवं पश्चिमी संस्कृति के टकराव का चित्रण भी किया है।

कुकुरमुत्ता कविता दो खण्डों में है। प्रथम खण्ड में कुकुरमुत्ता गुलाब पर व्यंग्य करता है। द्वितीय खण्ड में नवाब की बेटी 'बहार' को अपने माँ के हाथों बना कुकुरमुत्ते का कबाब खिलाती है जो उसे बहुत पसंद आता है। इस कविता में कुकुरमुत्ता - श्रमिक, सर्वहार, शोषित वर्ग का प्रतीक या प्रतिनिधि है, तो गुलाब सामंती, पूंजीपति वर्ग का प्रतीक या प्रतिनिधि है।

एक नवाब थे - बडे गट बाट वाले। उन्होंने अपनी बाडी में अनेक देशी-विदेशी पौधे लगा रखे थे। उन्होंने फारस से गुलाब मँगाकर बाड़ी में लगवाये थे। अनेक नौकरों को मालियों को उसकी देखबाल के रख लिया था। उस फूल पौधों को सुंदर ढंग से सजाया था। उसी गुलाब के पास सहज रूप से उगने वाले एक कुकुरमुत्ता नल के पास स्थिर उठाकर खडा हो गया। कुकुरमुत्ता उस गुलाब के डाल पर इतराते हुए अपने हाथों आई लेता है और उसकी सब शान झाड़ते हुए अपना रंग जमाता है। बाग के बाहर कुछ झोपडे पडे हुए थे। उनमें अनेक कारीगरों के साथ 'मोना' नामक एक बंगाल मालिन रहती थी। नवाब साहब ने उसे अपने पास आने जाने देते थे। उस मालिन की बेटी गोली और नवाब की बेटी परस्पर स्नेह से रहती थी। एक दिन दोनों बाहर बगीचे पर खेलने आयी थी। 'बाहर' गुलाबों की बहार देखने लगी पर गोली कुकुरमुत्ता पर रीझ गई। बहार के पूछने पर गोली ने कुकुरमुत्ता का महत्व बताया और कहा कि इसका कबाब बड़ा स्वादिष्ट बनेगा। कुकुरमुत्ता तोड़ लिया गया। गोली की माँ ने अपने घर कबाब बनाया । इतनी देर दोनों सहेलियाँ राजा प्रजा का खेल खेलती रही। गोली डिक्टेटर बनी और बहार भुक्कड फॉलोअस्सी उसके पीछे पीछे। कबाब बहार को बड़ा स्वादिष्ट लगा। उसने अपने घर आकर कुकुरमुत्ता के कबाब की प्रशंसा, नवाब साहब से की। नवाब साहेबने माली को हुकुम दिया, कुकुरमुत्ता को लाओ, कबाब बनेगा। माली ने कहा- हुजूर कुकुरमुत्ता अब नहीं रहा, रहे हैसिर्फ गुलब। नवाब साहेब क्रोध से काँपते हुए बोले- जहाँ गुलाब आगए गएँ हैं अब वहाँ कुकुरमुत्ता उगाओ, सबके साथ, मैं भी उसी को चाहता हूँ। माली ने विनम्रता से कहता 'कुकुरमुत्ता' उगाया नहीं जाता हुजूर।

निराला जी ने इस रचना में ऐय्याश ऐय्याश नवाबों, रईसों, पूँजीपतियों या ऐसे शासकों पर व्यंग्य किया है जो स्वयं ऐश्वर्य विनास में डूबे रहते है और किसान, मजदूर, मालियों को दूर रखते हैं। ये व्यभिचारी हैं, विदेशी पौधों- वस्तुओं से अपने घर-बाग सजाते हैं, अहंबादी है, शोषक हैं। निराला ने शोषक और शोषित वर्ग के बीच प्रतीकों के माध्यम से जिस विसंगति को उभारा है वह कवि के मन में समकालीन वातावरण को देखते हुए चल रहा तनाव है। कवि के मन का यह तनाव अमीर तथा गरीब के बीच पैदा हुए लकीर को उभारता है। फासस का गुलाब उच्च शोषक वर्ग, बुर्जुआ मनोवृत्ति पद्धति संस्कृति का प्रतीक है। गुलाब शाहों, राजाओं और अफसरों का प्यारा है। वे सब कितनों को दुबला करके स्वयं मोटा होता है। वह कितनों का शोषण करता है। उसके जीने के ढंग में अहंकार झलकता है। इसके विपरीत कुकुरमुत्ता सर्व-साधारण का प्रतीक है। ये तो स्वतः ही उगते हैं। वे किसी को अपने गुलाब नहीं बनाते और दूसरों का शोषण कहते हैं। कवि ने 'कुकुरमुत्ता' लम्बी कविता में तीखी भाषा का प्रयोग किया है। तीन भाषा के प्रयोग से कटु सत्य का उभारा गया है।

'कुकुरमुत्ता' के विचार तत्व आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के साथ ग्रामीण परिवेश, हमारी जीवन पद्धति, हमारी भावना, हमारे विश्वास और अन्धविश्वास, हृदय, मन, मस्तिष्क और चिन्तन-मनन की बनी बनाई परिपाटी को निश्चित रूप से हिला दिया है। चिंतन- एक जटिल मानसिक प्रक्रिया है। जब मस्तिष्क में कोई समस्या उत्पन्न होती है तो जब तक उसका हल नहीं मिलता तब तक मन सक्रिय रहता है। कुकुरमुत्ता एक समस्या- प्रधान कविता है जो व्यक्ति समाज, देश, परिवेश और सभ्यता - संस्कृति के लिए सोचने पर विवश करती है। कुकुरमुत्ता में विचार - प्रक्रिया का प्रवाह उपस्थित है।

प्रसंग व्याख्या:

कविता है जो व्यक्ति

1. एक थे नवाब,

   फ्राइस के माँगाड़ो थे गुलाब।

बडी बाही में लगाए

रखे माली कई नौकर

गजनबी का बाग मनटर

लग रहा था ।

संदर्भ : ये कवि सूर्यकांत त्रिपाठी निराला द्वारा लिखी गई कविता कुकुरमुत्ता के आरंभिक पंक्तियाँ है।

व्याख्या

एक नगर में एक बड़ा नवाब रहता था। वह फारस से एक गुलाब के बाँधे को मँगवाया और उसे अपनी शान बरी बगीया में लगवाए थे। उसके देख- बाल के लिए कई नौकर माली को रखे थे। उस गुलाब पौधे के कारण, वह गजनबी का बाग मनोहर और सुंदर लग रहा है।

विशेष: तत्कालीन समाज में रहे नवाबों का शान के बारे में बताए गए है।

2. आया मौसम, खिला फारस का गुलाब,

बाग पर उसका पड़ा था रोबोदाब;

वहीं गेंदे में उगा देता हुआ बुत्ता

पहाडी से उठे - सर ऐंठकर बोला कुकुरमुत्ता-

अबे, सुन बे गुलाब,

भूल मत जो पाईं खुशबू, रंगोआब

खून चूस खाद का तूने अभिष्ट

ड़ाल पर इतराता है के पीटलिस्ट !

संदर्भ

गुलाब के फूल उगने पर उसकी शान को देखकर कुकुरमुत्ता उसके बारे में बताने वाले पंक्तियाँ।

भाव/ व्याख्या: गुलाब के पौधे बड़े हो गए। मौसम आने पर फूल भी खिले। गुलाब के फूल उगने से उस बगीचेन का शान बड गया। उस गुलाब के पौधे के बगल में ही अपनी सिर उठाकर, इठलाते हुए कुकुरमुत्ता खडा हुआ था। कुकुरमुद्रा गुलाब के फूल से कहता है सुन हे गुलाबा, तूने जो खुशबू पाया वह अनेकों का खून पी कर पाये हैं।

विशेष : इन पंक्तियों के द्वारा कवि तत्कालीन पूँजीवादी व्यवस्था, धनवानों के, केवीटनिस्टों को व्यंग्य रूप में

फटकारते हैं।

3. बाग के बाहर पड़े थे झोपडे

दूर से जो दिख रहे थे अधगडे।

जगह गंदी, रुका, सड़ता हुआ पानी

मोरियों में; जिंदगी की लंतरानी,

बिलबिलाते कीडे, बिखरी हड्डियाँ

सेलरों की, परों की थीं गड्डियाँ

कही मुर्गी, कहीं अंडे,

धूप खाते हुए कंडे।

संदर्भ: इन पंक्तियों को कुकुरमुत्ता के दूसरे भाग से लिए गए है। धनवान नवाबों के गलियों के सामने दिखने वाले झोपडों के बारे में वर्णन कर रहे हैं।

व्याख्या : नवाब के उस शान शौकत बगीचे के सामने एक झोपड बस्ती है जिसमें ढ़ेर सारे झोपडे है। वह जगह गंदगी से भरा हुआ है। बदबू वाले पानी (गंदगी) बह रहा है। वही पर लोग जी रहे हैं। वहाँ ढेर सारे कीडे, मकोडे घूम रहे हैं। यहाँ वहाँ हड्डियाँ बिखरे हुए हैं। वहाँ के लोग धूप में ही उस गंदी बस्ती में जी रहे हैं।

विशेषता: यहाँ कवि तत्कालीन गरीब लोगों की रहन सहन, उनकी बस्तियों का वर्णन किया है।

4. कुकुरमुत्ते की कहानी

सुनी जब बहार से

नव्वाब के मुँह आया पानी।

बाँदी से की पूछ ताछ,

उनको हो गया विश्वास ।

माली को बुला भेजा,

कहा, "कुकुरमुत्ता चलकर ले आतू

माली ने कहा, हुजूर

कुकुरमुत्ता अब नहीं रहा है, अर्ज हो मंजूर,

रहे हैं अब सिर्फ गुलाबा

गुस्सा आया, काँपने लगे नवाबा।

बोले, चल, गुलाब जहाँ थे, उगा,

सब के साथ हम भी चाहते हैं अब कुकुरमुत्ता।

बोला माली, फरमाएँ म आफ खाता

कुकुरमुत्ता अब उगाया नहीं उगता।

संदर्भ

कुकुरमुत्ता लंबी कविता के अंतिम पंक्तियाँ हैं। इन पंक्तियों के द्वारा कवि नवाबों के दीमाग, बिना जाने अंगों के बारे में नौकरों को ऊपर रोब जमाना आदि के बारे में बता रहे हैं।

व्याख्या

कुकुरमुत्ता कविता की थे आखिरी पंक्तियाँ तत्कालीन नवाबों, अमीरों के शान, गरीबों और परिस्थितियों के ऊपर भी कैसे रोब जमाते इसके बारे में बताए गए है। नवाब की बेही कुकुरमुत्ता के कबाब की मिठास, स्वाद के बारे में बताती है। नवाब बाहर आकर माली को हुकुम देता कि अभी कुकुरमुत्त/ को तोडलाओ। लेकिन माली विनम्रता से कहता कि कुकुरमुत्ता अब नहीं रहा । अब तो सिर्फ गुलाब ही रहा। नवाब को गुस्त्या आया, वह काँप उठा और बोला जाकर जहाँ गुलाब है वहाँ अब कुकुरमुत्ता को भी उगा दो। लेकिन माली ने विनम्रता से कहता हुजार माफ करना कुकुरमुत्ता को उगाया नहीं जाता।

विशेष

यहाँ निराला जी ने उन नवाबों, रईसों, पूँजीवादियों पर व्यंग्य किया है जिन्होंने किसान, मजदूरों, मालियों, गरीबों को अपने से दूर रखते है। नवाब को यह भी नहीं पता है कि कुकुरमुत्ता स्वयं भूमि से बाहर आती है इसे उगाया नहीं जा सकता है।

7.8. सारांश

सूर्यकांत त्रिपाठी निराला हिन्दी काव्य जगत के प्रमुख कवि हैं। चारों वाद रहस्यवाद, प्रयोगवाद, प्रगतिवाद और छायावाद के काव्य धाराओं में इनकी प्रमुख कृतियाँ है। इन्होंने हिन्दी साहित्य के सभी अंशों को लेकर अपनी रचना प्रस्तुत किए हैं। निराला जी की अधिकांश रचनाएँ 'छायावाद' की प्रवृत्तियों से पूर्ण है। इनकी रचनाओं में छायावाद की भावुकता मुखर है। निराला जी किसी भी युग में रचना करें, छायावादी भावुक कवि उनके पीछे झांकता हुआ देखा जा सकता है। 1920 के बाद का युग हिन्दी साहित्य का अत्यन्त प्रौढ़ युग है। यह युग काव्य में छायावाद, उपन्यास में प्रेमचन्द, नाटक में प्रसाद और आलोचना में पं. रामचंद्र शुक्ल का युग है। इस युग में साम्राज्यवाद की जडें हिल उठी थीं। यह युग संघर्षी से भाराक्रांत होते हुए भी नवीन उत्साह एवं उल्लास का युग था। निराला इसी युग में आगे आए, बढ़े और क्रमश: प्रौढ़ता को प्राप्त हुए। सरोज - स्मृति निराला जी के दुःख भरी जीवन का प्रतिबिंब है। बचपन से ही सब कुछ खोये हुए एक भावुक कवि का संघर्षमय जीवन, पुत्री वियोग की झलक इस दुःख भरी कविता में देख सकते हैं।

7.9. बोध प्रश्न

1. कविवर सूर्यकांत त्रिपाठी निराला का व्यक्तित्व-कृतित्व पर प्रकाश डालिए।
2. चारों वादों के प्रमुख कवि निराला के काव्य कृतियों के बारे में चर्चा कीजिए।
3. सरोज स्मृति - एक स्मृति चिह्न है- विवेचन कीजिए।

7.10. सहायक ग्रंथ

1. निराला मूल्यांकन - डॉ. इंद्रनाथ मंदन
2. निराला और राम की शक्ति पूजा - डॉ. राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी
3. निराला की साहित्य साधना- डा. रामविलास शर्मा
4. कवि निराला- नंददुलारे वाजपेयी- मैरूमिलन, दिल्ली।
5. क्रांतिकारी कवि निराला- बच्चन सिंह- विश्वविद्यालय, वारणासी।

6. प्रसाद का काव्य- प्रेमशंकर- भारती अण्डारख प्रयाग।

7. हिंदी साहित्य- 20वीं शताब्दीः आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी।

8. छायावादः पुनर्मूल्यांकनः सुमित्रानन्दन पन्त।

9. छायावाद युगः शंभुनाथ सिंह, सरस्वती मंदिर, वाराणसी; 1962 छायावाद के गौरव चिह्नः प्रो. क्षेमेन्द्र।

10. छायावादी कवियों का सौन्दर्य विधानः डॉ. सूर्यप्रसाद दीक्षित।

11. छायावादी काव्यः डॉ. कृष्ण चन्द्र वर्मा; मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, म.प्र.।

12. नवजागरण और छायावादः महेन्द्र नाथ राम, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली।

डॉ. एम. मंजुला

8. निराला - राम की शक्ति पूजा

8.0. उद्देश्य

छायावादी कवियों में प्रमुख सूर्यकांत त्रिपाठी निराला के जीवन व्यक्तित्व, कृतित्व के बारे में पिछले अध्याय में पढ़ चुके है। इस अध्याय में निराला जी से लिखी गयी 'राम की शक्ति पूजा' नामक लघु पौरानिक आख्यानक के बारे में जानेंगे। इस अध्याय को पढ़ने के बाद हम –

- राम की शक्तिपूजा कविता का कथा सार,
- राम की शक्तिपूजा की विशेषताएँ,
- राम की शक्तिपूजा में प्रयोग भाषा के बारे में जान पायेंगे।

रूपरेखा

8.1. प्रस्तावना

8.2. राम की शक्ति पूजा - कथासार

8.3. राम की शक्तिपूजा की विशेषताएँ

8.4. भाषा-शैली

8.5. व्याख्या भाग

8.6. सारांश

8.7. बोध प्रश्न

8.8. सहायक ग्रंथ

8.1. प्रस्तावना

'राम की शक्ति पूजा' एक लघु पौराणिक आख्यानक काव्य है। यह चिर-परिचित एवं विश्व-विश्वत रामायण की कथा पर आधारित है। 'तुलसीदास' और 'राम की शक्तिपूजा' निराला जी की दो महत्वपूर्ण लम्बी कविताएँ हैं। तुलसीदास में महाकवि तुलसीदास के अन्तर्व्वन्द चित्रण किया है तो राम की शक्ति पूजा में रामायण के धीर उदात्त नायक श्रीराम की आशा-निराशाओं का, उनकी साधना का व उनके ओजखी रूप का बेजोड चित्रण है। इसमें निराला ने बंगाल में प्रसिद्ध राम-रावण युद्ध सम्बन्धी उस कथा को काव्य का रूप दिया है जिसके अनुसार राम ने रावण अद्भुत शौर्य से व्याकुल होकर विजय प्राप्त करने के लिए शक्ति की पूजा की थी। इस में नाटकीयता का दर्शन होते हैं। यह कविता सन् 1936 में लिखी गई। इस कविता में एक-एक घटना एक -एक भाव व स्थिति को प्रकट करती हुई चलती है। स्वयं निराला जी के जीवन की आशा - निराशाओं, पराजयों, संघर्षों और दुर्देय जिजीविषा को मानो नाटकीय अभिव्यक्ति प्राप्त हुई है। निराला जी ने अपने जीवन के आदर्शों को बचाये रखने के लिए जीवन भर अभावों, उपेक्षाओं और निराशाओं का सामना किया, पर न तो वे झुके, न उन्होंने घर को मानी। श्री राम के रूप में मानों कवि ने जीवन की विषम परिस्थितियों को पुन: चुनौति दी हो। निराला के राम न तो है कबीर के राम है, न तुलसी के। कबीर के राम

निर्गुण निराकार परब्रहमा तुलसी के राम दशरथ नन्दन श्रीराम होकर भी परब्रह्मा के अवतार है। सगुण साकार है फिर भी मानवेतर है, दिव्य है।

8.2. राम की शक्ति पूजा कथासार

इस छोटा सा महाकाव्य का कथासार इस प्रकार है-

रवि अस्त हुआ। राम रावण युद्ध का प्रथम दिवस बीत गया। इस युद्ध में दोनों ओर की सेनाओं ने अपने शौर्य दिखलाए। वानर सेना भयानक 'हूह' शब्द करते हुए राक्षस सेना पर टूट पड़े। राक्षस सेना भी बड़ी वीरता के साथ लड़ती रही। रावण पर छोडें गये अपने बाजों को व्यर्थ होता देख कर रामचन्द्र जी अग्नि नयन हो उठे। लंकापति रावण ने उद्दत होकर वानर-दल का मान मर्दन किया। सुग्रीव, अंगद, गवार, नल आदि मूर्छित हुए। युद्ध के समुद्र-गर्जन में एक मात्र हनुमान स्थित-प्रज्ञ बने रहे। युद्धोपरान्त थकी हारी वानर सेना समुद्र तट पर अपने शिविर को लौटी। हर कोई खिन्न व उदास है। श्रीराम के धनुष की प्रत्यंचा ढीली पड गई है। जटा की लटें खुलकर पीठ बाहुओं और वक्ष पर फैल गई, मानो विशाल पर्वत पर रात्रि का अन्धकार उत्तर रहा हो। निराशा के इस अन्धकार में केवल उनके दो नेत्र तारिकाओं से दीप्त हो रहे थे।

समुद्र तट पर स्थित पर्वत के पास बानर सेना बैठी है। अमावस्या की रात अन्धकार उगल रही थी। पीछे विशाल समुद्र गर्जना कर रहा था। पर्वत ऐसे निश्चल था मानो ध्यान मग्न हो । वायु मण्डल स्तब्ध था। प्रकाश के लिए केवल एक मशाल जल रही थी। बाहर कितना अन्धकार था, राम के मन में उतनी ही निराशा व्याप्त हो रही थी। उनके अस्थिर मन में संशय हो रहा था कि रावण को जीत सकेंगे या नहीं। सीता को रावण की काश से मुक्त कर सकेंगे या नहीं। श्रीराम का दृढ़ चित्त भी आज विचलित हो रहा था। राम के मनः पटल पर अचानक स्वयंवर के धनुर्भंग, सीता के नेत्रों और अपने नेत्रों का प्रथम-प्रिय सम्भाषण आदि अनेक बातें याद हो आई। ऐसे में उन्हें रावण का भयानक अट्टहास सुनाई पड़ा। इनके नेत्रों से दो अश्रुबिन्दु दुलक पड़े।

श्रीराम के चरणों में बैठकर हनुमान के हाथों पर स्वामी के अश्रु बिन्दु गिर पडे। हनुमान अट्टहास करते हुए महाकाश में पहुँच गये। श्रीराम की हताशा देखकर सुग्रीव और विभीषण भी चिन्तित हुए। केवल जाम्बवान स्थिर रहे। महाशक्ति रावण को अपनी गोद में लिए थे, अत: उसको पराजित करना असम्भव था। जाम्बवान ने सलाह दी कि शक्ति आराधना से ही रावण को पराजित किया जा सकता है। साधना द्ववारा ही शक्ति अर्जित की जा सकती। श्रीराम ने शक्ति - साधना का निश्चय किया। हनुमान एक सौ आठ कमल ले आये।

श्री रामचन्द्र जी एकाग्र चित्त होकर शक्ति की आराधना में लीन हो गये। साधना में पाँच दिवस व्यतीत हुए। एक के बाद एक चक खुलने लगे। छठवें दिन उनका मन 'आज्ञा चक्र' तक जा पहुंचा। आठवें दिन मन सहस्तार चक्र की स्पर्श करने लगा। श्री राम की परीक्षा हेतु दुर्गा देवी ने पूजा का अन्तिम फूल अदृश्य कर दिया।

श्रीराम ने अन्तिम फूल के लिए हाथ बढ़ाया, पर फूल न मिला। उनका मन चंचल हो उठा। साधना की चरम परिणति में आसन छोड़ नहीं जा सकता था। कमल के अभाव में साधना के अपूर्ण रह जाने की सम्भावना थी। एक बार फिर निराशा घिर आयी। निरन्तर विरोध और साधना भाव से उनका मन उद्धिग्न हो उठा। उन्होंने सोंचा - "धिक् जीवन जो पाता ही आया, विरोध" अचानक उन्हें ध्यान आया- माता उन्हें राजीव नयन कहती थी। दो नील कमल अभी शेष हैं। इसी नेत्र रूपी कमल को यहा कर नील साधना पूर्ण करने का उन्होंने निश्चय किया। उन्होंने महाफल

वाला तीव्रक्षर अपने हाथ में लिया और ज्यों ही अपना दक्षिण नेत्र अर्पित करने को हुए, देवी ने साधुवाद देते हुए श्रीराम का हाथ पकड़ लिया। देवी ने कहा कि वह मात्र उनकी परीक्षा ले रही थी। शक्ति रूपा देवी प्रसन्न हुई और श्रीराम के शरीर में उतर गई । युद्ध में विजय का निश्चय हो गया।

इस कविता के राम 'परब्रम' राम न होकर 'मानव' राम है जो निरन्तर संघर्षों से लड़ते- भिडते हैं। सामान्य मनुष्य की तरह वे परिस्थितियों से विचलित हो जाते है, भावुक भी हो उठते हैं, निराश भी हो जाते हैं। उनका जीवन सुख-दुख, आशा-निराशा तथा धात-प्रतिघात का संघर्षमय जीवन है।

8.3. राम की शक्ति पूजा-काव्य गत विशेषताएँ

'राम की शक्ति पूजा' एक पौराणिक लघु काव्य है। इसमें निराला जी ने बंगाल में प्रसिद्ध राम-रावण युद्ध सम्बधी उस कथा को काव्य का रूप दिया है जिसके अनुसार राम ने रावण के अद्भुत सौर्य से व्याकुल होकर विजय प्राप्त करने के लिए शक्ति की पूजा की थी।

- **कथा वस्तु का सहज स्वाभाविक विकास** : निराला जी इस काव्य का आरंभ इस तरह किया-

रवि हुआ अरत; ज्योति के पत्र पर लिखा अमर

रह गया राम-रावण का अपराजेय समर

अर्थ है रवि का अस्त हो गया है। राम-रावण का युद्ध की सेना को हरा रहे हैं। रावण राम की सेना को हरा रहे हैं। राम के बाण भी व्यर्थ हो रहे हैं। हनुमान के बिना सभी प्रमुख सेनानी और वीर मूर्च्छित पड़े हैं। राम को सन्देह होने लगता कि वह युद्ध में विजय पाएगा या नहीं सीता को रावण के चर से ला सकेगा या नहीं? इस तरह व्याकुल राम को अपने विवाह के समय प्रथम जानकी मिलन का याद आता है।

'जागी पृथ्वी - तनया कुमारिका छवि'

यह दृश्य उनके तन-मन में एक विचित्र परिवर्तन कर देता है। इस सूक्ष्म मनोभाव का वर्णन द्रष्टव्य है-

सिहरा तन क्षण भर भुला मन, लहरा समतत

हर धनुर्भड को पुनर्वार ज्यों उठा हस्ता।

राम सोच रहा है कि शक्ति उनके वाणों को निष्फल करती रही है। रावण के सम्मुख अपने पराक्रम की हीनता का स्मरण करके राम व्यथित हो उठते हैं। जीवन में पहली बार उनके नेत्रों से आँसू की दो बूँदें झर पड़ती है। राम का यह वेदना और आँसू को देखकर हनुमान अस्थिर हो उठते है। वह अपना काया को बड़ा कर आकाश में पहुँच जाते हैं। शंकर की प्रेरणा से शक्ति हनुमान-जननी अंजना का रूप धारण करके हनुमान को मीठी फटकार बताती है कि यह महाकाश उन शिव का निवास-स्थान है, जिनकी राम भी वन्दना करते है। हनुमान वापस राम के पास लौट आते है। इस अवसर पर निराला ने लक्ष्मण, सुग्रीव, राम आदि के अन्तर्द्वन्द्व का सुन्दर वर्णन किया है। महाशक्ति राम को ऐसी दृष्टि से देखती है कि उनके हाथ बंध जाते हैं।

इसी समय जाम्बवत राम को मन्त्रणा देते हैं कि शक्ति की मौलिक कल्पना करो, पूजन करो, तभी रावण का वध, सम्भव हो सकेगा। तब तक लक्ष्मण के नेतृत्व में सेना राक्षसों से युद्ध करती रहेगी। इस सलाह को मान कर रोम

युद्ध से बाहर आकर शक्ति की पूजा करने तैयार होता है और हनुमान की आठ इन्दीवर लाने के लिए भेजते हैं। क्रमशः दिन बीतते जाते हैं राम को आत्मिक बल मिलता जाता है। पूजा के अंतिम यानी आग्वे दिन आखिरी इन्दीवर को शक्ति को समर्पित करने जाते तो वह पुष्प नहीं मिलता क्यों कि उसे रात्रि दुर्गामचुपचाप ले जाती है। राम अधीर हो उठती। यहाँ राम की मनः स्थिति को बहुत ही सूक्ष्मता के साथ किया गया है-

धिक् जीवन जो पाता ही आया है विरोध

धिक् साधन जिसके लिए सदा ही किया शोध।

इसी समय उसे याद आता किं माता उसे राजीव-नयन कहा करती थी। तो वह अपने नेत्र निकाल कर दुर्गा माँ को समर्पण करने वाला ही था माँ प्रसन्न होकर राम का हाथ थाम लेती और राम को 'अभयदान' देती है। इस तरह कहानी रवि-अस्त और निराशा से आरंभ होकर आशा और नए प्रकाश से अंत होता है।

• संघर्षमय जीवन की कथा है-

निराला को राम परब्रह्म राम न होकर सामान्य मानव की तरह सुख-दुख,आशा-निराशा के साथ जीवन बिताने वाला नर है। परिस्थितियाँ उन्हें विचलित कर देती है। परंतु कर्तव्य बुद्धि द्वारा संयत रहकर वह आत्मा-विश्वास को पुन: जाग्रत करते है और अन्ततः समस्त बाधाओं पर विजय प्राप्त करते हैं। अपने कर्तव्य-पथ पर दृढ़ रहकर सफलता प्राप्त करने के लिए वह अपना सर्वस्व न्यौछावर करने को उद्यत रहते हैं। अपनी आँख निकालकर शक्ति को समर्पित करने का संकल्प इसी सर्वस्व समर्पण - भाव का घोलक करता है। इस कविता में राम की विजय की अपेक्षा उनकी साधना ही अधिक महत्वपूर्ण दिखाई देती है।

• नारी के प्रति सम्मान

'राम की शक्ति पूजा' की महाशक्ति वस्तुतः नारी स्वरूप आदि शक्ति हैं। इसको अदिति भी कहा गया है। सीता की स्मृति भग्न-हृदय राम को विजय के लिए जुन: समृद्ध करती है। नारी नर की प्रेरक शक्ति के रूप में दिखाई देती हैं। ठीक नही है, नारी- रुपिणी शक्ति के अभाव में मानव शिव के बजाय केवल 'शव' रह जाता है।

• चरित्र चित्रण की सांकेतिक प्रणाली

इसमें कवि ने नाटकीय शैली पर प्रभावशाली एवं सशक्त चरित्र प्रदान किये हैं। थोडे ही शब्दों में हनुमान, विभीषण, सुग्रीव, लक्ष्मण आदि की चित्र - रेखाएँ उभर आती है। इस काव्य में कवि ने चरित्र-चित्रण के लिए सांकेतिक प्रणाली को अपनाया है। राम न तो विलाप करते हैं और न इच्छा मात्र से विजयी ही होते हैं। उनमें नेत्रों से दो आँसू टपक पड़ते हैं, जो उनकी क्षणिक शिथिलता के द्योतक है। फिर वे साधना द्वद्वारा सिद्धि प्राप्ति में लग जाते है। इस प्रकार यह कथानक मात्र राम का न रहकर मानव मात्र के संघर्ष की कहानी बन जाता है। **मनोवैज्ञानिक चित्रण:** 'राम की शक्तिपूजा' काव्य की सबसे बड़ी विशेषता मनोवैज्ञानिक चित्रण है। मानसिक अन्तर्द्वन्द्व का जैसा सफल चित्रण इस काव्य में हुआ है, वैसा अन्यत्र बहुत कम देखने को मिलता है। मनोवैज्ञानिक चित्रण करने के लिए निराला ने अनुकूल वातावरण की काव्यमय सृष्टि की है तथा इन सब के निर्माण के लिए, उन्होंने प्रौढ़ पद - विन्यास अपनाया है। बहुत विषम परिस्थितियों को देखकर राम हतोत्साह हो उठते हैं, परन्तु वह कर्मवीर है। अत: संकल्प

शक्ति के द्वारा आत्मशक्ति का विकास करते हैं और विजय प्राप्त करते हैं। इस विजय का उदबोधन उन्हें नारी जाति से ही मिलता है।

• राम की शक्ति पूजा का काव्य रूप

इस काव्य के कथानक में कथा का क्षिप्र प्रवाह है, अलंकृत वर्णन और मनोवैज्ञानिक चित्रण भी है; सुनियोजित कथा भी है और प्रभाव उत्पन्न करने की शक्ति भी है। इसीलिए इसे एक महाकान्य कर सकते है। परंतु इसमें व्यापक कथानक की और शैली के वैविध्य का अभाव तो है लेकिन अन्य कुछ तत्व महाकाव्य के निकट तो रहते है फिर भी यह खण्ड काव्य के ही अधिक निकट है। भाव व्यंजना । इस काव्य में सुन्दर भाव व्यंजना का दर्शन होता है। भाव से संबंधित विचार, जीवन दर्शन आदि विशेषताओं पर विचार करना पड़ता है। यथा- औदात्य: औदात्य महान आत्मा की प्रतिध्वनि है। साधारणतः वही काव्य आंदाल्य - युक्त माना जाता है, जो सब व्यक्तियों को सर्वदा आनन्द दे सके। औदात्य के अनेक तत्व माने जाते हैं। मन की ऊर्जा, उल्लास, संभ्रम तथा अनुभूति इसके अंतरंग तत्व है। अलंकार योजना, उत्कृष्ण भाषा, कल्पना तत्व एवं ऊर्जित रचना- विधान उसके बहिरंग तत्व है। राम दुःखी एवं निराश दिखाए जाते हैं। इससे उनके परम्परा युक्त चरित्र में स्खलन आ जाता है। लेकिन समाप्ति तक कथा का रूप बदल जाता है। यह कथा सफलता - असफलता के झूले में झूलती है, परन्तु अन्ततः भारतीय संस्कृति के अनुरूप व्यापक आयाम को लिए हुए उदात्त लक्ष्य प्राप्त कर लेती है। भाषा और कला की दृष्टि से इसके औदान्य को सब स्वीकार करते हैं।

• विरोधी तत्वों का संघर्ष

इस रचना में सत्-असत् वृत्तियों का संश्लिष्ट स्वरूप प्रस्तुत किया गया है। इसमें आशा- निराशा, जय-पराजय, सुख-दुख, संघर्ष-निर्वेद, लोकोत्तर जिज्ञासा और ऐहिक मांगल्य के लिए सकर्मकता का मिला-जुला- जुला रूप आद्यन्त लक्षित होता है। इस काव्य में समस्त मानसिक स्थितियों की सुन्दर व्यंजना हुई है।

• मानवीय सम्बन्धों की व्यंजना

जिस प्रकार वाल्मीकि तथा तुलसी ने अपनी कृतियों में व्यक्ति के विविध सम्बन्धों के निर्वाह और प्रतिष्ठा की भावना को व्यक्त किया है उसी प्रकार निराला ने भी राम तथा उसके परिवेश में आने वाले अनेक पात्र के माध्यम से समाज के प्रबन्धों की चर्चा की है। निराला के राम को ईश्वरीय पद या ब्रह्मत्व प्रदान कर उन्हें सर्वथा मानव ही माना है। शन और विभीषण के मध्य भगवान भक्त का सम्बन्ध न मान कर राजवंशी कूट नीति को वर्णन किया।

निराला ने इस काव्य में अन्य छायावादी कवियों की भाँति नारी की अनन्त प्रेरक का स्रोत माना है। जब राम निराश हो कर मौन रहता है, तब खीला की याद आती है तब उनका मन सिद्ध उठता है और विश्व विजय करने की इच्छा पैदा होती है। निराला ने मानवीय सम्बन्धों का निरुपण करते समय मर्यादा का पूर्ण रूपेण चालन किया है। अनुज को अनुचर का स्थान देकर भारतीय संस्कृति की मर्यादा की रक्षा की।

- **शिल्प विधान**

निराला शब्द शिल्पी है। संस्कृत व बंगला भाषाओं की पृष्ठभूमि तथा संगीत के ज्ञान के कारण शब्दों के अर्थ व ध्वनि पक्षों की उन्हें गहरी पहचान थी। इस काव्य में भी निराला जी ने अन्य काव्यों की तरह कथा-प्रसंगों को रखकर कहानी को आगे बढ़ाया।

- **भक्ति भावना**

भक्ति भावना भारतीय संस्कृति एवं साहित्य की अखण्ड परम्परा है। इस काव्य में हनुमान में दास्य भक्ति की और विभीषण में संख्य भक्ति की प्रबलता है। राम को भी शक्ति को पाने के लिए उपासना का मार्ग को ग्रहण करना पड़ता है। वह जाम्बवत की बात मानकर शक्ति का आराधना करता है। उपासनारत राम के चरित्र तथा चित्रण में कवि को अपूर्व सफलता प्राप्त हुई है।

- **कल्पना तत्व**

निराला जी ने प्रखर कन्ना के सहारे जिन बिम्बों की कल्पना की है, वे अपने में मौलिक तथा श्रेष्ठ हैं। बाह्य प्रकृति तथा अन्तः प्रकृति का यह संश्लिष्ट चित्र द्रष्टव्य है-

दृढ़ जटा मुकुट हो विपर्यस्त प्रति लट से खुल

फैला पृष्ठ पर, बाहुओं पर, वक्ष पर विपुल ।

उतरा ज्यों दुर्गम पर नैशांधकार

चमकती दूर ताराएँ ज्यों हो कहीं सार ।

प्रकृति के माध्यम से भी निराला ने अनेक ऐसे संश्लिष्ट चित्रों का नियोजित किया है।

- **रूप-योजना**

राम की शक्ति पूजा में मुख्यतः वीर रस और रौद्र रस की योजना की गई है। इसके अतिरिक्त श्रृंगार रस और शान्त इस के कभी संकेत है। रात्रि की प्रलयंकारी भयानकता के वर्णन में भयानक इस की सुन्दर यंजना पाई जाती है। काव्य का आरम्भ ही कवि वीर इस की अभिव्यक्ति से करता है। कवि उत्पाद भावसे राम शरण के युद्ध का वर्णन करता है। निराशा के समय राम को जहाँ सीता के प्रथम मिलन का स्वारण होता है, वहाँ श्रृंगार रस की सुन्दर भजना हुई है-

ऐसे क्षण अन्धकार धन में जैसे विद्युद्भुत,

जगी पृथ्वी - तनया - कुमारिका दि अच्युत।

साधना पूर्ण होते समय 'इन्दीवर' बिलीन हो जाता है। उस समय राम का हृदय सीता के चिर-वियोग की कल्पना करके चील्कार कर उठता है। इस कथन में विप्रलम्भ श्रृंगार की मार्मिक व्यंजना हुई है।

जानकी! हाथ, उदार प्रिया का हो न सका।

कह एक और मन रहा, राम का जो न थका !

इसी स्थान पर 'निर्वेद' स्थायी भाव की अभिव्यक्ति द्वारा शान्त रस की व्यंजना होती है। पूजा का पुष्प चुरा लिए जाने पर राम क्षण-भर के लिए जीवन से विश्व दिखाई देते हैं -

धिक् जीवन को जो पाता ही आया विरोध,

धिक साधन जिसके लिए सदा ही किया शोध,

जानकी! हाथ उद्धार प्रिया का हो न सका।

शंकर के संकेत पर शक्ति जब माता अंजना का रूप धारण करके हनुमान को समझाती है, तो हनुमान का क्रोध एकदम शान्त हो जाता है। इस अवसर पर हम 'वात्सल्य' रस की अभिव्यंजना देखते है।

सहसा नभ में अभिव्यंजना का हुआ उदय।

बोली माता तुमने रवि को जब लिया निगल,

तब नहीं बोध था तुम्हें रहे बालक केवल

यह वही भाव कर रहा तुम्हें व्याकुल रह रह।

वह लज्जा की बात कि माँ रहती सह- सह ।

इस प्रकार राम की शक्ति पूजा में इस योजना का सफल प्रयास किया।

8.4. भाषा-शैली

'राम की शक्ति पूजा' कविता की सबसे बड़ी विशेषता इसकी प्रसंगानुकूल युद्ध साहित्यिक संस्कृतनिष्ठ भाषा है। भाषा का स्वरूप कविता में प्रसंगानुरूप बदलता जाता है। आरम्भ में वर्णित राम-रावण युद्ध के संदर्भ में समास गुंफित, क्लिष्ट, अर्थ गर्भित सामासिक भाषा-शैली का प्रयोग हुआ है और रौद्र भावों के लिए महाप्राण, द्वित्य एवं कठोर वर्णों का प्रयोग कवि ने किया है, यथा-

"शत धूर्णावर्त, तरंग-भंग उठते पहाड़

जल - राशि, राशि-जल पर चढता खाता पछाड़

जोड़ता वंध-प्रतिबंध धरा, हो स्फोत वृक्ष

दिखिजय-अर्थ प्रतिपल समर्थ बढ़त समक्ष ।"

युद्ध के वर्णन में कवि ने सामासिक पद विन्यास तथा ध्वन्यात्मक पदों के चथन द्वारा रणभूमि का वातावरण खड़ा कर दिया है।

राक्षस- विरुद्ध- प्रत्यूह, कुद्ध कपि विषम हूह,

विच्छुरित विल्हि - राजीवनयन-हत- लक्ष्य-बाण,

लोहित- लोचन - रावण- मदमोचन - महीयान

राधव - लाघव- रावण - वारण गत-युग्म प्रहर।

निराला की भाषा - भावों की अनुगामिनी है। युद्ध भूमि से लौटती हुई श्रीराम की सेना निरुत्साह और थकी हुई है। श्रीराम का कमल जैसा मुख भी भीहत है—

प्रशमित है वातावरण, निमित-मुख- सान्ध्य-कमल,

लक्षण चिन्ता-पल पीछे वानर- वीर सकल,

रघुनायक आर्य, अवनी पर नवनीत चरण

श्लथ धनु गुण है, कहि बन्ध स्वस्त, तुणीर-धरण।

युद्ध के वातावरण में भी भाव परिवर्तन कर कोमल भावों और प्रणय के वातावरण को पूर्व स्मृति के रूप में प्रस्तुत करने की अद्वितीय क्षमता निराला की भाषा में ही देखी जा सकती है।

आज के युद्ध की पराजय से निराश - उदास बैठे राम की स्मृति में सीता को छवि कौंधती है मानो काले-अन्धेरे बादलों में बिजली कर्जेन कौन्ध गई हो:

ऐसे क्षण अन्धकार धन में जैसे विद्युत,

जागी पृथ्वी - तनया - कुमारिका धनि-अच्युता।

राम के निराशा से भरे हुए हृदय की उपमा अन्धकार भरे आकाश तथा सीता की स्मृति की उपमा कौंधनेवाली बिजली से देकर कवि ने सारे कार्य व्यापार को चाक्षुस - बिम्ब बना दिया है। आगे की पंक्ति में कवि ने काँपते किसलयों झरते पराग, गाते खग आदि के द्वारा मन की कोमल कृत्तियों की चित्रशाला ही उपस्थित कर दी है।

.....याद आया उपवन,

विदेश का, प्रथम स्नेह का लतान्तराल मिलन

नयनों का, नयनों से गोपन - प्रिय सम्भाषण,

पलकों का नव पलकों पर प्रथमोत्थान-पतन,

भाव- रस व स्थिति के अनुरूप भाषा व शब्दों का चुनाव करना निराला जी की विशेषता है। राम के हृदय की निराशा और अवसाद इन पंक्तियों में देख सकते हैं-

धिक् जीवन जो पाता ही आया विरोध

धिक साधन जिसके लिए सदा ही किया मेध,

निराला प्रसंगानुकूल भाषा बदलने में सिद्ध हस्त है। इसी कविता में भाषांगत वैविध्य देखा जा सकता है। प्रसंग के अनुरूप कहीं भाषा वीर रस के लिए ओजपूर्ण है तो कहीं भावुकता से पूर्ण; उसमें कहीं युद्ध भूमि के निनाद सुनाई पड़ते हैं तो कभी समुद्र गर्जन । निराला की भाषा की एक बहुत बड़ी विशेषता निम्बात्मकता व चित्रात्मकता है। कवि शब्दों के माध्यम से सम्पूर्ण चित्र खडा कर देते हैं। यथा-

हे अमा-निशा; उगलता गगन धन अन्धकार;

खो रहा निशा का ज्ञान स्तब्ध है पवन चार;

अप्रतिहत गरज रहा पीछे, अम्बुधि बिशाल,

भूधर ज्यों ध्यान मग्न, केवल जलती मशाल।

सुन्दर प्रतीक विधान, चित्रात्मकता, ध्वन्यात्मकता, नाद सौन्दर्य समाहार शक्ति आदि के द्वारा निराला ने खड़ी बोली को उसकी अभिव्यंजना क्षमता की पराकाष्ठा पर पहुंचा दिया।

निराला ने इस कविता के सांस्कृतिक वातावरण के अनुरूप इसकी शैली संस्कृतनिष्ठ रखी है साथ ही काव्य की गरिमा के अनुरूप इसका पूर्ण निर्वाह किया है। इस कविता में जिन विशद बिम्बों, चित्रों तथा प्रतीकों का चित्रण हुआ है, उसे सामान्य चलती हुई अभिधात्मक भाषा वहन नहीं कर सकती थी। अतः उन्होंने काव्य के उदात्त कथ्य के अनुरूप 'उदात्त भाषा' व उदात्त शैली का चयन किया है। इसमें हमें भाषा के 'कोमल' व 'परुष' दोनों' रूप दिखलाई पड़ते हैं।

- **छन्द विधान**

निराला मुक्त छन्द के जन्मदाता माने जाते है। उन्होंने न केवल पुराने छन्द बन्धों को तोड़ा, प्रत्युत नवीन छन्दों का प्रयोग भी किया। निराला जी ने गीतिका, तुलसीदास तथा राम की शक्ति पूजा में नवीन छन्दों का प्रयोग किया। 'राम की शक्ति पूजा' में कवि ने 24 मात्राओं के तुकान्त छन्द का प्रयोग किया है जो अपनी लयात्मकता, गत्यात्मक प्रवाह तथा रसानुरूप संगीतात्मकता के कारण अत्यन्त महत्वपूर्ण है। श्री जानकी वल्लभ शास्त्री के अनुसार ओजस्वी छन्द लिखने में निराला मिल्टन और माइकेल मधुसूदन दत्त (बंगला) से भी आगे दिखाई देते हैं। उक्त दोनों कवियों में उद्दाम आवेग है तो निराला में आंधी तूफान है; अगर उनमें बिजली की कड़क है तो निराला में वज्र का निर्दोष।

निराला ने इस कविता में प्रसंगानुकूल अनेक अलंकारों का भी प्रयोग किया है- यथा अनुप्रास, श्लेष, यमक, रूपक आदि पर ये अलंकार कहीं भी अनावश्यक बोझ बनकर नहीं आये है। उन्होंने काव्य की शोभा बढ़ाई है। अपने कथ्य और शिल्प दोनों की दृष्टि से निराला जी को यह रचना कालजयी रचना है। इसका सन्देश मनुष्य के संघर्ष का सन्देश है। भाषा वस्तुतः निराला के संकेतों के अनुसार नाचती हुई दिखाई देती है। 'राम की शक्ति पूजा' में उपयुक्त भाषा वर्णित प्रसंगों की प्रभावकता को अभिव्यंजित करने में पूर्ण संभवत और समर्थ है। जहाँ कथा कही जा रही है अथवा पात्रों का वार्तालाप चलता है। वहाँ भाषा का रूप सरल रहा है। जहाँ कवि ने वातावरण का चित्रण किया है अथवा भावों के अन्तर्व्दन्द का अंकन किया है, वहाँ भाषा दुरूह, क्लिष्ट, संस्कृत-गर्जित एवं सामासिक हो गई है।

यह करना सर्वथा उचित है कि 'राम की शक्ति पूजा' में कवि निराला की कला की सभी विशेषताएँ सुरक्षित है। यह काव्य कामकला की उत्कृष्टता और भावों के औदात्य का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करता है।

8.5. सप्रसंग व्याख्या

1. रवि हुआ अस्त: ज्योति के पत्र पर लिखा अमर

रह गया राम-रावण का अपराजेय समर

आज का तीक्षण शर-विद्युत - क्षिप्र - कर, वेग प्रखर,

शतशेल सम्वरणशील, नील नभ गर्जित- स्वर।

उद्‌गीर्षित विभिन्न शीम- लाईन कृषि संतु-प्रहर-

जानकी भी भीरू उरे आशा-भर- सवर्ण सम्बर।

प्रसंग :

प्रस्तुत पंक्तियाँ निराला के द्वारा रचित सुप्रसिद्ध कविता 'राम की शक्ति पूजा' से दिया गया है। राम शरण का युद्ध, निर्विशम से हो रहा था। उस दिन राम को ऐसा लगा कि वे युद्ध हारने वाला है क्या ? रावण का बल बढ़ता हुआ-सा प्रतीत हो रहा है। श्रीराम में विजय की आशा कम हो गयी थी। आज तो श्रीराम और भी खिन्न हुए थे। युद्ध के संदर्भ में उस दिन के संग्राम का वर्णन कर रहे हैं।

व्याख्या :

सूर्य अस्त हो गया। आज भी राम-रावण युद्ध का अंत नहीं हुआ। आज तक किसी की हार जीत तथा नहीं हुई। दोनों ओर के योद्धा तीव्र गति से हाथों में शस्त्र लिए अत्यन्त तेजी के साथ एक दूसरे पर चलाते थे। वे सैनिक इतने समर्थ थे कि वे सैकड़ों भालों के एक ही साथ होने वाले आघातों को रोकने में समर्थ थे और उनके गर्जन से नीला आकाश, गुंजायमान था। प्रत्येक क्षण नवीन प्रकार की व्यूह रचना की जाती थी।

अलंकार : रूपक, उत्प्रेक्षा आदि।

विशेष : लाक्षणिक शैली है। भाषा में ध्वन्यात्मकता है।

2. वारित- सौमित्र - भल्लपति - अगणित मल्ल रोध,

गर्षित -प्रलयाब्धि - क्षुब्ध हनुमान केवल- प्रबोध

उद्गीचित वह्नि - भीम- पर्वत-कपि-चतु प्रहार-

जानकी भीरू 32 आशा भर रावण सम्वार।

प्रसंग: ऊपर की तरह

युद्ध के समय राम के पक्ष के सैनिक किस प्रकार युद्ध कर रहे हैं, आज के दिन उन सैनिकों की स्थिति के बारे में वर्णन कर रहे हैं।

व्याख्या:

राम का शरीर रावण के बाणों से बिंधा हुआ था। वानरों की सेनाएँ रावण की दुर्निवार- अत्यन्त भयानक प्रहारों को न सह सकने के कारण विफल हो रही थीं। सुग्रीव, अंगद, गवाक्ष, नल आदि वीर सेनानी मूर्च्छित हो गये थे। लक्ष्मण और जाम्बवन्त के प्रहारों को रावण बीच में ही अपने बल से रोक देता था। रणक्षेत्र में कोलाहल हो रहा था जैसे प्रलय काल का समुद्र उद्‌वेलित हो कर गर्जन कर रहा है। उस कोलाहल के बीच केवल हनुमान ही ऐसे थे जिनकी

चेतना ठिकाने पर थी। उनके क्रोधपूर्ण मुख को देखकर ऐसा लगता था मानो किसी विशाल ज्वालामुखी पर्वत से अग्नि की लपटें निकल रही हो। इस प्रकार चार पहर तक रावण के साथ निरन्तर युद्ध करते रहे और भयभीत जानकी के लिए आशंकित राम के हृदय में आशा का संचार करते रहे।

अलंकार : अनुप्रास एवं पदमैत्री - प्राय: सम्पूर्ण छंद ।

विशेष : सामासिक तत्सम शब्दावली है। भाषा विषयानुकूल है। संस्कृत निष्ट है फिर भी सरल है। भाषा में ओज गुण की दीप्ति दिखाई देती है।

3. 'ये अश्रु राम के' आते ही मन में विचार,
उद्वेग हो उठा शक्ति - खेल - सागर अपार,
हो प्रवसित पवन उनचास पिता पक्ष से तुमुल
एकत्र वक्ष पर बहा वाष्प को उडा अतुल,
शत्र वर्णावर्त, तरंग - भंग उठते पहाड़
जन राशि - राशिजल पर चढ़ता खाता पछाड़।

प्रसंग : [ऊपर की तरह]

व्याख्या

अपने स्वामी की आँखों में आंशू देख हनुमान पहले चकित, बाद में कृद्ध हो गया। श्रीराम की आँखों में आँसू का यह प्रथम दर्शन। जीवन में पहली बार राम के आँखों से अश्रु आया है। इसलिए हनुमान उन अश्रु -बिन्दुओं को देख अस्थिर हो उठते है और भयंकर क्रोध में भरे आकाश में पहुँच जाते हैं। हनुमान के क्रोध का वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है---हनुमान के क्रोध भरे वेग से भयंकर झंझावत चलने लगते हैं, सागर में पर्वताकार लहरें उठने लगती, चारों ओर कुहरा छा जाता है, दिशा ज्ञान का विश्मरण हो जाता है। सागर की अपार जल राशि पधाड खाती हुई लिपट जाती है। धरती और सागर का बन्धन टूट जाता है। पानी का यह अथाह प्रवाह पृथ्वी की सीमा को तोड़ कर सागर के हृदय को विस्तृत करने लगा।

विशेष: प्रस्तुत पंक्तियों के दवारा कवि ने हनुमान के शैद-रूप को दर्शाया। ओज पूर्ण वर्णन है। मानवीकरण - रूपक अलंकार । हनुमान की राम भक्ति एवं विपुल शक्ति का सजीव चित्रण है। भाषा का नाद सौन्दर्य दृष्टव्य है। वीर तथा भयानक रसों की मिली जुली छटा इन पंक्तियों में विशेष रूप से द्रष्टव्य है।

4. निज सहज रूप में संयत हो जानकी प्राप्ण
बोले - आया न समझ में यह देवी विधान;

रावण अधर्मरत भी, अपना, मैं हुआ अपर,

यह रहा, शक्ति का खेल समर, शंकर, शंकर

करता मैं योजित बार-बार शर निकर निशित,

हो सकती जिनसे यह संस्कृति सम्पूर्ण विजित,

जो तेजापुंज, सृष्टि की रक्षा का विचार-

हैं जिनमें निहित पतन घातक संस्कृति अपार।

प्रसंग :[ऊपर की तरह]

संन्दर्भ : विभीषण से प्रति के राम उत्तर का वर्णन कवि भिगला करते हैं।

व्याख्या : श्रीराम ने सहज भाव से करता है - बहुत समय से यह समझने की कोशिश कर रहा हूँ कि शरण अधर्म में लगा हुआ है, फिर भी महाशक्ति ने उसको अपना समझ लिया है और उसके लिए मैं गैर हो गया हूँ। क्या तर शक्ति इस युद्ध को खेल समझती है, शिव यह कैसी अनुचित बात! सारी सृष्टि को भी पराजित करने वाले बाणों का प्रयोग जब भी मैं निश्चित एवं निशित लक्ष्य पर छोड़ता और शक्ति सारी सृष्टि की रक्षा करने लायक शक्ति और अपार पतन घातक शक्ति जिनमें निहित है ऐसे बाण व्यर्थ होते जाते हैं। जिन बाणों में शत शुद्धि, बोध- सूक्ष्मातिसूक्ष्म मन का विवेक हैं, जो बाण क्षत्रिय धर्म से पूर्णाभिशक्ति हो, जो प्रजापतियों के संयम शक्ति से रक्षित हो, ऐसे महिमान्वित एवं अप्रमेय शक्तिशाली बाण आज के युद्ध में खण्डित और पराजित हुए हैं।

विशेष : विशेधाभास अलंकार। महाशक्ति के अंक में अशंक रावण के लिए चन्द्रमा की गोद में खेलने वाले कालिमा के कलंक चिह्न का उपमान अत्यन्त सुन्दर और सटीक है।

5. क्रम-क्रम से हुए पार राघव के पञ्च दिवस,

चक्र से चक्र मन चढ़ता गया ऊर्ध्व निश्वास

कर जप पूजा कर एक चढ़ाते इन्दीवर

निज पुरवबरण इस भाँति रहे हैं पूरा कर।

संदर्भ :

व्याख्या: नित्य निरंतर तीव्र आराधना प्रक्रिया में पाँच दिन बीक चुके। योग साधना के द्वारा श्रीराम चक्र बंध कर सहस्तार तक कुण्डलिनी शक्ति को पहुंचाने में सक्षम हुए। पूजा और जप के साथ एक-एक नील कमल देवी पर चढ़ाते रहे। घंटे दिन का संकल्प करने लगे। श्रीराम के द्वारा जयति देवी मंत्र के कारण आकाश कम्पित होने लगा। उनका जय मंत्र सर्वत्र प्रतिगुन्ज्जित होने लगा। दो दिनों तक पहुंच गए। अर्थात त्रिदेव के समान शक्तिमान और महिमान्तित बन गए, पूरा ब्रह्माण्ड मानो श्रीराम के वंश में गया हो। इधर देवता गण स्तब्ध हो गये। इस प्रकार पूजा-अर्चना करते अर्चना

करते हुए श्रीराम और तीव्र ध्यान मग्न हो गए। एक ही इन्दीवर बच गया है, जिसे देवी पर चढ़ाना बाकी रह गया। व्रत की समाप्ति, आराधना की परिसमाप्ति होने का समय था, कुण्डलिनी शक्ति सहकार तक पहुंचने का शुभ समय था।

6. बुद्धि के दुर्ग पहुंचा विद्युत गति हतचेतन
राम में जगो स्मृति हुए सजग पा भाव प्रमन।
'यह है उपाय', कह उठे राम ज्यों मन्द्रित धन
कहती थीं माता मुझे सदा राजीव -नयन ।
दो नील कमल है शेष अभी, यह पुरश्चरण
पूरा करता हूँ देकर मात: एक नयन।

संदर्भ : साधना की समाप्ति के समय दुर्गा राम की पूजा का कमल चुरा कर ले जाती है। राम अपनी आँख चढ़ाकर अनुष्ठान पूरा करना चाहते हैं।

व्याख्या : यह जाप का अन्तिम भाग है - यह सोचकर राम ने दुर्गा के दोनों चरणों में ध्यान लगाया और नीला कमल लेने के लिए हाथ बढ़ाया। लेकिन उनके हाथ कुछ न लगा। राम का स्थिर मन यकायक चलायमान हो गया। उनका ध्यान भंग हो गया उन्होंने अपनी निर्मल पलकें खोली और देखा कि कलम वाला स्थान खाली पड़ा था। सोच कर कि यह जप के पूर्ण होने का समय है और आसन छोड़ने से साधना भंग हो जायगी, राम के दोनों नेत्रों में आँसू भर आये। वे अपने आप से कहने लगे, मेरे जीवन को धिक्कार है। लेकिन तुरंत उसको याद आता है कि - मेरी माता मुझे सदैव कमल जैसी आँखों वाला कहा करती थी। मेरे पास अभी तो ये दो नील कमल पुष्प शेष हैं। हे माता ! अपना एक नेत्र अर्पित करके मैं अभी इस स्त्रोत के अधिष्ठान को पूरा करता हूँ।

7. देखो राम है; सामने श्री दुर्गा; भारतर
वामपद असुर- स्कन्ध पर, चहा दक्षिण, हरि पद,

'होगी जय, होगी, जय, हे पुरुषोत्तम नवीन।'
कह महाशक्ति राम के वदन में हुई लीन।

सन्दर्भ: देवी दुर्गा राम को विजयी होने का आशीर्वाद देती है।

भावार्थ : राम ने देखा कि सामने परम तेजस्विनी श्री दुर्गा उपस्थित थीं। उनका बायाँ पैर महिषासुर के कन्धे पर था और दायाँ पैर सिंह के ऊपर टिका हुआ था। देवी का यह रूप अत्यन्त प्रकाशवान् था। उनके देशों हाथ विविध प्रकार के आयुधों से सुसब्जित थे उनके मुख पर मन्द मुस्कान थी। उनको देखकर समस्त विश्व की रूप लक्ष्मी लज्जित होती थी। उनकी सीधी ओर लक्ष्मी थी और बाँधी और सरस्वती विराजमान थी। उनकी सीधी गोदी में गणेश थे और बाँयी

ओर गोदी में उनके दूसरे पुत्र कार्तिकेय थे, जिनका व्यक्तित्व रण-कौशल युक्त था। उनके मस्तक पर शंकर विराजमान थे। श्री राघव मन्द स्वर से वन्दना करते हुए देवी दुर्गा के चरणों में श्रद्धा पूर्वक झुक गए। हे नवीन पुरुषोत्तम श्री राम ! तुम्हारी विजय होगी। तुम्हारी विजय होगी, यह कह कर वह महाशक्ति राम के मुख-मण्डल में समा गई।

अलंकार : स्वभावोक्ति, रूपक

विशेष : महाशक्ति के मात्रु पक्ष का सटीक चित्रण है।

8.6. सारांश

छायावाद के कवित्रय प्रसाद, पन्त, निराला में सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला का स्थान उनके निराला व्यक्तित्व, विशिष्ट कथ्य व नवीन शिल्प- विधान के कारण अनूठा है। काव्य सर्जना मूलत: कल्पना व्यापार है। काव्य की सम्पूर्ण साधना के लिए समर्थ कल्पना-विधान की आवश्यकता है। यह कल्पना विधान तथा भावानुभूति भाषा के माध्यम से ही अभिव्यक्ति होती है। वह एक भावुक और जागरूक कवि रहे। उसकी भाषा प्रयोग भी अत्यंत सुंदर ढंग से होती है। भाषा ही काव्य सम्प्रेषण का प्रकृत आधार है। निराला जी को कल्पना विधान, भावानुभूति का वर्णन अद्वितीय है। खड़ी बोली के काव्य को निराला ने जिन प्रशस्त, निगूड़ एवं संश्लिष्ट भाव भूमियों पर पहुँचाया, वह हिन्दी विश्व है। 'राम की शक्ति पूजा' निशला का अभिवतीय खण्डकाव्य है। इसे पौरानिक गाथा में मानवीय चेतना का निर्माण किया। इस में काव्य लेखन से संबंधित साथी तत्व पाये जाते है।

8.7. बोध प्रश्न

1. 'राम की शक्ति पूजा' काव्य का कथा सार लिखिए।

2. निराला का काव्य कौशल का वर्णन 'राम की शक्ति पूजा' के संदर्भ में विवेचना कीजिए।

3. निराला की 'भाषा' पर छोटा सा निबंध लिखिए।

8.8. सहायक ग्रंथ

1. निराला मूल्यांकन - डॉ. इंद्रनाथ मंदन

2. निराला और राम की शक्ति पूजा - डॉ. राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी

3. निराला की साहित्य साधना- डा. रामविलास शर्मा

4. कवि निराला- नंददुलारे वाजपेयी- मैरूमिलन, दिल्ली।

5. क्रांतिकारी कवि निराला- बच्चन सिंह- विश्वविद्यालय, वारणासी।

6. छायावादी कवियों का सौन्दर्य विधानः डॉ. सूर्यप्रसाद दीक्षित।

7. छायावादी काव्यः डॉ. कृष्ण चन्द्र वर्मा; मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, म.प्र.।

8. नवजागरण और छायावादः महेन्द्र नाथ राम, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली।

डॉ. एम. मंजुला

9. सुमित्रानंदन पंत

9.0. उद्देश्य

छायावादी कवियों में प्रसाद, पन्त, निराला में सुमित्रानंदन पंत का महत्वपूर्ण स्थान है। इस इकाई में पंत के बारे में पढ़ेंगे। इस पाठ को पढ़ने के बाद हम -

- सुमित्रानंदन पंत की काव्य यात्रा,
- प्रकृति चित्रण, कल्पनाशीलता,
- पंत की काव्य भाषा, सौंदर्य चेतना आदि के बारे में जान पायेंगे।

रूपरेखा

9.1. प्रस्तावना

9.2. सुमित्रानंदन पंत का जीवन परिचय

9.3. पंत की काव्य यात्रा के विविध सोपान

9.4. पंत को प्रकृति चित्रण

9.5. कल्पनाशीलता

9.6. पंत की काव्य भाषा

9.7. सौंदर्य चेतना

9.8. पल्लव की भूमिका

9.9. सारांश

9.10. बोध प्रश्न

9.11. सहायक ग्रंथ

9.1.प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य जगत में सूक्ष्म संवेदनाओं के चित्र, सत्यम व शिवम के पुजारी, सतत विकसनशील कवि के रूप में पंत जी का महत्व अक्षुण्ण है। यदि छायावादी हिन्दी साहित्य-समृद्धि, का काल है तो पंत जी इस समृद्धि में निरंतर - श्री वृद्धि करने वाले जागरूक तथा सफल कवि है। यही कारण है कि छायावाद के चार मूल स्तंभों में पंत का गौरवपूर्ण स्थान है। पंत जी का काव्य विकास हिन्दी के अनेक वादों के क्रमिक विकास का इतिहास है। किसी भी कवि के काव्य का उसके जीवन से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। अतः उसके काव्य को सही रूप से समझने में उसका जीवन परिचय अत्यधिक सहायक होता है।

9.2. पंत का जीवन परिचय

पंतजी का जन्म 20 मई 1900 ई. में अल्मोडा जिले के कौसानी नामक गाँव में हुआ था। पंत जी के जन्म के कुछ समय पश्चात इनकी माता श्रीमती सरस्वती देवी का स्वर्गवास हो गया था। माता के अनंत अभाव ने बालक पंत के मन पर गंम्भीर प्रभाव डाला। उनका गाँव अल्मोडा अपनी प्राकृतिक शोभा के लिए अत्यंत प्रसिद्ध है। वह माँ का वियोग सहने के लिए ज्यादा समय उस प्रकृति के बीच बिताते थे। प्रकृति के प्रति पंत का अनुराग, जो उनके काव्य की प्रमुखतम चेतना है, इसी नैसर्गिक एवं प्राकृतिक सौंदर्य के कारण हुआ। माँ की वात्सल्यमयी क्रोड छिन जाने पर बालक पंत को इसी प्रकृति ने अपने असीम अंचल में लेकर माँ का - सा दुलार वत्सलता प्रदान की-

"प्रकृति गोद में छिप क्रीडा प्रिय, तृण तरु की बातें सुनता मन

विरंगों के पंख पर करता, वार नीलिमा से छाया मन।"

जब पंत जो एम. ए. पढ़ रहे थे उस समय गांधी जी ने असहयोग आन्दोलन चला रहे थे। गाँधी जी की पुकार पर अपनी शिक्षा को अधूरी छोड़कर उन्होंने उसमें सक्रिय भाग लिया जिसके कारण निरंतर वे अंग्रेजी के प्रोफेसर श्री शिलाधार पाण्डेय के सम्पर्क में रहे। इसी सम्पर्क के कारण उन्हें अंग्रेजी-साहित्य के अध्ययन की प्रेरणा मिली, जिससे उन्होंने अंग्रेजी कवियों से बहुत सीखा।

पंत की कविता में प्राण देने वाला दूसरा अंश व्यक्ति उसकी असफल प्रेम और प्रेमिका। इस असफलता ने कवि पन्त को तीन रूपों में प्रभावित किया। पहला यह कि इससे कवि में भाव-प्रवणता आई और उसकी कविता आदि कवि की भाँति ही फूट निकली।

"वियोगी होगा पहला कवि आहे से उपजा होगा गान,

उमड़ कर आँखों से चुपचाप, वही होगी कविता अनजान।"

दूसरा यह कि कवि को नारी के प्रति अपना दृष्टिकोण, स्थिर करने का अवकाश मिला। तीसरी बात यह है कि इससे कवि की चिन्तन-वृत्ति को प्रेरणा मिली। आगे चलकर वह भले ही अपने चिन्तन के गहनतम आवरण में इस कलंक को छिपाने में सफल हुआ है, किन्तु उस चिन्तन के जन्म में इस असफल प्रेमका कितना हाथ है, वह भुलाया नहीं जा सकता।

पंत जी का मृत्यु अकस्मात हृदय-गति रुक जाने से 28 दिसम्बर 1977 को रात के समय इलाबाद में हो गया।

9.3. पंत की काव्य यात्रा के विविध सोपान

1. विकसनशील कवि: पन्त जी विकसनशील कवि माने जाते हैं। अध्ययन, मनन, चिंतन व अनुभूतियों की विविधता ने पन्त की चिन्तनशीलता को सदैव प्रभावित किया। पन्त पर एक ओर गाँधीवाद व मार्क्सवादी दर्शनों का प्रभाव पड़ा तो दूसरी ओर उपनिषदों, रामकृष्ण परमहंस व विवेकानन्द के उपदेशों व अरविन्द दर्शन से प्रभावित हुए। कवि पन्त के मानस को यूरोप की रोमान्टिक कविता धारा के कवियों- यथा वर्डस्वर्थ, कीट्स, शैली, बायरन आदि ने प्रत्यक्षत: तथा फ्राँस व रूम की क्रान्तियों ने अप्रत्यक्षतः प्रभावित किया। दूसरी ओर पन्त जी किसी भी विचारधारा - विशेष से दुराग्रह पूर्वक जुड़े नहीं थे अत: उनकी वैचारिक विकास की गति को कोई भी व्यवधान रोक नहीं पाया।

वस्तुतः कवि का मानस एक ऐसा पात्र होता है जिसमें अलग-अलग समय पर विविध अनुभूतियाँ, विचार, अनुभव, संवेदनाएँ आदि आकर गिरते रहते हैं, तथा अन्ततः कवि के व्यक्तित्व के अनुरूप थे सारे तत्व आपस में संयोजित होकर एक नवीन कलाकृति के रूप में अद्भूत होते हैं। पन्त जी पर भी यह बात अक्षरशः लागू होती हैं। कवि पन्त का मन भारतीय संस्कारों में पगा, सौन्दर्य पिपासु, सत्य का जिज्ञासु व शिवत्व की उत्कट भावना से निर्मित हुआ था। अतः था। अतः मार्क्सवादी भारतीय आध्यात्मा की ओर लौट आयें। कवि पंत अपने काव्य की प्रेरणा दो बातों को बताते हैं- प्रकृति और पूर्ववर्ती कवियों का प्रभाव। उन्हें कविता करने की प्रेरणा सबसे पहले प्रकृति ल से मिली है। स्वयं पंत कहता है-"मेरे किशोर प्राण मूक कवि को बाहर लाने का सर्वाधिक श्रेय मेरी जन्मभूमि के उस नैसर्गिक सौन्दर्य को है जिसकी गोद में पलकर मैं बड़ा हुआ है।" पूर्ववर्ती कवियों का प्रभाव के वार्ड में वे कहते हैं-"जैसे एक दीपक दूसरे दीपक को जलाता है इसी प्रकार द्विवेदी - युग के कवियों की कृतियों ने मेरे हृदय का अपने सौन्दर्य से स्पर्श किया और इसमें एक प्रेरणा की शिखा जगा दी।"

पन्त जी का समय काव्य सत्यम्, शिवम, सुन्दरम बन तीन तत्वों के समन्वय की विराट चेष्टा का काव्य हैं। जीवन व जगत् के स्थूल सत्य अथवा यथार्थ के बदले पन्त जी ने चिरन्तन सत्य की खोज 'शिवत्व मंगल कामना' के माध्यम से की। इस सत्य की अनुभूति जगत् के साई प्राणियों के प्रति आत्मबोध के भाव से ही उत्पन्न हो सकती है।

पन्त जी का कृतित्व: पन्त जी के कृतित्व का पार अत्यंत विस्तृत है सन् 1918 से सन् 1977 ई. तक मृत्यु पर्यन्त वे लगातार लिखते रहे। अर्थ शताब्दी से अधिक समय तक साहित्य रचना करके हिन्दी साहित्य को अपने विपुल कृतित्व से समृद्ध किया। पंत के कृतियों को तीन भागों में बाँटा जा सकता है।

1. प्रकृति का कवि: प्रकृति के सौन्दर्य से अभिभूत होकर ही पन्त जी के काव्य का प्रस्फुटन हुआ। मातृ वियोग पंत कही प्रकृति को मातृ रूप में देखा तो कहीं रहस्य से भरी चेतन सत्ता के रूप में देखा। कहीं पर प्रकृति के पल-पल परिवर्तित स्वरूप को देखकर अभिभूत हो उठा तो कहीं उसके रहस्यों को जानने को जिज्ञासु हो उठा। पंत ने प्रकृति को एक ऐसी चेतना के रूप में ग्रहण किया आ जो अपने शीतल स्पर्श से मानव के धावों को भर देती है, उसके सुख- दुख- दर्दों को दुलाराती है। प्रकृति पंत के लिए आराध्य ही नहीं शरण स्थली भी है। पंत के इस युग की रचनाएँ वीणा (1918) ग्रन्थी (1920) पल्लव (1922-1926), गुंजन (1926-32) ज्योत्सना (1934) तथा युगान्त (1935) हैं। 'वीणा' का प्रकृति सौंदर्य आदर्श भावना युक्त है तो 'ग्रन्थि' का मानवीय सम्वेदना युक्त। 'पल्लव' की कविताओं में प्रकृति के रहस्यात्मकता का एक सीना परदा मिलता है। वहीं 'गुंजन' में आकर कवि चिन्तन-प्रधान हो जाता है। 'पल्लव' से गुंजन तक का दस वर्षों का समय कवि के उपनिषदों के अध्ययन- मनन का समय रहा। इसी कारण पल्लव पूर्व की रचनाओं में जिज्ञासा, अनुभूति; आभास तथा संकेतों का प्रधान स्थान रहा 'आता साधना' का नहीं। 'गुंजन' की कविताओं यथा 'सन्ध्या तारा' या 'नौका-विहार' में यह आत्म साधना था 'आत्म दर्शन' का तत्व दिखलाई देता है। पन्त जी की कल्पना व आदर्शवादिता की सर्वातिशयता 'ज्योत्सना' में देखी जा सकती है। पन्त जी के स्वभाव को कोमलता, प्रकृति की कमनीयता, कला की समर्थता, सुधारवादिता, आदर्श यूटोपिया आदि सब कुछ इस प्रतीकात्मक नाट्य कृति में देखा जा सकता है।

इस प्रकार पन्त जी क्रमशः प्रकृति से मानव को ओर बढ़ते हैं। समाजवादी विचारधारा का कवि सन् 1932 के लगभग कवि ने अपनी किसी सम्बन्धी से प्रेरित होकर मार्क्सवादी दर्शन का अध्ययन आरम्भ किया। इस अध्ययन से पन्त जी की विचारधारा गहराई से प्रभावित हुई। कवि ने 'युगान्त', 'युगवाणी' व 'ग्राम्या' में मार्क्सवाद से प्रभावित होकर कई कविताएँ लिखी। मार्क्स के राजनीतिक दर्शन को पन्त जी ने भावनात्मक तथा मानवीय धरातल पर स्वीकार

किया। मार्क्स ने 'सम-समाज' की स्थापना का विचार दिया धर्म व ईश्वर की सता को नकार कर उसके स्थान पर मानव को प्रतिष्ठित किया। शोषण से मुक्ति, नारी-मुक्ति, किसानों तथा श्रमिकों का उद्धार तथा पूँजीपतियों का विनाश जैसी बातें मार्क्सवाद न वैज्ञानिक ढंग से समझाई। उसने पीड़ित, दलित, शोषित, उपेक्षित मानव जाति का पक्ष लिया तथा विश्वभर के श्रमिकों का आह्वान किया। पंत पर इस मार्क्सवाद का प्रभाव पढ़ा। मार्क्सवाद के अध्ययन ने कवि को एक नवीन दृष्टि प्रदान की। उसने जीवन, जगत् व मानव को नयी दृष्टि से देखा तथा मार्क्सवादी विचारधारा को मानव मुक्ति का आधार माना। पंत जी के युगान्त (1935) भुगवाजी (1948) ग्राम्य (1940) आदि यथार्थवादी - समाजोन्मुखी चेतना की और उन्मुखता के दर्शन है। 'युगान्त' वस्तुतः एक युग का अन्त है। कल्पना के इन्द्रधनुषी लोक, कोमल अनुभूतियों तथा स्वप्न जगत के अन्त की सूचना है। एक नये यथार्थ बोध का सूत्रपात है।

'युगान्त' से लेकर 'ग्राम्य' तक की कविताओं में कवि कल्पना लोक से यथार्थ की ओर आता हुआ दिखाई पड़ता है। जो कवि अभी तक सौन्दर्य - स्वप्नों के रमणीय रहस्यलोक, प्रकृति तथा नारी - जगत में विचरण कर रहा था, वह मानों जब आँखें खोलकर यथार्थ की धरती पर उतर आया है। 'ग्राम्य' में कवि पहली बार गाँवों में रह रहे किसानों- श्रमिकों के दुःख- दैन्य का यथार्थ चित्रण करता है। शोषित के ग्रामीणों के प्रति सहानुभूति ही नहीं व्यक्त करता प्रत्युत प्रगतिवाद की सही रूप रेखा प्रस्तुत करता है। 'ग्राम्य' में मार्क्सवादी दृष्टि का प्राधान्य रहने के बावजूद पंत जी के अन्तर्गत में आध्यात्मिक में व्यक्ति की चेतना की परिणति हो ऐसी लालसा दिखलाई पड़ती है। जड़वाद व चेतनबाद के सामंजस्य के लिए प्रयत्नशील दिखलाई पड़ते हैं। अतः प्रगतिवाद के प्रथम कवि होकर भी पंत जी पूर्णतः मार्क्सवादी नहीं हो सके।

आध्यात्मवादी - अरविन्द दर्शन : श्री अरविन्द घोष इस युग के महान भारतीय साधक, कवि व दार्शनिक थे। अरविन्द दर्शन वस्तुतः भारतीय व पाश्चात्य दर्शनों का समन्वय है जो दिव्य मानव की विकासवादी व्याख्या प्रस्तुत करता है। उनके ग्रंथ 'भागवत जीवन' का पन्त पर गहरा प्रभाव पड़ा। सन् 1959 में पन्त जी ने अरविन्द महाकाव्य 'सावित्री' पढ़ा। कवि की सौन्दर्य धारणा को एक नया आयाम प्राप्त हुआ। पंन्त जी के परवर्ती काव्य में मानव चेतना के विकास की रूप रेखा का आधार अरविन्द दर्शन बना। वह स्वयं कहते हैं कि अरविन्द को मैं इस युग की अत्यन्त महान और अतुलनीय विभूति मानता हूँ। उनके जीवन दर्शन से मुझे पूर्ण सन्तोष हुआ। विश्व कल्याण के लिए मैं श्री अरविन्द की देन को इतिहास की सबसे बड़ी देन मानता हूँ। उसके सामने इस युग के वैज्ञानिकों की अणु-शक्ति की देन भी अत्यन्त तुच्छ है। 'स्वर्ण किरण (1944-45) स्वर्ण धुनि (1986-43) उत्तरा (48) रजत शिखर (1951) शिल्पी, सौवर्ण, अतिमा, वाणी, कला और बूढ़ा चाँद, लोकायतन आदि 1994 से लेकर 1974 तक लिखे गए आध्यात्मिक रचनाएँ हैं। इन रचनाओं में कवि अन्तर्मुख हो उठा। थे रचनाएँ चेतना के धरातल पर लिखी गई। प्रकृति अब कवि के लिए सौन्दर्य वर्धन का उपादान मात्र न होकर 'प्रतीक विधान' बन गई।

इस प्रकार पन्त जी की काव्य-यात्रा प्रकृतिशे प्रारम्भ होकर आध्यात्मक पर समाप्त हो जाती है। मार्ग में वे गांधी, मार्क्स, विवेकानन्द, उपनिषद् आदि दर्शनों को समाहित करते चलते हैं। विषय वस्तु के अनुरूप ही पन्त जी की भाषा-शैली व अभिव्यंजना विधान में भी काफी नवीनता का समावेश होता गया।

9.4. पंत का प्रकृति चित्रण

मानव संवेदना का प्रकृति से गहरा सम्बन्ध है। इसी कारण प्रकृति और साहित्य को भी एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। विश्व की प्रत्येक भाषा के व्याहित्य में प्रकृति चित्रण स्वाभाविक रूप से मिलता है। हिन्दी

कविता में भक्तिकाल व रीतिकाल में जहाँ प्रकृति-चित्रण उद्दीपन रूप में ही आया, वहीं द्विवेदी युग में प्रकृति चित्रण का स्थूल बाहरी स्वरूप ही स्पष्ट हुआ। छायावादी कविता में प्रवृत्ति का चित्रण सूक्ष्म, सौन्दर्य पूर्ण तथा विविधता पूर्ण ढंग थे होने लगा। प्रकृति की सूक्ष्म संवेदनाओं को मानवीय अनुभूतियों से जोड़कर देखा जाने लगा। जहाँ प्रसाद, निराला व महादेवी वर्मा ने प्रकृति में दार्शनिक व आध्यात्मिक अनुभूतियों के दर्शन किये वहाँ पन्त जी ने प्रकृति को उसकी समग्रता में ग्रहण कर, उसको विविधता पूर्ण दृष्टि से चित्रण किया। प्रकृति का आलम्बन, मानवीकरण आदि के रूप में चित्रण हुआ। छायावादी कवियों में सौन्दर्य प्रियता, सौन्दर्यानुभूति और सौन्दर्य के प्रति तीव्र व्याकुलता के दर्शन होते हैं। प्रकृति के प्रति उनका दृष्टिकोण सौन्दर्य व आश्चर्य का रहा। उन्होंने प्रकृति पर मानवीय भावनाओं का आरोप किया और उसके सन्निकट पहुँचने का प्रयत्न किया।

पंत का प्रकृति के साथ अविच्छिन्न सम्बन्ध है। प्रकृति चित्रण के संदर्भ में प्रकृति के प्रसंग मात्र में से पंत जी व अपने रचयिता के साथ आँखों के सामने आ जाता है। पंत और प्रकृति का यह सम्बन्ध केवल कवि जीवन का ही साथ नहीं है, बल्कि शैशव का संग है। माँ की मृत्यु के बाद प्रकृति ने ही पंत को अपनी गोदी में लिया था। -

"जो बाल सहचारी रही तुम्हारी, स्वप्न वा प्रिया,

जो कला मुकुर बन गई तुम्हारे हाथों में-

तुम स्वप्न धनी हो जिसके बने अमर शिल्पी।"

इन पंक्तियों से यह स्पष्ट होता है कि जीवन के प्रत्येक पहलू में प्रकृति के साथ रही है। इस प्रकार पंत और प्रकृति एक- दूसरे के पूरक से बन गये है। पन्त की काव्य प्रेरणाओं में प्रकृति एक प्रमुतम प्रेरणा है। स्वयं कवि पंत ने कहा कि "कविता करने की प्रेरणा मुझे सबसे पहले प्रकृति - निरीक्षण से मिली है; जिसका श्रेय मेरी जन्मभूमि कूर्माचल प्रदेश को है। प्रकृति निरीक्षण और प्रकृति-प्रेम मेरे स्वभाव के अभिन्न अंग ही बन गये है, जीनसे मुझे जीवन के अनेक संकट क्षणों में अमोध सान्त्वना मिली है।"

पंत का प्रकृति के प्रति दृष्टिकोण: अपने प्रकृति विषयक दृष्टिकोण को प्रकट करते हुए पन्तजी 'आधुनिक कवि' के 'पर्यालोचन' में लिखते हैं- 'साधारणतः प्रकृति के सुन्दर रूप ही ने मुझे अधिक लुभाया है, पर उसका कारण भी मैंने

'परिवर्तन' में चित्रित किया है। "इस उद्धरण से स्पष्ट है कि पंत को प्रकृति का सुन्दर रूप ही अधिक आकर्षक लगा है और उसी का उन्होंने अपने काव्य में प्रयोग भी किया है। प्रकृति का मंजुल रूप पन्त के काव्य का प्रतिनिधित्व करता है। विभिन्न रूप: पन्त जी ने प्रकृति का वर्णन विभिन्न रूपों में किया हैं जिनमें से प्रमुख थे हैं-

अ) आलंबन रूप: जब प्रकृति में किसी प्रकार की भावना का अध्याहार न करके प्रकृति का ज्यों का त्यों वर्णन किया जाता है तो वह आलंबन रूप होता है। पन्त जी के काव्य में इस प्रकार का वर्णन काफी मिलता है।

आ) उद्दीपन विभाव: जब प्रकृति का उपयोग भावनाओं को उद्दीप्त करने के लिये किया जाता है तो वह उसका उद्दीपन रूप होता है। इस रूप में प्रकृति का वर्णन बहुत ही अधिक हुआ है। विरह काव्य तो बिना इस रूप के चल ही नहीं सकते।

"धधकती है जल्दों से ज्वाल

बन गया नीलम व्योम प्रबाल;

आज सोने का संध्याकाल

जल रहा जंतुगृह- सा विकराल।"

(इ) आलंकारिक रूप: इस रूप में प्रकृति का उपयोग अलंकारों के स्थान पर किया जाता है। पन्त जी ने भी ऐसा ही किया है-

"मेरा पावस वातु - जीवन,

मानस - सा उमड़ा अपार मन,

गहरे धुंधले, धुले साँवले

मेघों से मेरे भरे नयन !"

(ई) पृष्ठभूमि के रूप में: भावनाओं को अधिक प्रभावोत्पादकता प्रदान करने के लिए प्रकृति का पृष्ठभूमि के रूप में भी वर्णन किया जाता है। पन्त काव्य में ऐसे असंख्य पद है जहाँ इत्य रूप का प्रयोग किया गया है। 'ग्रन्थि', 'एक तारा' 'नौका बिहार' आदि कविताएँ इसी रूप के उदाहरणार्थ प्रस्तुत की जा सकती है।

(उ) रहस्यात्मक रूप: प्रकृति में रहस्य-भावना का आरोप करना छायावाद विशेषता है। पन्त में भी यह भावना की प्रमुख उपलब्ध होती है। यथा-

"क्षुब्ध जल शिखरों को जब बात सिन्धु में मथकर फेनाकार

बुलबुलों का व्याकुल संसार बना, विद्युरा देनी अज्ञात ;

(ऊ) दार्शनिक उद्भावना: प्रकृति के माध्यम से दर्शन को अभिव्यक्ति करना इसी रूप के अन्तर्गत आता है। पन्त की नौका- बिहार, एक तारा आदि कविताएँ इसी रूप का उदाहरण है।

(ऋ) मानवीकरण: प्रकृति में चेतन सत्ता का आरोपण ही मानवीकरण कहलाता है। छायावादी काव्य ने प्रकृति को एक चेतन सत्ता के रूप में ही देखा है, जड़ के रूप में नहीं। यही कारण है कि छायावाद प्रकृति के इस रूप को विशेषतः अपनाकर चला है। 'सन्ध्या' कविता में कवि ने सन्ध्या को एक नवयुवती के रूप में चित्रित किया है-

"हो, तुम रूपसि कौन?

व्योम से उतर रही चुपचाप

छिपी निज छाया छवि में आप,

सुन्हला फैला केश - कलाप

मधुर, मंथर, मृदु, मौन।"

(5) नारी रूप: कृति का कोमल रूप ग्रहण करने के कारण ही पन्त जी ने प्रकृति को नारी रूप में भी देखा है। 'चाँदनी' कविता में वे चाँदनी का वर्णन इस प्रकार करते हैं -

"नीले नभ के शतदल पर वह बैठी शारद - हासिनी

मृदु करतल पर शशि मुख घर नीरव अनिमिष, एकाकिनी।"

(ए) उपदेशात्मकता - उपदेश के लिए प्रकृति का प्रयोग काफी पुराना है। गोस्वामी तुलसीदास भी जब वर्षा ऋतु का वर्णन करते है तो इसी प्रणाली को अपनाते हैं। किन्तु छायावादी कवियों ने अधिक प्रभाव - प्रवणता के साथ इस रूप का प्रयोग किया है। जीवन और यौवन की नश्वरता प्रकृति के माध्यम से व्यक्त करते हुए कवि पन्त कहते हैं-

"वही मधु ऋतु की गुंजित डाल झुकी थी जो यौवन के भार

अकिंचनता - में निज तत्काल सिहर उठी जीवन है भार।"

इस प्रकार हम देखते है कि कवि पन्त ने प्रकृति का प्रयोग अनेक रूपों व अनेक शैलियों में किया है। कवि के काव्य में कहीं प्रकृति काव्य के मूलाधार के रूप में आलम्बन बनकर आई है तो कहीं उससे साधन उद्दीपन रूप में। प्रकृति ही कवि पन्त की वाणी है, भाषा है, अलंकृति है और विचारधारा है। पन्त जी के विचारों का सारा कोष भावनाओं का सारा वैभव और सौन्दर्य का सारा आह्लाद मानो उन्हें प्रकृति से ही प्राप्त हुआ।

9.5. कल्पनाशीलता

पंत प्रकृति के सुकुमार कवि है, सफल गीतकार है। पंत की काव्य कला अनुपम है, पंत की भाषा में सरलता भावों की सरसता सर्वत्र विद्यमान है। पंत की काव्यों में कल्पना सर्वत्र विद्यमान रहती है। साहित्य के राग तत्व, कल्पना तत्व, बुद्धि, तत्व आदि में कल्पना का सर्वाधिक महत्व स्वीकार किया गया है, जिसके सहारे वह अपनी कृति में प्रत्यक्ष एवं परोक्ष जीवन तथा जगत के मानसिक चित्र अंकित करता है। यह कल्पना कवि की रचना को मार्मिक एवं सजीव बनाया करती है। अतएव काव्य में भावों का सृष्टि, परिवृष्टि एवं सहृदयों के रसानुभूति के लिए कल्पना शक्ति का अति आवश्यक है।

पंत की संपूर्ण कविता का मेरुदण्ड उनकी कल्पना शक्ति है। उनकी यह कल्पना शक्ति अद्वितीय है। वह नूतन सृष्टि का द्योतक है।

अपनी इसी अनुपम एवं अप्रतिम कल्पना के साथ ही पंत ने प्रकृति की अत्यंत मनोरम झंकियाँ अंकित की हैं। पंत ने कल्पना के बलबूत पर प्रकृति के अलौकिक सौंदर्य को अनुपम सुकुमारता के साथ काव्य के अंग-अंग में समाई है। पंत प्रकृति की प्रत्येक घड़कन को सुना है, उसे खुली आँखों से देखा है। कवि के हृदय में प्रकृति के प्रति इतना प्रेम है कि वह उसके अनन्य पुजारी बन गया है। इसलिए कवि ने अपनी कल्पना से जोड़कर आरम्भिक कविताओं में प्रकृति के चिर सुन्दर, चिर - सुकुमार एवं चिर-संचेतन के सुन्दर-सुन्दर चित्र अंकित करके खड़ी बोली कविता में प्राकृतिक सौन्दर्य के चित्रण की एक अद्भुत एवं नूतन प्रणाली का श्री गणोश किया है। प्राकृतिक चित्रण के संबंध में कवि ने स्वयं लिखा है- "उषा, संध्या, फूल, कोमल कलख, मर्मर, ओसें के वन और सौन्दर्य के अनेक संघ- स्फूट उपकरणों से प्रकृति की मनोरम मूर्ती रचकर मेरी कल्पना समय समय पर उसे काव्य मन्दिर में प्रतिष्टित करती रही।" इसी कारण कवि की कोमल कल्पना का आश्रयपरक पर्वत, निर्झर, तुषार, चाँदनी बादल आदी सभी अद्वितीय सौन्दर्य से ओत-प्रेत हो गए हैं और कवि ने प्रकृति पर दिव्य नारी की सुकुमार छवि का आरोप करके उसके मनोरम रूपों को अपने काव्य के शब्दचित्रों से सुसज्जित किया है, कवि पर्वत की सुकुमार छवि को अंकित करता हुआ उस पर प्रेमी का आरोप करके अपनी कोमल कल्पना का अत्यन्त सजीव परिचय दे रहा है -

खाँचि रचीला भ्रू - सरचाप, शैल की युधि यो बारम्बार,

हिला हरियाली का सुदुकूल, झुला का झलमल हाट,

जलद- पर दिखाला मुख - चन्द्र, पलक पल-पल चपला के मार,

उग्र उर पर भूधर- सा हाथ, सुमुखि घर देती है साकार।

वस्तु वर्णन में कल्पना भी कवि की कोमल कल्पना अत्यंत सजीव हो उठी है। पंत ने जिस वस्तु का वर्णन किया है, अपनी कल्पना से उसे अधिक सुकुमार, संजीव एवं सहज सौन्दर्य से ओत-प्रोत कर दिया है। पल्लव के इन पंक्तियों को यह इस कल्पना को देख सकते हैं-

दिवस का इनमें प्रसार, उषा का स्वर्ण सुहाग

निशा का तुहीन अश्रु - श्रृंगार सांस का निःस्वान राग

नवोदा की लज्जा सुकुमार तरुणामत सुन्दरता की आग।

'ग्रंथि' में कवि की इस पुकार में अत्यधिक कोमलता, भावुकता एवं संवेदना भरी हुई है। कवि का दिल सहसा टूट जाता है और निराशा एवं हताश होकर गम्भीर पीड़ा एवं वेदना के साथ करता है—

शौवलिनि: जाओ मिलो तुम सिन्धु से,

अनिल ! आलिंगन करो तुम गगन का।

चन्दिके! चूम तरंगों के अधर,

उडुगणो ! गाओ मधुर वीणा बजा।

पर हृदय ! सब भाँदि तू कंगाल है।

9.6. काव्य भाषा

काव्य सर्जना मूलतः कल्पना व्यापार है। काव्य की सम्पूर्ण साधना के लिए समर्थ कल्पना- विचार की आवश्यकता है। यह कल्पना विधान तथा भावानुभूति भाषा के माध्यम से ही अभिव्यंजित होती है। अतः भाषा ही काव्य सम्प्रेषण का प्रकृति आधार है। पन्त जी भाषा को केवल विचाराभिव्यक्ति का साधन न मानकर उसके संस्कृत और अलंकृत रूपों को भी मान्यता देते हैं। 'पल्लव' की भूमिका इस कथन की साक्षी है, जिसमें उन्होंने शब्दों की प्रकृतियों का सूक्ष्म विश्लेषण किया है। इसलिए पन्त जी अपनी भाषा के प्रति सदैव सतर्क और सशक्त है। जगरूक रहे हैं। यही कारण है कि उनकी भाषा अत्यन्त समृद्ध और सशक्त है। यह कहना अनुचित न होगा कि खड़ी बोली को ब्रजभाषा - जैसी मधुरता प्रदान करने में पन्त जी का प्रमुख हाथ रहा है। पंत जी की भाषा की विशेषताएँ इस

प्रकार है-

चित्रण शक्ति: शब्दों के माध्यम से प्रतिपद्य का इस प्रकार वर्णन करना कि उसका चित्र ही पाठकों की आँखों के सामने झूलने लगे, भाषा की चित्रण शक्ति कहलाती है। यह चित्रण दो प्रकार से किया जाता है - स्थिर चित्रण के रूप में और गत्यात्मक सौन्दर्य के रूप में। पन्त जी के काव्य में ये दोनों प्रकार मिलते हैं।

स्थिर चित्रण का एक उदाहरण

"अरे वह प्रथम मिलन अज्ञात,

निकवि विकसित 32 मृदु, पुलकित गात

सशक्ति ज्योत्सना - सी चुपचाप

जहित पद, नमित पलक दृगपात। "

इन पंक्तियों में उन युवती का वर्णन है जो सुहाग-रात में प्रथम बार अपने पति के पास जाती है। उसका हृदय स्पंदित हो रहा है, फिर भी प्रिय- मिलन की प्रसन्नता से समस्त शरीर पुलकायमान है। वह कुछ शंकाकुला भी है। नारी सुलभ लज्जा के कारण उसके पैर आगे बढ़ते ही नहीं, मानो वे पृथ्वी में ही जड़ दिये हैं और पलकें नीचे की झुकी हुई हैं ।

गत्यात्मक सौन्दर्य का चित्र इस प्रकार है:-

"बाँसों का झुरमुट सन्ध्या का झुटमुह

हैं चहक रही चिड़ियाँ टी- वी- ही टुट्छुट।"

'बाँसों का झुरमुट' वन का प्रतिनिधित्व करता है। 'संध्या का झुरमुट' कहकर कवि ने संध्या कालीन उस वातावरण की ओर संकेत किया है जो अभी रात्रि की कालिमा में मिला तो नहीं है, पर धुंधला अवश्य पड़ गया है। टीवीटी टुट्छुट में चिड़ियों के लघु आकार का भी बोध होता है और उनकी असीम उल्लास के साथ इधर-उधर कूदने - फाँदने का भी। इस प्रकार कवि ने अत्यल्प शब्दों में ही संध्या के समस्त वातावरण को उपस्थित कर दिया है।

चित्रमय विशेषण: संश्लिष्ट योजना करते करते जब कवि को काफी अभ्यास हो जाता है तो उसकी परिधि सीमित हो जाती है; अर्थात वह फिर वाक्यों का कार्य विशेषणों से लेने लगता है। पन्त जी के चित्रमय विशेषणों की विशेषता यह है कि वे ऐसे सचित्र विशेषणों का चयन करते हैं कि एक ही विशेषण समूचे वातावरण को साकार करने में सफल हो जाता है।

"वही मधुऋऋतु की गुंजित डाल, झुकी थी जो यौवन के भार।

अकिंचनता में निज तत्काल, सिहर उठती - जीवन है भार।"

इन पंक्तियों में 'गुंजित' विशेषण ध्यान देने योग्य है। इससे एक ऐसी शाखा का बोध होता है जो फूल - फलों से भलीभाँति लदी हुई है और जिस पर सौरभ- लुब्धक भौंर मंडरा रहे हैं। इतना भाव कवि ने केवल एक ही विशेषण में भर दिया है।

शब्दों की अन्तरात्मा का ज्ञान - पन्त जी को शब्दों की अन्तरात्मा का विशद ज्ञान है। वे भली प्रकार जानते है कि कौन-सा शब्द किस अर्थ और ध्वनि का बोध कराने में सक्षम है। यहाँ तक कि वे पर्यायवाची शब्दों में भी बड़ी गंभीरता से अन्तर स्थापित कर देते हैं। पन्त जी का मत है कि कवि को शब्दों की इस अन्तरात्मा का ज्ञान होना चाहिए और वह इन्हें भी भली प्रकार परख कर प्रयुक्त करे क्यों कि- "कविता के लिए चित्र - भाषा की आवश्यकता पड़ती है। उसके शब्द सहबर होने चाहिए, जो बोलते हों, जो अपने भाव को अपनी ही ध्वनि में आँखों के सामने चित्रित कर सकें, जो हांकार में चित्र और झंकार हो।"

उदा : **"अरी सलिल की लोल नि हिलोर, आ मेरे भृदु अंग झकोर।**

नयनों को जिला छवि में बोर, मेरे डर में भर यह शेर!"

2. "अनिल - पुलकित खर्णांजल लोल,

मधुर नूपुर-ध्वनि खग-कुल शैला ।"

3. **"प्रिय - प्रिय विषद यह अपना,**

प्रिय प्रि आह्लाद रे अपना ।"

इन अंतिम पंक्तियों में 'प्रि' शब्द का प्रयोग अत्यन्त ही भाव -व्यंजक है; क्योंकि आह्लाद में पृथक् रहने पर हृदय को खिला देने को जो शक्ति है, वह प्रियाह्लाद में नहीं।

वर्ण परिज्ञान: इसे अंग्रेजी में 'सेंस ऑफ कलर' कहते हैं। जिस प्रकार सफल कवि के लिए शब्दों की अन्तरात्मा का ज्ञान होना आवश्यक है, उसी प्रकार वर्ग- परिज्ञान थी। पन्त की 'आँसू' कविता का एक उदाहरण इस प्रकार है-

"देखता हूँ जब पतला इन्द्र धनुषी हलका,

रेशमी घूँघट बादल का खोलती है कुमुद-कला।"

इन पंक्तियों में इंद्रधनुष के विविध हल्के रंगों जैसा रेशमी बादल के घूंघट से झाँकता हुआ कुमुद्र - कला के सदृश सुन्दर मुख अत्यन्त शोभायुक्त एवं भाव व्यंजक बन गया है। रंगों की यह मिलावट एक बार की है और पृथक-पृथक भी

है।

ध्वनि चित्रण: भाव और भाषा के सामंजस्य से तथा स्वरैक्य के द्वारा पन्त जी ध्वनि-चित्रण करने में भी अत्यन्त कुशल है। वे ध्वनि के द्वारा ही वर्णित विषय को देते हैं।

"विरह विश्व अहह कराहते इस शब्द को।"

में 'है' की ध्वनि आवृत्ति से ऐसा ज्ञात होता है जैसे कोई सचमुच री अपनी मार्गान्तिक पीड़ा से कराह रहा हो।

इस प्रकार यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि पन्त जी की भाषा अत्यन्त सजीव एवं समृद्ध हैं।

व्याकरण:

भाषा और व्याकरण का अटूट सम्बन्ध हैं। यदि भाषा व्याकरण को जन्म देती है तो व्याकरण भाषा को शुद्ध और परिमार्जित करके उसकी जीवन-शक्ति को बनाये रखता है। छायावादी कवियों को खड़ी बोली का परिमार्जन करके उसे उच्च स्थान पर प्रतिष्ठित करना था, इसलिए वे व्याकरण के बंधनों को तोड़ने के लिए विवश हुए। पन्त जी के काव्य में यह स्वच्छन्दता अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में परिलक्षित होती है। वे भावों को अधिक महत्व देते हैं। यदि व्याकरण उनकी भावाभिव्यंजना में बाधक सिद्ध होता है तो वे बिना किसी झिझक के उसका बहिष्कार कर देते हैं। प्रायः लिंगों के सम्बन्ध में पन्त जी ने हिन्दी व्याकरण को नहीं माना है। यथा-

"इस तरह मेरे चितेरे हृदय की, बाह्य प्रकृति बनी चमत्कृत चित्र थी,

सरल शैशव की सुखद सुधि सी वटी, बालिका मेरी मनोरम मित्र थी।"

यहाँ मित्र शब्द का प्रयोग पुलिंग के स्थान पर स्त्रीलिंग में किया गया है।

मुहावरे एवं कहावतें - पन्त जी की भाषा संस्कृत - तत्सम प्रधान है, अतः उसमें मुहावरों एवं कहावतों का प्रयोग 'नहीं' के बराबर है। जो कहावतें अभी भी हैं, उन्हें पन्त जी ने ज्यों-की- त्यों न रखकर अपनी भाषा के अनुकूल गढ़ लिया है। यथा-

"यह अनोखी रीति है क्या प्रेम की
जो अपांगों से अधिक है देखता,
दूर होकर और बढ़ता है तथा
वारि पीकर पूछता है घर सदा।"

इसमें अन्तिम पंक्ति में एक कहावत का प्रयोग है। वस्तुतः कहावत इस प्रकार है- 'पानी पीकर जात पूछना'- परन्तु पन्त जी ने इसे अपनी भाषा के अनुकूल बनाकर प्रयुक्त किया है।

कहावतों की भाँति मुहावरों का प्रयोग भी पन्त की भाषा में कम ही मिलता है, परन्तु जहाँ भी उन्होंने उनका प्रयोग किया है, वहाँ वे भावों को बहुत ही भावपूर्ण बना देते हैं।

अरे वे अपलक चार नयन
आठ आँसू रोते निरुपाय !

विचित्र प्रयोग

पन्त जी की भाषा में कुछ विचित्र प्रयोग भी मिलते हैं। उदाहरण के लिए 'मनोज' शब्द लिया जा सकता है। इसका रूढ़ि अर्थ कामदेव है, परन्तु कवि ने मन से उत्पन्न व्युत्पत्ति अर्थ में ही गाँधी जी के लिए इसका प्रयोग किया है-

"तुम आत्मा के मन के मनोज!"

इसी प्रकार 'अछूत' का प्रयोग भी विचित्र है-

"छू अमृत स्पर्श से है अछूत!"

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि भले ही पन्त की भाषा में व्याकरण विषयक त्रुटियाँ हों अथवा शब्दों के विचित्र प्रयोग हो, किन्तु उनकी भाषा युग- परिवर्तिनी भाषा की भाँति सशक्त है।

9.7. सौंदर्य चेतना-

काव्य के लिए शिव और सत्य जितने ही अनिवार्य तत्व माने जाते हैं। उतना ही अनिवार्य सुन्दर तत्व भी है। इसलिए सत्काव्य वही माना गया है जो सत्यं शिवं और सुन्दर से परिपूर्ण हो। पंत के काव्यों में सुन्दर के तत्व का प्राचुर्य है। पंत की सौन्दर्य चेतना को समझने के लिए उसे का विकास और स्वरूप को जानना चाहिए। पंत के बचपन में माँ की गोंद छिन जाने पर प्रकृति माँ ने कवि को अपनी गोद ले ली। तब से पंत के जीवन में सुन्दरता के बीजवपन हो गये। प्राकृतिक सौंदर्य उनकी सौन्दर्यानुभूति का प्रथम चरण है। कवि इस सौंदर्य ने इतना आकर्षित किया कि वह नारी के सुन्दरतम आकर्षक को भी उसके प्रति न्यौछावर कर बैठा।

'वीणा' काव्य में उत्तुंग, श्रृंग, अजस्त्र प्रवाहित निर्झर, हिम- शैलों पर अठखेलियाँ करती हुई राशि - रश्मियाँ, फूलों से भरी हुई घाटियाँ आदि प्रकृति के अवयवों सुंदर वर्णन किया तो 'ग्रंथि' में वह प्राकृतिक सौंदर्य के साथ-साथ

शारीरिक सौंदर्य के प्रति आकर्षित होता है। नारी सौंदर्य और प्राकृतिक सौंदर्य का समानान्तर रूप में वर्णन किया। दूसरे शब्दों में यहाँ प्रकृति शरीर के सौंदर्य का उपकरण रही है।

'पल्लव' में कवि की सौंदर्य भावना और भी अधिक सूक्ष्म हो गई है। 'उच्छवास और आँसू' कवितायें इसके उदाहरण हैं। 'गुंजन' में कवि चिन्तन - प्रधान बन जाता है, अतः वह शारीरिक सौंदर्य को छोड़कर मानसिक सौन्दर्य के धरातल पर आ जाता है। जीवन का सौंदर्य क्या है? सम्भवतः सबसे पहले के सामंजस्य में ही जीवन का यही प्रश्न कवि को झकझोरता है। यह सुख-दुख के सामंजस्य में ही जीवन का सौंदर्य देखता है और जीवन के इसी क्रम को सच्चा सौन्दर्य समझता है। 'ज्योत्स्ना' में कवि की सौंदर्य भावना शिव मंगल की भावना का स्वरूप ग्रहण कर लेती है। 'युगांत', 'युगवाणी', 'ग्राम्य' समय तक आते कवि कल्पनाजन्य सौंदर्य का मोह छोड़कर यथार्थ की भूमि पर अवतीर्ण हो जाता है। 'स्वर्ण किरण और स्वर्णधुलि' थे पन्त के काव्य का अध्यात्म -युग प्रारम्भ होता है। अतः तदनुकूल कवि की सौन्दर्य-दृष्टि शारीरिक न रह कर मानसिक हो जाती है। वह बाह्य सौंदर्य की उपेक्षा करके आन्तरिक सौंदर्य पर विशेष बल देता है। इस तरह पंत की सौंदर्य चेतना अपना सूक्ष्म रूप लेकर चलती है और समय के साथ-साथ सूक्ष्मतम से सूक्ष्मतम होती चली जाती है। अर्थात शिव-तत्व ही उनकी दृष्टि में वास्तविक सौंदर्य रह जाता है।

पंत की सौंदर्य चेतना के बारे में कहना है तो सबसे पहले उनकी सर्वव्यापकता की दृष्टि को देखना है। पंत की सौंदर्य भावना किसी सीमित परिधि में बन्दी न होकर व्यापकता के उन्मुक्त प्रकाश में विचरण करती है। पंत सौंदर्य के प्रति अमित पिपासा है। उसके लिए सौंदर्य से बढ़कर न तो और कोई सत्य है और न ऐश्वर्य। कहीं-कहीं पन्त की सौंदर्य चेतना रहस्योन्मुखी भी हो गई है। उसका सौंदर्यानुभूति पावन तो है, साथ ही बहुजनहिताय भी है। श्री रामचन्द्र गुप्त के शब्दों में- "वस्तुतः पंत जी की सौन्दर्यानुभूति बहुत ही विस्तृत और स्वरूप है और सत्य, शिवं प्रेरित उनका सौंदर्य उनके काव्य की आत्मा भी है।"

9.8. पल्लव की भूमिका

पल्लव काव्य संग्रह की भूमिका में पंत अपनी काव्य कला के विकास, काव्य के प्रति उनकी रुचि आदि अंशों के बारे में बताया है। इसमें दो भाग है। पहले भाग में पंत हृदय की भावनाओं के बारे में बताते है। दूसरे भाग के हिन्दी भाषा और काव्य करने के लिए आवश्यक भाषा सिद्धांतों, के बारे में बताते हैं।

पंत का संबंध प्रकृति से सीधे है। प्रकृति गोद में पलने वाले पंत अपनी काव्यों में प्रकृति का सुंदर चित्रण किया है। पल्लव की भूमिका में पंत साहित्यिक ब्रज, अवधी व खडी बोली जीवन संग्राम के बारे में बताये है। दूसरे भाग में भाषा की प्रासंगिकता व महत्व को स्वीकार करते हुए वे कहते हैं भाषा का मतलब जो पुस्तकों में होती है वह नहीं मनुष्यों की भाषा वह है जिसमें हम हँसते - शेते, खेलते-कूदते, सांस लेते हैं। वे भाषा को नादमय चित्र और ध्वनिमय स्वरूप मानते हैं। भाषा से साहित्य संसार में नवीन कल्पना नवीन भावनाएं जन्म लेती है। इस भूमिका में पंत व्याकरणिक नियमों के बारे में बताते है। पर्यायवाची शब्दों का कम प्रयोग करना चाहिए। संयुक्त क्रियाओं का प्रयोग सतर्कता से करना चाहिए। छंद अलंकार के प्रयोग करते समय भावों को दृष्टि में रखते हुए करना चाहिए।

9.9. सारांश

यदि छायावाद हिन्दी - साहित्य-समुद्ध का काल है तो पन्त जी इस समृद्धि में निरंतर श्री वृद्धि करने वाले जागरूक तथा सफल कवि है। यही कारण है कि छायावाद की जो 'चतुष्टयी' मानी जाती है, उसमें पन्त जी का गौरव

पूर्ण स्थान है। पन्त जी ने छायावाद में अपना अपूर्व योग देकर उसे पल्लवित और पुष्टित किया। अभिव्यंजना की दृष्टि से उनके काव्य में ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता, सौन्दर्यमय, प्रतीक विधान आदि सभी छायावादी तत्वों के दर्शन होते हैं। उन्होंने प्रकृति के मधुरतम चित्रों से काव्य को अलंकृत किया। प्रेम और सौंदर्य की नवीनतम व्याख्या का श्रेय भी कविवर पन्त को ही है। भाषा-विषयक सुधार तो उन्होंने इतना अधिक किया कि उन्हें छायावादी का कहा जा सकता है। 'पल्लव' का जन्म उनके भाषा - सुधार का सफल निर्माता एवं साकार रूप है। अलंकारों के आभूषण उतार देने के बाद भी भाषा की अभिव्यंजना शक्ति सबल और प्रभावोत्पादक बनी रह सकती है, यह प्रगतिवादी पन्त के साहित्य से सिद्ध होता है। पंत आध्यात्मिक और चेतना वादी कवि है। भारतीय दर्शन और पाश्चात्य जीवन-सौष्ठव का समन्वय पंत के मत से जीवन की सम्पूर्णता है। निष्कर्ष रूप में यह कह सकते हैं कि पन्त-काव्य ऐसा स्वर्गिक उपवन है, जिसमें कला के मुस्कराते हुए सुंदर पुष्प भी है और भाव का आशय सौरभ थी। यदि लोक हित ही साहित्य का अंतिम चरण है तो पंत का साहित्य इस श्रेणी में आता है।

9.10. बोध प्रश्न

1) सुमित्रानंदन पंत के जीवन परिचय दीजिए।

2) प्रकृति के बेजोड कवि पंत - यह उक्ति कहा तक सही है? निर्वाचना कीजिए।

3) पंत की भाषा पर चर्चा कीजिए।

4) पंत के सौंदर्य चेतना पर टिप्पणि लिखिए।

9.11.सहायक ग्रंथ

1.सुमित्रानंदन पंत जीवन और साहित्य भाग ।।2।। शांति जोखि

2. छायावाद युग-राकेश यादव-भाषा प्रकाशन, नई दिल्ली।

3. सुमित्रानंदन पंत-नगेन्द्र- नेशनल।

4. कवि पंत और उनकी छायावादी रचनाएँ- प्रो. पी. ए. राव, प्रगति प्रकाशन, आगरा।

5. आधुनिक छायावाद छायावादी काव्य प्रासंगिकता एवं पुनर्मूल्यांकन- ऋषि प्रसाद, भाषा प्रकाशन, नई दिल्ली।

6. हिंदी साहित्य- 20वीं शताब्दी: आचार्य नंददुलारे वाजपेयी।

7. छायावाद: पुनर्मूल्यांकन: सुमित्रानन्दन पन्त।

8. छायावाद युग: शंभुनाथ सिंह, सरस्वती मंदिर, वाराणसी; 1962 छायावाद के गौरव चिह्न: प्रो. क्षेमेन्द्र।

9. छायावादी कवियों का सौन्दर्य विधान: डॉ. सूर्यप्रसाद दीक्षित।

10. छायावादी काव्य: डॉ. कृष्ण चन्द्र वर्मा; मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, म. प्र.।

डॉ. सूर्य कुमारी. पी

10. महादेवी वर्मा-पृष्ठभूमि

10.0. उद्देश्य

पिछले इकाई में हम छायावाद युग के विकास से लेकर छायावाद- स्वरूप, छायावाद युग के रचनाकारों के बारे में जानकारी प्राप्त किये हैं। अब महादेवी वर्मा के गद्य साहित्य का अध्ययन करने जा रहे हैं। इसे पढ़ने के बाद आप :

- महादेवी वर्मा के जीवन और साहित्य का वर्णन कर सकेंगे;
- महादेवी वर्मा के गद्य साहित्य के विविध रूपों, यथा रेखाचित्र, संस्मरण, निबंध और आलोचना पर प्रकाश डाल सकेंगे;
- महादेवी वर्मा के गद्य की विशेषताओं को रेखांकित कर सकेंगे; और
- नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना के परिप्रेक्ष्य में महादेवी वर्मा के गद्य साहित्य का मूल्यांकन कर सकेंगे।

रूपरेखा

10.1. प्रस्तावना

10.2. महादेवी वर्मा-पृष्ठभूमि

10.3. महादेवी वर्मा का गद्य साहित्य : विविध रूप

10.4. महादेवी वर्मा के गद्य साहित्य की विशेषताएँ

10.5. नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति

10.6. सारांश

10.7. शब्दावली

10.8. बोध प्रश्न

10.9. सहायक ग्रंथ

10.1. प्रस्तावना

महादेवी वर्मा के गद्य साहित्य का अध्ययन करने जा रहे हैं। इसके पहले इकाई में आप प्रेमचंद, जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' और सुमित्रानंदन पंत के साहित्य का अध्ययन कर चुके हैं। अब यहाँ महादेवी वर्मा के युग की जानकारी को हासिल करेंगे। इस इकाई में महादेवी के जीवन और साहित्य का भी परिचय प्राप्त करेंगे। महादेवी वर्मा ने एक ओर काव्य रचना की तो दूसरी तरफ सामाजिक यथार्थ को सामने रखने के लिए उन्होंने गद्य का सहारा लिया। उन्होंने अपने रेखाचित्रों, संस्मरणों, निबंधों और आलोचना के माध्यम से समाज और खासकर दलित और नारी के प्रति अपना दृष्टिकोण स्पष्ट किया।

महादेवी वर्मा के रेखाचित्र और संस्मरण एक दूसरे में घुले-मिले हुए हैं। 'अतीत के चलचित्र','स्मृति की रेखाएँ' और 'पथ के साथी' इसके सशक्त उदाहरण हैं। इन रचनाओं में चित्रांकन भी है और अतीत को याद करने का सक्षम प्रयास भी। उनकी रचनाओं में एक प्रकार की संवेदनात्मक गहराई है। उसमें हास्य-व्यंग्य का पुट भी है और यथार्थ अपनी समस्त प्रखरता के साथ उभर कर सामने आया है। नारी-चेतना और दलित-चेतना की अभिव्यक्ति महादेवी के साहित्य में बार-बार हुई है। उन्होंने जिन पात्रों का चित्र अपनी रचनाओं में खींचा है। उनमें शोषित स्त्री और दलित समाज के प्रतिनिधियों का बाहुल्य है। नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना के काल में प्रमुख शोषित वर्ग-नारी और दलित पर हो रहे जुल्म पर प्रहार किया गया। इस प्रकार की झलक महादेवी की रचनाओं में भी मिलती है।

10.2. महादेवी वर्मा- पृष्ठभूमि

महादेवी वर्मा कविता और गद्य, दोनों में लेखिका की पीड़ा उभरकर सामने आती है। उनकी कविताओं में कवयित्री अंतर्मुखी होती चली गई हैं। पर जब वे गद्यकार के रूप में उपस्थित होती हैं, तो यथार्थ का सीधा सामना करती हुई दीख पड़ती हैं और खुलकर प्रहार करती हैं। महादेवी की रचनाओं में पीड़ा और वेदना की अभिव्यक्ति इतनी प्रमुखता से क्यों हुई है ? महादेवी वर्मा के साहित्य में व्यक्त पीड़ा उनकी अपनी पीड़ा है। यह एक नारी का भोगा हुआ यथार्थ है। भारतीय समाज में नारी को कभी मानवीयता के स्तर पर नहीं आँका गया। नारी को या तो देवी के पद पर प्रतिष्ठित किया या कुलटा कहकर उसका बहिष्कार किया गया। नारी को हमेशा से पुरुषों के संरक्षण में जीना पड़ा।

बचपन में वह अपने पिता पर आश्रित रहती है, जवानी में पति का सहारा लेती है और बुढ़ापे में पुत्र के सहारे अपना जीवन-यापन करती है। परंपरा से यह भी माना जाता है कि पति की पूजा करना पत्नी का पहला कर्तव्य होता है। परंपरागत ग्रंथों में पति परमेश्वर की पूजा करने वाली स्त्री को पतिव्रता कहा गया है। परिवार में पुत्र और पुत्री के जन्म लेने का असर आप आज भी देख सकते हैं। जहाँ पुत्र के जन्म पर खुशियाँ मनाई जाती हैं, वहाँ बेटी का जन्म लेना मातम से कुछ कम नहीं होता है। सामाजीकरण की प्रक्रिया में भी अंतर स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। जन्म लेने से लेकर बुढ़ापे तक स्त्री को विनम्र, सुशील, दयालु, ममताशील आदि होने का उपदेश दिया जाता है। परिवार और समाज उसके सामने सीता और सावित्री का आदर्श रखता है।

19वीं और 20वीं शताब्दी में नारी के शोषण के विरुद्ध कुछ लोगों ने आवाज उठाई। राजा राममोहन राय, ईश्वर चन्द्र विद्यासागर, केशव चन्द्र सेन, दयानंद सरस्वती आदि समाजसुधारकों ने नारी की दुर्दशा की ओर समाज का ध्यान आकृष्ट किया। उन लोगों ने सती प्रथा, पर्दा प्रथा, विधवा विवाह, नारी शिक्षा आदि मुद्दों को बड़ी शिद्दत के साथ उठाया। ऐसी स्थिति में जब कोई स्त्री समाज के बनाए नियमों को तोड़ती है तो उसे समाज और परिवार की अवमानना और आक्रोश का सामना करना पड़ता है।

महादेवी जी ने नारी के 'घर के बंधन' को स्वीकार नहीं किया। उन्होंने समाज के रूढ़ बंधनों को तोड़ा और इन सभी बंधनों से मुक्त होकर कर्म - क्षेत्र में कूद पड़ीं। गांधी जी ने स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान स्त्रियों का आह्वान किया। स्त्रियाँ घर चौखट को लांघकर स्वतंत्रता आंदोलन में शामिल हुईं। महादेवी जी पर स्पष्ट रूप से इसका असर पड़ा। उन्होंने अपनी गद्यात्मक रचनाओं में न केवल नारी की समस्याओं को उठाया बल्कि दलित और शोषित वर्ग पर हो रहे जुल्म का भी विरोध किया।

10.2.1. महादेवी वर्मा का जीवन-परिचय

'महादेवी वर्मा' का जन्म 1907 ई. में उत्तर प्रदेश के फर्रूखाबाद में हुआ था। उनका परिवार सम्भ्रान्त और सम्पन्न परिवार था। अपने बचपन को याद करती हुई वे लिखती हैं- 'एक व्यापक विकृति के समय, निर्जीव - संस्कारों के बोध से जड़ीभूत वर्ग में मुझे जन्म मिला है, परंतु एक ओर साधनाभूत आस्तिक और भावुक माता और दूसरी ओर सब प्रकार की साम्प्रदायिकता से दूर कर्मनिष्ठ एवं दार्शनिक पिता ने अपने-अपने संस्कार देकर मेरे जीवन को जैसा रूप दिया उससे भावुकता बुद्धि के कठोर धरातल पर साधना एक व्यापक दार्शनिकता पर और आस्तिकता एक सक्रिय पर किसी वर्ग या सम्प्रदाय में न बंधने वालो चेतना पर स्थित हो सकती थी।' महादेवी वर्मा की आरंभिक शिक्षा इन्दौर में हुई। फिर प्रयाग विश्वविद्यालय से इन्होंने बी.ए. और बाद में संस्कृत से एम.ए. किया। उसी समय ये प्रयाग महिला विद्यापीठ की प्रधानाचार्या नियुक्त हुईं।

महादेवी जी का विवाह वयस्कता से पूर्व अल्पावस्था में ही कर दिया गया। पर उन्होंने गार्हस्थ्य स्वीकार नहीं किया और न अपने को उन्होंने सीमित परिवार की परिधि में ही बाँधा। पर इसका मतलब यह नहीं है कि उनका परिवार था ही नहीं। उनका परिवार बड़ा विशाल था और उसमें केवल स्त्री-पुरुष ही नहीं बल्कि फूल, वृक्ष और चिड़ियाँ भी आती थीं। इनकी सहानुभूति विश्व व्यापी थी। विश्व के किसी कोने से किसी भी पीड़ा की कहानी सुनकर इनका मन उसकी पीड़ा में डूब जाता था। अपने द्वारा वे किसी को भी पीड़ा नहीं पहुँचाना चाहती थीं, इसीलिए वह कभी भी आदमी से खींचे जाने वाले रिक्शे पर नहीं बैठती थीं।

महादेवी जी राष्ट्र सेविका भी थीं। जब कभी देश में कोई आंदोलन छिड़ा या देशवासियों पर कहीं कोई विपत्ति आ पड़ी तो उन्होंने केवल अपनी लेखनी के माध्यम से ही शाब्दिक सहानुभूति नहीं प्रकट की बल्कि उसमें अपना सक्रिय सहयोग भी दिया। 1942 के आंदोलन के दौरान ब्रिटिश साम्राज्यवादी शक्ति ने अपने जुल्म से कई लोगों को मार डाला और कई परिवार बेघर और बे- आसरा हो गए। जब बंगाल में अकाल पड़ा था तो उन्होंने अकाल पीड़ितों के लिए कपड़े, भोजन और दवाइयों का इंतज़ाम किया था। उन्होंने 'बंग दर्शन' नामक पुस्तक का संपादन किया और इसका पूरा पैसा अकाल पीड़ितों के सहायता कोष में दे दिया। महादेवी जी ने हिंदी के लेखकों से पैसा इकट्ठा किया और लेखक-निधि के नाम से हिंदी लेखकों की सहानुभूति के रूप में वहां भेजा।

हिंदी के साहित्यकारों की दशा सुधारने के लिए उन्होंने अन्य साहित्यकारों के साथ मिलकर 'साहित्यकार संसद' नामक संस्था की स्थापना की। इस संस्था का उद्देश्य साहित्यिकों को संगठित करना और असमर्थ साहित्यकारों को सहायता पहुँचाना था। महादेवी वर्मा को उनकी काव्य-कृति 'यामा' के लिए भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार प्रदान किया गया।

10.2.2. महादेवी वर्मा का साहित्य- परिचय

महादेवी वर्मा छायावादी कवियों में प्रमुख हैं। महादेवी वर्मा ने अपने काव्य-जीवन का आरंभ ब्रजभाषा में समस्या-पूर्ति के साथ किया। फिर खड़ी बोली में रोला और हरिगीतिका छंद में कविता लिखनी शुरू की। उसी समय माँ से सुनी एक करुण कथा को आधार बनाकर एक खंड काव्य भी लिख डाला। विद्यार्थी जीवन में वे प्रायः राष्ट्रीय और सामाजिक जागृति की कविताएँ लिखती रहीं जो लेखिका के कथनानुसार 'विद्यालय के वातावरण में खो जाने के लिए लिखी गयी थीं। उनकी समाप्ति के साथ ही मेरी कविता का शैशव भी समाप्त हो गया।' मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण

करने से पहले वे रहस्यानुभूति से युक्त कविताएँ लिखने लगी थीं। उनके प्रथम काव्य-संग्रह –'नीहार' की अधिकांश कविताएँ उसी समय की हैं। उनके पाँच काव्य संग्रह हैं- नीहार (1930), रश्मि (1932), नीरजा (1985), सांध्य गीत (1986), और दीपशिखा 'यामा' में उनके प्रथम काव्य- संग्रहों की कविताओं का एक साथ संकलन हुआ है।

महादेवी वर्मा कवि के अतिरिक्त सशक्त गद्य लेखिका भी हैं। 'अतीत के चलचित्र' (1941), 'स्मृति की रेखाएँ (1943),'शृंखला की कड़ियाँ' (194) 'पथ के साथी' (1956) उनके प्रमुख गद्य संकलन हैं। इसके अतिरिक्त कविता-संग्रहों की भूमिकाओं में उनकी आलोचनात्मक प्रतिभा का भी पूर्ण प्रस्फुटन हुआ है। आजादी का शंख फूंकने में 'चाँद' पत्रिका का योगदान अभूतपूर्व रहा है। 'चाँद' के 'फांसी' अंक ने तो काफी ख्याति प्राप्त की। इस पत्र ने एक तरफ देश को आजादी की करवट लेने के लिए सचेत किया, वहाँ दूसरी ओर सामाजिक क्रांति का शंखनाद भी किया। महादेवी वर्मा ने भी इस पत्र का संपादन किया। संपादकीय के रूप में लिखे उनके लेख 'शृंखला की कड़ियाँ' में संकलित हैं।

10.3. महादेवी वर्मा का गद्य साहित्य: विविध रूप

महादेवी वर्मा की रचनाओं में मुख्यतः गद्य-कृतियों की संख्या ज़्यादा नहीं है। लेकिन कथ्य और प्रस्तुति की दृष्टि से ये कृतियाँ उत्कृष्ट हैं। महादेवी वर्मा कुल 25 संस्मरणात्मक - रेखाचित्र और 35 निबंध लिखे हैं, मुख्य रूप से रेखाचित्र, संस्मरण, निबंध और आलोचनाएँ लिखी हैं। महादेवी जी का गद्य उनकी वैचारिक विवशता का परिणाम है। नारी जीवन और समकालीन यथार्थ पर लिखते समय उन्होंने गद्य का आश्रय लिया। काव्य-कृतियों की भूमिका में उनकी आलोचना-शक्ति का भी परिचय मिलता है। 'स्मृति की रेखाएँ', 'अतीत के चलचित्र' और 'पथ के साथी' में लेखिका का संस्मरण शब्द-चित्रों के माध्यम से अभिव्यक्त हुआ है। 'शृंखला की कड़ियाँ' में महादेवी वर्मा का नारी विषयक दृष्टिकोण प्रकट हुआ है। वस्तुतः यह नारी समस्याओं का दस्तावेज़ है।

अब हम यहाँ महादेवी के गद्य साहित्य का विवेचन दो भागों में करने जो रहे हैं- रेखाचित्र - संस्मरण और निबंध - आलोचना। महादेवी वर्मा का रचनाओं को देखने के बाद रेखाचित्र संस्मरण को एक ही घड़े में रखना उपयुक्त होगा क्योंकि उनके रेखचित्र संस्मरण हैं और उनके संस्मरण रेखचित्र। इसे और भी स्पष्ट करने के लिए यह कहना उपयुक्त होगा कि उन्होंने अपने संस्मरणों को रेखाचित्रों और शब्द-चित्रों के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। तो चलें, इनका अवलोकन शुरू किया जाए।

10.3.1. रेखाचित्र और संस्मरण

महादेवी वर्मा के क्षेत्र में रेखाचित्र और संस्मरण के तीन ग्रंथ – 'अतीत के चलचित्र', 'स्मृति की रेखाएँ' और 'पथ के साथी' उल्लेखनीय हैं। महादेवी जी की इन रचनाओं में एक चित्रात्मकता, कथात्मकता और काव्य-प्रवाह है। इन्हें पढ़ते वक्त कभी ये रचनाएँ रेखाचित्र प्रतीत होती हैं तो कभी संस्मरण; कभी-कभी ये कहानी से भी नाता जोड़ने लगती हैं। महादेवी वर्मा इन रेखाचित्रों के साथ कठोर धरती पर उतरी हैं, अतः दीन-हीन, पतित और अपेक्षित व्यक्तित्व इन रेखाओं एवं चित्रों के कलेवर में साँस भरते दीखते हैं। इन रचनाओं की प्रमुख विशेषता इनकी चित्रात्मकता ही है। इन रचनाओं का अलग-अलग परिचय प्राप्त करें।

'अतीत के चलचित्र' महादेवी जी के रेखाचित्रों का पहला संकलन है। इसका प्रकाशन पहली बार 1941 ई. हुआ था। अतीत के चलचित्र नाम से ही स्पष्ट है कि ये अतीत के दस्तावेज़ भी हैं और घूमते-फिरते चित्र भी। इस कृति

में ग्यारह रचनाएँ संग्रहीत हैं। इसमें अतीत, वर्तमान और भविष्य एक-दूसरे में सिमट गया है। अतीत के इन चलचित्रों में सर्वहारा वर्ग की झांकी प्रस्तुत की गई हैं। इसमें समा एक विधवा युवती, बिंदा, सबिया, बिट्टी, अनाहूत की माँ, घीसा, विधवा, अलोपी, बदलू, रधिया और लछमा का रेखाचित्र खींचा गया है, जिसमें लेखिका का अतीत स्पष्ट रूप से झांकता नज़र आता है।

1945 ई. में महादेवी वर्मा के संस्मरणात्मक रेखाचित्रों का दूसरा संग्रह है, 'स्मृति की रेखाएँ' का प्रथम प्रकाशन हुआ। इसमें कुल सात रेखाचित्र संकलित हैं- 'भक्तिन', 'चीनी', 'जंगिया धनिया', 'मुन्नू की माँ', 'ठकुरी बाबा', 'बरेठिन गुंगिया'। महादेवी वर्मा ने उन्हें शीर्षकों में विभाजित नहीं किया है, लेकिन शीर्षकों का आम तौर पर उपयोग किया गया है। हम भी उसका लाभ उठा रहे हैं। 'अतीत के चलचित्र' में जहाँ लेखिका के किशोर काल के चित्र है वहाँ 'स्मृति की रेखाएँ' में प्रौढ़ काल के चित्र हैं।

सन् 1956 ई. में 'पथ के साथी' का प्रकाशन हुआ है। इस संकलन में वर्मा ने अपने समसामयिक कवियों के जीवन-वृत्त, परिवेश और क्रियाकलाप का चित्रण और मूल्यांकन किया है। लेखिका ने कुल सात लेखकों की जीवनी प्रस्तुत की है। कवीन्द्र, रवीन्द्र, मैथिलीशरण गुप्त, जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, सुभद्राकुमारी चौहान, सुमित्रानंदन पंत और सियारामशरण गुप्त।

10.3.2. निबंध और आलोचना

निबंध और आलोचना के क्षेत्र में मुख्यतः वर्मा के चार पुस्तकों की चर्चा की जा सकती है वे- (1) शृंखला की कड़ियाँ (1942), (2) क्षणदा (1956), (3) साहित्यकार की आस्था, (4) संकल्पिता (1969) आदि। इसके अलावा उन्होंने अपनी काव्य-पुस्तकों की भूमिका के रूप में भी अपनी आलोचना - क्षमता का प्रमाण दिया है।

शृंखला की कड़ियाँ

'श्रृंखला की कड़ियाँ' में कुल ग्यारह निबंध संग्रहीत हैं। ये निबंध मूलतः 'चाँद' के संपादकीय के रूप में लिखे गये थे। श्रृंखला की कड़ियाँ में मुख्यतः जनता (खासकर नारी) का पीड़ित स्वर मुखरित हुआ है । इसमें संकलित निबंध इस प्रकार हैं- वे 1. श्रृंखला की कड़ियाँ 2. युद्ध और नारी 3. नारीत्व का अभिशाप 4. आधुनिक नारी. 5. घर और बाहर 6. हिंदू स्त्री का पत्नीत्व 7. जीवन का व्यवसाय 8. स्त्री के अर्थ-स्वातंत्र्य का प्रश्न 9. हमारी समस्याएँ 10. समाज और व्यक्ति 11. जीने की कला।

महादेवी वर्मा का दूसरा निबंध संग्रह 'क्षणदा' (1956) है । इसमें विचारात्मक निबंध, यात्रा संस्मरण, आलोचनात्मक निबंध और भाषा, विज्ञान, साहित्य आदि से संबंधित निबंध भी इसमें समाहित हैं। इनका शीर्षक इस प्रकार है-

1. करुणा का संदेश वाहक।

2. संस्कृति का प्रश्न।

3. कसौटी पर।

4. दोष किसका?

5. कुछ विचार।

6. स्वर्ग का एक कोना।

7. सुई दो रानी।

8. कला और चित्रमय साहित्य।

9 साहित्य और साहित्यकार।

10. अभिनय कला।

11. हमारा देश और राष्ट्रभाषा और

12. हमारे वैज्ञानिक। 'साहित्यकार की आस्था' और 'संकल्पिता' में साहित्यिक और सांस्कृतिक विषयों से संबंधित निबंध संकलित हैं।

10.4. महादेवी वर्मा के गद्य-साहित्य की विशेषताएँ

महादेवी वर्मा के गद्य के विविध रूपों का परिचय प्राप्त कर चुके हैं। अब हम यहाँ पर महादेवी वर्मा के गद्य रूपों की विशेषताओं पर विचार-विमर्श करेंगे।

10.4.1. चित्रांकन

महादेवी वर्मा के गद्य साहित्य में रेखाचित्रों और संस्मरण में हमें एक प्रकार का चित्रांकन देखने को मिलता है। इन कृतियों की विशेषता यह है कि सूक्ष्म पर्यवेक्षण और कलापूर्ण रेखांकन। सुभद्राकुमारी चौहान हो या जयशंकर प्रसाद, रामा हो या मुन्ना की माई सबका सूक्ष्म पर्यवेक्षण और कलापूर्ण रेखांकन लेखिका ने किया है। सुभद्राकुमारी चौहान का चित्रांकन करती हुई महादेवी जी लिखती हैं- "मझोले कद तथा उस समय की कृश देह यष्टि में कुछ ऐसा उग्र या रौद्र भाव नहीं था, जिनकी हम वीर-गीतों की कवयित्री में कल्पना करते हैं। कुछ भोला मुख, चौड़ा माथा, सरल भृकुटियाँ, बड़ी भाव-स्नात आँखें, छोटी सुडौल नासिका, हँसी को जगाकर गढ़े हुए होठ और दृढ़तासूचक बुद्धि।

सब कुछ मिलकर एक अत्यंत निश्छल, कोमल, उदार व्यक्तित्व वाली भारतीय नारी का ही पता देते थे, पर उस व्यक्तित्व के बाहर जो बिजली का छंद था, उसका पता तो तब मिलता था जब उनके और निश्चित लक्ष्य के बीच में कोई बाधा आ उपस्थित होती थी।" अपने सेवक रामा के रूपांकन में उन्होंने अदभुत चित्रांकन की क्षमता दिखाई है- "किसी थके झुंझलाए शिल्पी की अंतिम भूल जैसी अनगढ़ मोटी नाक, साँस के प्रवाह से फैले हुए-से नथुने हँसी से भरकर धुले हुए-से होंठ तथा काले पत्थर की प्याली में दही की याद दिलाने वाली सघन और सफेद दंत पंक्ति।" महागेवी वर्मा की पर्यवेक्षण और चित्रांकन-शक्ति के साथ उसकी कल्पना शक्ति की भी दाद देनी होगी।

10.4.2. कवित्व

महादेवी वर्मा अपने गद्य साहित्य में यथार्थ की कठोर ज़मीन पर खड़ी दीख पड़ती हैं, भाषा में यथार्थ की कठोरता भी है। पर इस भाषा में ऐसा प्रवाह है, ऐसा बहाव है कि उनका गद्य काव्य बन जाता है। यह गद्य-काव्य खासकर प्रकृति-चित्रण के समय मुखर हो उठता है- "वैशाख नए गायक के समान अपनी अग्नि-वीणा पर एक से एक

लंबा आलाप लेकर संसार को विस्मित कर देना चाहता था।" अतीत के चलचित्र 'वह गोधूलि मुझे अब नहीं भूली। संध्या के लाल सुनहली आभा वाले उड़ते हुए दुकूल पर रात्रि ने मानो छिपकर अंजन की मूठ चला दी हो।'

10.4.3. संवेदना

महादेवी के गद्य में संवेदना और भावुकता का मिला-जुला रूप देखने को मिलता है। यह संवेदना कहीं निराशा में परिणत होकर कारुणिक हो जाती है और कहीं विद्रोह और आक्रोश के रूप में प्रकट होती है। इनकी संवेदनात्मक अनुभूतियाँ प्रायः उन पात्रों के प्रति प्रकट हुई हैं जो शोषित हैं पर अपने शोषण से अनजान हैं। रामा, घीसा, अनुहूत की माँ, अलोपी, सभी समाज के शोषित और पीड़ित प्राणी हैं। महादेवी की वेदना संवेदना में ढलकर संपूर्ण शोषित मानव समाज के प्रति समर्पित है। महादेवी वर्मा की यह सहानुभूति केवल बौद्धिक स्तर पर नहीं है बल्कि वे इनसे रागात्मक रूप में जुड़ी हुई भी हैं।

10.4.4. यथार्थ के प्रति आग्रह

महादेवी वर्मा जीवन के यथार्थ को व्यक्त करने के लिए गद्य का सहारा लेते हुए अपने गद्य साहित्य के माध्यम से दीन-दलितों की दुर्दशा का चित्रण किया है। महादेवी वर्मा का यथार्थ मूलतः ऐसे पीड़ित जन-समुदाय को संबोधित है जो समाज की दृष्टि से हीन होकर भी मानवता के आदर्श हैं और महान हैं। उनकी 'लछमा' नामक पहाड़िन पात्र तीन दिन भूख से पीड़ित होकर अंत में मिट्टी खाने को बाध्य होती है- "जब भूख हुई, . तब पीली मिट्टी का एक गोला बनाकर मुख में रखा और आँख मूंदकर सोचा- लड्डू खाया, लड्डू खाया। बस, फिर बहुत-सा पानी लिया ओर सब ठीक हो गया।" यह अतीत के चलचित्र में से लिए गये है। महादेवी वर्मा ने अपनी कृतियों में काछी, कुम्भार, धोबी, भंगी, बढ़ई, कुली, कबाड़ी, अहीर, भिखारी, वेश्या, अंधे, गूंगे, अकाल- वैधव्य से पीड़ित और जारज संतानों को ढोती नारियाँ, स्नेह की भूखी तथा कथित कलंकिनी स्त्रियाँ, चोर, डकैत, जुआरी, शराबी सबका यथार्थ खाका महादेवी वर्मा ने खींचा है।

10.4.5. भाषा और शैली

महादेवी वर्मा के गद्य की भाषा और शैली पर विचार किए बिना उनके गद्य की विशेषताओं का अध्ययन अधूरा रहेगा। महादेवी वर्मा के रेखचित्रों में एक प्रकार का कहानीपन होता है। 'अतीत के चलचित्र' और 'स्मृति की रेखाएँ' में कहानी के तत्व मौजूद हैं। 'पथ के साथी' भी इस गुण से अछूता नहीं रहा है। अपने रेखाचित्रों में महादेवी जी ने कई पात्रों को अमर और जीवंत बना दिया है। उन्होंने अपने रेखाचित्रों में 25 पुरुषों स्त्रियों के चित्र उकेरे हैं। महादेवी के इन पात्रों में अनेकरूपता है और ये निर्जीव पात्र न होकर सजीव होकर अपने आंखों के सामने दिखाई पड़ते हैं।

महादेवी वर्मा ने अपने गद्य को सरल और जीवंत बनाकर प्रस्तुत किया है। उनके गद्य में यथार्थ की प्रखरता भी है काव्य की मधुर धारा भी। वे विवरण में ज़्यादा नहीं पड़तीं, बल्कि संकेत से ही बहुत कुछ कह जाती हैं जैसे 'रामा की कोठरी में महाभारत के अंकुर जमने लगे।' संक्षेप में उनके रेखाचित्रों में सूक्ष्म चित्रण की प्रधानता है। शब्दों के चित्र बना बनकर उन्होंने परोसे हैं। महादेवी वर्मा ने अपनी साहित्य में हास्य और व्यंग्य का भी समावेश किया है। रामा का कुर्ता, साफा, बुंदेलखंडी जूते और गठीली लाठी किसी शुभ मुहूर्त की प्रतीक्षा करते जान पड़ते थे। 'उनकी अखण्ड प्रतीक्षा और रामा की अटूट उपेक्षा से द्रवित होकर ही कदाचित् हमारी कार्यकारिणी समिति में यह प्रस्ताव नित्य

सर्वमत से पास होता रहता था कि कुरते की बाहों में लाठी को अटकाकर खिलौनों का परदा बनाया जावे, डलिया साफे को खूँटी से उतारकर उसे गुड़ियों का हिंडोला बनाने का सम्मान दिया जावे और बुंदेलखंडी जूतों को हौज में डालकर गुड्डों के जल विहार का स्थायी प्रबंध किया जावे, पर रामा अपने अंधेरे दुर्ग में चर्रमर स्वर में डाटते हुए द्वारा को इतनी ऊँची अर्गला से बंद रखता था कि हम स्टूल पर खड़े होकर भी छापा न मार सकते थे।' अतीत के चलचित्र से लिया गया है। इसी प्रकार के अनेक प्रसंग महादेवी जी ने हास्य के पुट के साथ किया है।

महादेवी जी का व्यंग्य भी बहुत पैना होता है। उसमें आक्रोश की ध्वनि भी सुनाई पड़ती है। कवियों की वेशभूषा और उपनामों पर व्यंग्य करती हुई कहती हैं-"किसी के नए सिले सूट की अंग्रेजियत ताम्बूल राग की स्वदेशीयता में रंजित होकर निखर उठी थी। किसी का चीनाशुक का लहराता हुआ भारतीय परिधान सिगरेट की धूम रेखाओं में उलझकर रहस्यमय हो रहा था। किसी के सिल्की शैम्पू से धुली सीधी लटों का कृत्रिम कुंचन... आज के कवि गुण में अकिंचन और रूप में कोयले के समान होकर भी नाम से हीरालाल और उपनाम से शरदेन्दु बन जाते हैं।" 'स्मृति की रेखाएँ' से लिया गया है। यह स्पष्ट रूप में महादेवी वर्मा के हास्य व्यंग्य में विद्रोह की प्रतिध्वनि ही है।

महादेवी की भाषा सहज पर कवित्वपूर्ण है। उनकी भाषा में वक्रता और उक्तिवैचित्र्य तो है पर उलझाव नहीं है। वे अभिधा से ज्यादा व्यंजना से संपृक्त भाषा का उपयोग करती हैं। भाषा के लालित्य का एक उदाहरण द्रष्टव्य है-" फागुन के गुलाबी जाड़े की वह सुनहली संध्या....सवेरे के पुलक पंखी वैतालिक एक लयवाही उड़ान में अपने-अपने नीड़ों की ओर लौट रहे थे। विरल बादलों के अंतराल से उनपर चलाए हुए सूर्य के सोने के शब्द- बेधी बाण उनकी उन्मद गति में ही उलझ उलझकर लक्ष्य भ्रष्ट हो रहे थे।" यह पंक्तियाँ अतीत से चलचित्र से लिया गया है। महादेवी की भाषा में एक लय, संगीत और चित्रात्मकता है। उनका एक-एक वाक्य एक-एक चित्र के समान है। उन्होंने रेखाओं में भावना और कल्पना के रंग भरे हैं और ये रंग शब्दों के माध्यम से ही अभिव्यक्त हुए हैं।

10.5. नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति

महादेवी वर्मा ने अपने गद्य साहित्य के द्वारा नारी और दलित दोनों चेतनाओं को अभिव्यक्ति दी है। नवजागरण और राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान प्रमुख शोषित वर्ग (नारी और दलित) पर हो रहे जुल्म के खिलाफ आवाज़ उठाई गई। महादेवी वर्मा ने भी अपनी रचनाओं में इनके प्रति अपनी सहानुभूति व्यक्त की है और उन पर हो रहे जुल्म पर आघात किया है। इस दृष्टि से उनकी तीन कृतियाँ उल्लेखनीय हैं वे- 1. स्मृति की रेखाओं, 2. अतीत के चलचित्र, 3. श्रृंखला की कड़ियाँ आदि।

महादेवी वर्मा के पहली दो कृतियाँ रेखाचित्र हैं तो तीसरी कृति में ग्यारह निबंध संकलित हैं। 'स्मृति की रेखाएँ' और 'अतीत के चलचित्र' में समाज के शोषित और पीड़ित लोगों का चित्रांकन हुआ है। ये सभी पात्र किसी न किसी रूप में महादेवी वर्मा से जुड़े हैं। अतः इन रचनाओं में एक प्रकार की आत्मीयता और अपनापन का बोध होता है। इन पात्रों की पीड़ा महादेवी वर्मा को अपनी पीड़ा बन गई है। सबसे बड़ी बात कि इसके माध्यम से तत्कालीन यथार्थ प्रखरता के साथ उभरकर सामने आया है।

'श्रृंखला की कड़ियाँ' में संकलित लेख मुख्य रूप से नारी समस्या को केंद्र में रखकर लिखे गए हैं। ये लेख 'चाँद' पत्र के संपादकीय के रूप में लिखे गए थे। इन लेखों में जनता का पीड़ित स्वर मुखरित हुआ है। इसमें महादेवी का विद्रोह स्पष्ट रूप में अभिव्यक्त हुआ है। अतः इस तथ्य की छानबीन करने का प्रयास किया जाए कि किस प्रकार

महादेवी वर्मा ने समाज के उपेक्षित वर्ग का मसला उठाया है और इस संदर्भ में उनकी दृष्टि क्या रही है। सबसे पहले हम जन- साधारण को ही ले लें।

10.5.1. जन साधारण

'अतीत के चलचित्र' और 'स्मृति की रेखाएँ' में आम आदमी केंद्र में है। आम आदमी नंगा - भूखा है, गरीब है, फटेहाल है। इनके साथ महादेवी वर्मा की संवेदना जुड़ गई है। उनका सरल, तरल और सजीव, स्नेह, भूखे, नंगे बालकों को देखकर उमड़ पड़ता है। पहाड़ पर रहने वाले गरीब लोगों की दरिद्रता को देखकर उनका हृदय छलनी हो जाता है। वे लिखती हैं- "कोई टाट का सिला विचित्र पैजामा और फटे हुए काले खुरदरे कम्बल का गिलाफ जैसा कुरता गले में लटकाए 'भालू' समान घूम रहा है। कोई कोपीनधारी तार-तार फटा सूती कोट पहने कमर में बोझ बांधने की मोटी रस्सी लपेटे और रूखे खड़े बालों को खुजलाता हुआ 'सेही' जैसी कांटेदार जन्तु जान पड़ता है। किसी के कठिन एड़ी और ऐंठी फैली उँगलियों वाले पैर सड़क कूटने के दुर्मुट से स्पर्धा करते हैं और किसी के स्वरचित मूँज की खुरदरी चुट्टी में सिकुड़-बाँधकर पंजे की भ्रांति उत्पन्न करते हैं। ... पर्वतीय पथ और पत्थरों की चोट से टूटे हुए नाखून और चुटीली उँगलियों के बीच में ढाल बनी हुई मूँज की चप्पल मानो मनुष्य को पशु बनाकर भी खुद न देने वाले परमात्मा का उपहास कर रही थी।

पाँव से दो बालिश्त ऊँचा और ऊनी-सूती पैबंदों से बना हुआ पैजामा मनुष्य की लज्जाशीलता की विडम्बना जैसा लगता था। किसी से कभी मिले हुए पुराने कोट में नीचे के मटमैल अस्तर की झांकी देती हुई अपनी तरह तार-तार फटकर झालरदार हो उठी थी और वह अपने पहनने वाले को एक झबरे जन्तु की भूमिका में उपस्थित करती थी। कोई धूप में बैठकर कपड़ों में से जुएँ बीनता हुआ वानर का स्मरण दिलाता है और कोई दूकानदार से माँग- चाँगकर मुख तथा हाथ-पैर में मले हुए तेल के कारण जल से बाहर निकले हुए जल - जन्तु की तरह चमकता है। ये भी मनुष्य हैं- इसे हम अभ्यासवश ही समझते हैं- इनमें मनुष्य का रूप पाकर नहीं।" ये पंक्तियाँ स्मृति की रेखाएँ से ली गयी है।

आम भारतीय जनता का यह यथार्थ रूप हमें अंदर से कहीं छील जाता है। मनुष्य जन्म पाकर भी ये मनुष्य नहीं जानवर की कोटि में हैं। भारतीय जनता का यह दृश्य लेखिका को पीड़ा से भर देता है। वे समाज के बने-बनाए नियमों और व्यवस्था के खिलाफ विद्रोह कर बैठती हैं। निरक्षर ग्रामीणों की स्थिति पर क्षुब्ध होकर लेखिका कहती है- "इतने विशाल जन समूह को वाणीहीन बनाकर जिन्हें अपनी वाग्विदग्धता का अभिमान है, वे कितने निर्लज्ज हैं।" यह कथन लेखिका की व्यवस्था के प्रति असहमति का सूचक है। महादेवी वर्मा की व्यथा-वेदना के पीछे केवल हाहाकार नहीं है, बल्कि उसमें नवनिर्माण का स्वर भी है।

10.5.2. नारी

महादेवी जी ने पीड़ित, शोषित और सताई हुई स्त्रियों का रेखांकन भी किया है और 'श्रृंखला की कड़ियाँ' नामक उनके संकलन में नारी संबंधी दृष्टिकोण की भी अभिव्यक्ति हुई है। महादेवी जी ने अपने रेखाचित्रों में शोषित, पीड़ित, समाज से बहिष्कृत, बेसहारा और गरीब स्त्रियों को स्थान दिया है। सूखी जटाओं वाली विपन्न ग्रामीण युवतियों, अपर्याप्त वस्त्र पहने तन को ढकती किशोरियों, अकाल वैधव्य से पीड़ित नारियों, जारज सन्तानों की माँ, क्रूर-निष्करुण विमाताओं पर ही महादेवी जी की दृष्टि गई है। 'अतीत के चलचित्र' में एक विधवा का चित्र महादेवी जी ने

खींचा हैं। सेठ के पुत्र से ब्याही गई यह किशोरी बाल-विधवा होकर अपना अभिशप्त जीवन बिताती है। इसके जीवन का दर्द महादेवी का अपना दर्द बन जाता है।

महादेवी जी ने एक हृदय स्पर्शी घटना का वर्णन कर पाठक मन को झकझोर दिया है। एक बार सावन की तीज के अवसर पर वे मेहंदी लगाए, ओढ़नी पहने उसके पास जाती हैं और कौतूहलवश ओढ़नी उसपर डाल देती हैं। "वह क्षण भर के लिए अपनी उस स्थिति को भूल गई जिसमें ऐसे रंगीन वस्त्र वर्जित थे और नए खिलौनों से प्रसन्न बालिका के समान बेसुध मन में उसे ओढ़े, मेरी ठुड्डी पकड़कर खिलखिला पड़ी।" अतीत के चलचित्र से लिया गया है।

महादेवी की बाल सखी थी। बचपन में माँ के गुजरने और विमाता के आगमन ने उसके जीवन को नरक बना दिया। विमाता की उपेक्षा से संत्रस्त होकर वह एक दिन 'आकाशवासिनी अम्मा' के पास चली जाती है। सबिया का जीवन असहायता, स्वावलंबन और आत्म-विर्सजन का उत्कृष्ट उदाहरण है। उसका पति उसे छोड़कर पलायन कर जाता है। वह दूसरा घर न बसाने की प्रतिज्ञा कर जीविका की खोज शुरू कर देती है। अपने समाज में भी उसकी उपेक्षा होती है। कालांतर में उसे सौत का दुःख भी सहना पड़ता है। उसे चोर की पत्नी कहकर भी प्रताड़ित किया जाता है। पर वह हताश नहीं होती। लेखिका ने इस पात्र के प्रति अपनी घनीभूत समवेदना व्यक्त की है।

इसी प्रकार बिट्टो एक बाल विधवा है। उसके जीवन की विडम्बना यह है कि दो-दो बार विधवा बनती है। उसे कहीं चैन से जीने नहीं दिया जाता है। 'अनाहूत की माँ' नामक संस्मरण एक मातृ-पितृ हीन, बाल विधवा और वात्सल्य से भरी नारी की करुण कथा है। बालिका के दुर्बल- रक्तहीन पीले मुख, सूखे होंठ और तेलहीन दीपक की बत्ती-सी आँखें देखकर लेखिका का मन विषाद के स्थान पर क्रोध से भर जाता है। 'घीसा' में एक विधवा पर स्वाभिमानिनी अछूत स्त्री की कथा है। इसी प्रकार विधवा संस्मरण में एक अनाम स्त्री की करुण कथा आती है जो एक रोगग्रस्त पुरुष की पत्नी है। 'लछमा' में एक पहाड़ी लड़की (लछमा) की करुण कहानी कही गई है।

'स्मृति की रेखाएँ' में भी प्रताड़ित और शोषित स्त्रियाँ संघर्ष करती दीख पड़ती हैं। महादेवी वर्मा ने अपनी नारी पात्रों की बेबसी ही नहीं दिखाई है बल्कि उनके संघर्ष को भी रूपायित किया है। यह मुख्य बात है, 'भक्तिन' आजीवन संघर्ष करती है। पति की मृत्यु के बाद भी वह हार नहीं मानती और अपने बलबूते पर बेटी की शादी करती है। पर यहाँ फिर एक पुरुष उसकी बसी-बसाई गृहस्थी उजाड़ देता है। उसका नाकारा दामाद उसे कंगाल कर देता है। इसी प्रकार मुन्नू की माई अपने को परिवार के प्रति समर्पित कर देती है, त्याग करती है, खुद कष्ट सहती है, पर हताश नहीं होती है। बिबिया एक धोबी की लड़की है। तीन-तीन बार उसकी शादी होती है, पर हर बार उसे पति की प्रताड़ना ही सहनी पड़ती है। कभी उसे झगड़ालू पति मिलता है, तो कभी शराबी-जुआरी, तो कभी वृद्ध निरूपाय। वह अपने जीवन से संघर्ष करते करते थक जाती है और आत्महत्या कर लेती है।

गुंगिया महादेवी वर्मा की ऐसी निरीह पात्र है जो न सुन सकती है और न बोल सकती है। वह महादेवी के जीवन से काफी जुड़ी हुई है। उसके जीवन की त्रासदी भी महादेवी ने पूरी समवेदना के साथ व्यक्त की है। अपने रेखाचित्रों के माध्यम से महादेवी वर्मा ने नारी जीवन के अनेक चित्र उकेरे है। इसमें जगह-जगह पर उनका नारी संबंधी दृष्टिकोण भी प्रतिबिंबित हुआ है, पर प्रत्यक्ष रूप में यह दृष्टिकोण 'श्रृंखला की कड़ियाँ' में अभिव्यक्ति पा सका है। महादेवी जी ने अपने इन लेखों में नारी शोषण पर जमकर प्रहार किया है।

महादेवी वर्मा खुद नारी थीं अतः वह नारी के दुःख दर्द को अच्छी तरह समझती थी। तत्कालीन समाज में नारी की घर और बाहर दोनों जगह एक-सी हालत थी। पिता उसे दुकान में रखी हुई एक बिकाऊ चीज़ समझता था जिसे वह उचित अथवा अनुचित दामों में बेचने में नहीं हिचकता था। पितृ गृह से बिककर वह पति के घर जाती थी, कुछ दिन तो नई 'वस्तु' सबको अच्छी लगती थी पर उससे मन ऊब जाता था। लोग उसकी उपेक्षा करने लगते थे। पति को परमेश्वर मानकर पूजती रहे तो परिवार में भी कुछ सम्मान मिल जाता है। महादेवी वर्मा कहती है- "हिंदू नारी का घर और समाज, इन्हीं दो से विशेष सम्पर्क रहता है।

परंतु इन दोनों ही स्थानों में उसकी स्थिति इतनी करूण है इसके विचार मात्र से ही किसी भी सहृदय का हृदय कांपे बिना नहीं रहता। अपने पितृगृह में उसे वैसे ही स्थान मिलता है जैसा किसी दुकान में उस वस्तु को प्राप्त होता है जिसके रखने और बेंचने दोनों ही में दुकानदार को हानि की संभावना रहती है.... पति गृह, जहाँ इस उपेक्षित प्राणी को जीवन का शेष भाग व्यतीत करना पड़ता है, अधिकार में उससे कुछ अधिक परंतु सहानुभूति में उससे बहुत कम, उसमें संदेह नहीं।" यह पंक्तियाँ शृंखला की कड़ियाँ से लिया गया है।

उन्होंने एक कड़वा यथार्थ हमारे समाने रखा है- "इस समय तो भारतीय पुरुष जैसे अपने मनोरंजन लिए रंग-बिरंगें पक्षी पाल लेता है, उपयोग के लिए गाय या घोड़ा पाल लेता है, उसी प्रकार यह एक स्त्री को भी पालता है तथा अपने पालित पशु पक्षियों के समान ही यह उसके शरीर और मन पर अपना अधिकार समझता है।" यह पंक्तियाँ श्रृंखला की कड़ियाँ से लिया गया है।

महादेवी वर्मा ने जिस अधिकार के साथ गृहस्थ-नारी पर लिखा है उसी अधिकार के साथ उन्होंने वेश्याओं के बारे में भी लिखा है। समाज का अभिशाप, गंदगी और कीचड़ मानी जाने वाली इन वेश्याओं के प्रति महादेवी जी की सहानुभूति है- "यदि स्त्री की ओर देखा जाए तो निश्चय ही देखने वाला कांप उठेगा। .....उसे जीवन भर आदि से अंत तक सौंदर्य की हाट लगानी पड़ी।

अपने हृदय की समस्त कोमल भावनाओं को कुचलकर, आत्मसमर्पण की इच्छाओं का गला घोंटकर रूप का क्रय-विक्रय करना पड़ा और परिणाम में उसके हाथ आया निराश, हताश, एकाकी अंत.....जीवन की एक विशेष अवस्था तक संसार उसे चाटुकारी से मुग्ध करता रहता है, झूठी प्रशंसा की मदिरा से उन्मत करता रहता है, उसके सौंदर्यदीप पर शलभ-सा मंडराता रहता है, परंतु उस मादकता के अंत में, उस बाढ़ के उतर जाने पर उसकी ओर कोई सहानुभूति भरे नेत्र भी नहीं उठाता।" यह पंक्तियाँ श्रृंखला की कड़ियाँ से लिया गया है। इस प्रकार महादेवी वर्मा ने अपनी रचनाओं में नारी जीवन के वैषम्य और शोषण को पूरे तीखेपन के साथ अभिव्यक्त किया है। अपने इन लेखों में महादेवी जी ने नारी के प्रति किए जा रहे अत्याचारों का दृढ़ स्वर में विरोध किया है।

10.5.3. सामाजिक रूढ़ियाँ

महादेवी वर्मा ने दलित, उपेक्षित वर्ग तथा नारी समुदाय पर हो रहे जुल्म पर प्रहार करने के साथ-साथ समाजिक रूढ़ियों पर भी प्रहार किया है। उनका मानना था कि अतीत और वर्तमान के सुदर संगम से ही विकासोन्मुख भविष्य का निर्माण हो सकता है। पर जीर्ण-संकीर्ण अतीत को ढोना अपने आप को छोटे दायरे में समेटना होगा। अतीत से शिक्षा लेनी चाहिए, उसका अंधानुकरण नहीं करना चाहिए। महादेवी वर्मा लिखती हैं- "समस्त सामाजिक नियम मनुष्य की नैतिक उन्नति तथा उसके सर्वतोमुखी विकास के लिए आविष्कृत किए गए हैं। जब वे ही मनुष्य के

विकास में बाधा डालते रहते हैं, तब उनकी उपयोगिता ही नहीं रह जाती ।" यह पंक्तियाँ श्रृंखला की कड़ियाँ से लिया गया है। निश्चित रूप से इस संदर्भ में महादेवी वर्मा के विचार प्रगतिशील थे।

प्राचीनता और नवीनता को देख परखकर वे आगे बढ़ना चाहती थीं, समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन चाहती थीं । महादेवी जी ने वर्तमान समाजिक व्यवस्था और परंपरागत संस्कारों पर कहीं इतना दारूण आघात किया है कि पाठक तिलमिला उठता है- "यदि दुर्भाग्य से स्त्री के मस्तक का सिन्दूर धुल गया तो उसके लिए संसार ही नष्ट हो गया। उनकी आज्ञा है, उनके शास्त्रों की आज्ञा है और कदाचित उनके निर्मम ईश्वर की आज्ञा है कि वे ज़मीन की प्रथम अंगड़ाई को अंतिम प्रणायाम में परिवर्तित कर दें, आशा की पहली सुनहली किरण को विषाद के निविड़ अंधकार में समाहित कर दें और सुख के मधुर पलकों को आँसुओं में बहा डालें ।" यह पंक्तियाँ श्रृंखला की कड़ियाँ से लिया गया है। इन सभी पंक्तियों में लेखिका ने शास्त्रों के बने बनाए नियमों के प्रति अपनी अनास्था प्रकट की है, इसके साथ-साथ उनका विद्रोह स्वर भी प्रकट हुआ है। उन्होंने अपने निबंधों में सर्वत्र समाज की ह्रसोन्मुखी विकृतियों का पर्दाफाश किया है।

10.6. सारांश

महादेवी वर्मा के गद्य साहित्य का अध्ययन किया। यह पाठ्यक्रम नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना से सम्बद्ध है, अतः इस इकाई में इस बात का हमेशा ध्यान रखा गया है कि महादेवी के गद्य में नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना के तत्वों को उजागर किया जाए। महादेवी के गद्य साहित्य में दलित और पीड़ित समुदाय के प्रति सहानुभूति, समवेदना और उनके शोषण के खिलाफ आक्रोश की अभिव्यक्ति हुई है। रेखाचित्र हो या निबंध, सर्वत्र उन्होंने उपेक्षित वर्ग और नारी समुदाय के कष्टों को प्रकाशित किया है।

उन्होंने न केवल इस कष्ट को पाठकों के सामने रखा है बल्कि उन्होंने इन कष्टों के निवारण के उपायों की ओर भी इशारा किया है। उनके साहित्य में केवल वेदना का हाहाकार ही नहीं है बल्कि नवनिर्माण का स्वर भी है। यह नवनिर्माण अतीत और वर्तमान के सुंदर और संतुलित मेल से ही संभव होगा। समाज के रूढ़ और जर्जर मान्यताओं को इसके लिए उखाड़ फेंकना जरूरी है।

महादेवी ने अपने वास्तविक जीवन में समाज के बने बनाए बंधनों और नियमों को तोड़ा, जिसकी झलक उनके साहित्य में भी मिलती है। उन्होंने हमेशा नारी-स्वातंत्र्य की वकालत की और नारी को शोषण और परतंत्रता की बेड़ी से मुक्त करने का प्रयास किया। उनकी अपने जीवन की वेदना आम जनता की वेदना से जुड़ गई है, जिससे उनका साहित्य संवेदना और मार्मिकता से संपृक्त हो गया है। महादेवी वर्मा ने संस्मरण और रेखाचित्र की अद्भुत मिली-जुली विधा विकसित की। श्रृंखला की कड़ियाँ में नारी पीड़ा और विद्रोह का सुन्दर दस्तावेज है।

10.7. बोध प्रश्न

1. महादेवी वर्मा के गद्य में नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना का स्वर किस रूप में मुखरित हुआ है ?
2. महादेवी वर्मा ने अपने साहित्य में आम आदमी का चित्रण किस रूप में किया है?
3. महादेवी वर्मा के नारी विषयक दृष्टिकोण पर प्रकाश डालिए।
4. महादेवी वर्मा के गद्य की भाषा पर टिप्पणी कीजिए।
5. महादेवी वर्मा का गद्य साहित्य के विविध रूपों को बारे में लिखिए।

6. महादेवी वर्मा के गद्य साहित्य की विशेषताओं के बारे में लिखिए।

7. नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति के बारे में विस्तृत रूप में लिखिए।

10. 8. सहायक ग्रंथ

1. महादेवी का गद्य, सूर्य प्रसाद दीक्षित, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली।

2. महादेवी वर्मा, इन्द्रनाथ मदान सं- राधाकृष्ण, प्रकाशन दिल्ली।

3. महादेवी वर्माः कवि और गद्यकार, लक्ष्मणदत्त गौतम, कोर्णाक प्रकाशन, दिल्ली।

4. प्रसाद का काव्य- प्रेमशंकर- भारती अण्डारख प्रयाग।

5. सुमित्रानंदन पंत-नगेन्द्र- नेशनल।

6. हिंदी साहित्य- 20वीं शताब्दीः आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी।

7. छायावादः पुनर्मूल्यांकनः सुमित्रानन्दन पन्त।

8. छायावाद युगः शंभुनाथ सिंह, सरस्वती मंदिर, वाराणसी; 1962 छायावाद के गौरव चिह्नः प्रो. क्षेमेन्द्र।

9. छायावादी कवियों का सौन्दर्य विधानः डॉ. सूर्यप्रसाद दीक्षित।

10. छायावादः राजेश्वरदयाल सक्सेना।

11. नवजागरण और छायावादः महेन्द्र नाथ राम, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली।

डॉ. सूर्य कुमारी. पी

11. महादेवी वर्मा: काव्य-भाषा

11.0. उद्देश्य

हिन्दी की प्रतिभावान कवयित्रियों में से महादेवी वर्मा एक है जिनकी गणना छायावाद के चार प्रमुख स्तम्भों में की जाती है। अनुभूतियां जब तीव्र होकर कवि हृदय से उच्छलित होती है तो उन्हें कविता के रूप में संजोया जाता है। महादेवी वर्मा ने मन की इन्हीं अनुभूतियों को अपने काव्य में मर्मस्पर्शी, गंभीर तथा तीव्र संवेदनात्मक अभिव्यक्ति प्रदान की है। महादेवी जी ने अपना काव्य वेदना और करुणा की कलम से लिखा उन्होंने अपने काव्य में विरह वेदना को इतनी सघनता से प्रस्तुत किया कि शेष अनुभूतियां भी उनकी पीड़ा के रंगों में रंगी हुई जान पड़ती है।

महादेवी का विरह उनके समस्त काव्य में विद्यमान है। वे वेदना से प्रारंभ करके वेदना में ही अपनी परिणति खोज दिखाई देती है। महादेवी जी की वेदनानूभूति संकल्पनात्मक अनुभूति की सहज अभिव्यक्ति है। उनकी काव्य की पीड़ा को मीरा की काव्य पीड़ा से बढ़कर माना गया है। महादेवी के काव्य का प्राण तत्व उनकी वेदना और पीड़ा रहे। वे स्वयं लिखती है। दुःख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है जो सारे संसार को एक सूत्र में बांधने की क्षमता रखता है। महादेवी की विरह वेदना में परम तत्व की अभिव्यक्ति दिखाई देती है। उनके काव्य का मुख्य प्रतिपाद्य प्रिय से बिछौडना और उसे खोजने की आतुरता है। महादेवी जी ने अपने काव्य में आत्मा और परमात्मा के वियोग को विरहानुभूति के रूप में प्रस्तुत किया है।

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

1. महादेवी वर्मा की विरह वेदना के कारक तत्वों से परिचित होंगे।
2. महादेवी की विरहानुभूति के स्वरूप से अवगत होंगे।
3. महादेवी के विरहानुभूति की आधार भूमि से परिचित होंगे।
4. रहस्यवाद के अर्थ एवं स्वरूप से परिचित होंगे।
5. महादेवी की रहस्य भावना के विविध पक्षों से परिचित होंगे।
6. महादेवी के रहस्यवाद में विविध सोपानों का उद्घाटन होगा।

रूपरेखा

11.1. प्रस्तावना

11.2. महादेवी वर्मा की विरहानुभूति

- 11.2.1. प्रियतम के प्रति आकुलता पूर्ण विरह-निवेदन
- 11.2.2. संसार तथा जीवन की नश्वरता
- 11.2.3. करुणा भाव
- 11.2.4. दुःख वाद

11.3. रहस्यवाद

11.3.1. रहस्यवाद: परिभाषा

11.4. महादेवी वर्मा की रहस्य भावना

11.4.1. बौद्ध दर्शन

11.4.2. अद्वैत दर्शन

11.4.3. ब्रह्म

11.4.4. सृष्टि

11.4.5. जीवात्मा

11.4.6. माया

11.4.7. मुक्ति

11.4.8. रहस्यवाद के सोपान

11.5. सारांश

11.6. बोध प्रश्न

11.7. सहायक ग्रंथ

11.1. प्रस्तावना

वेदना जीवन का अनिवार्य भाव है। इसीलिए आदिकाल से ही वेदना और काव्य का अविच्छिन्न सम्बन्ध रहा है। वेदना काव्य को स्पन्दन देती आई है। महादेवी वर्मा की वेदना हिन्दी साहित्य की सर्वोत्कृष्ट निधि है, इनकी विरह वेदना के कारक तत्वों के विषय में हिन्दी आलोचक एक मत नहीं हैं। शचीरानी गुटूं ने इनके असफल वैवाहिक जीवन को इनकी वेदना का मूल कारण यौवन के तूफानी क्षणों में जब उनका अल्हड़ हृदय किसी प्रणयी के स्वागत को मचल रहा था और जीवन - गगन के रकाम-पट पर स्नेह ज्योत्स्ना छिटकी पड रही थी तभी अकस्मात् विफल प्रेम की धूप खिलखिला पड़ी और पुलकते प्राणों की धूमिलता में अस्पष्ट रेखाएँ -सी अंकित कर गई। आत्म संयम का व्रत लिये हुए उन्होंने जिस लौकिक प्रेम को ठुकराकर पीड़ा को गले लगाया, वह कालान्तर में आंतरिक शीतलता से स्नात होकर बहुत कुछ निखर तो गई, किन्तु उनके हठीले मन का उससे कभी लगाव न छूटा और वे उसे निरन्तर कलेजे से चिपटाये रखने की मानो हठ पकड़ बैठी।

डॉ. नगेन्द्र का मत इस प्रकार था कि-सामयिक परिस्थितियों के अनुरोध से जीवन से रस और माँस न ग्रहण कर सकने के कारण वह एक तो वांछित शक्ति का संचय न कर पाई। दूसरे एकान्त अन्तर्मुख हो गई। इन उदाहरणों से यही निष्कर्ष निकलता है कि महादेवी की विरह वेदना का मूल कारण तो भौतिक ही है जो उदात्त बन कर रहस्यवादी या अलौकिक बन गया है। महादेवी वर्मा का विषय में कहना है सुख-दुख की धूपछाँही डोरों से बुने हुए जीवन में मुझे केवल दुःख गिनते रहना क्यों प्रिय है, यह बहुत लोगों के लिए आश्चर्य का कारण है। जीवन में मुझे बहुत आदर और बहुत मात्रा में सब कुछ मिला है, उस पर पार्थिव दुख की छाया न पड़ी। कदाचित यह उसी की प्रतिक्रिया है कि वेदना मुझे इतनी मधुर लगने लगी है।

11.2. महादेवी वर्मा की विरहानुभूति

महादेवी वर्मा की कविता का संसार विस्तृत नहीं है न ही उसमें विविधता है परन्तु एक निश्चित उद्देश्य, एक निश्चित स्वप्न लेकर ये कविताएँ लिखी गई हैं। जीवन को अधिक समृद्ध, अधिक सार्थक तथा उपयोगी बनाने की कामना ये वह बार-बार जीवन के लक्ष्य की ओर संकेत करती हैं। इस प्रकार उनकी कविता जीवन के निकट है अतः उन्हें दुख के दोनों रूप प्रिय हैं- एक यह जो मनुष्य के संवेदनशील हृदय को सारे संसार से एक अविच्छिन्न बंधन में बाँध देता है और दूसरा वह जो काल और सीमा के बंधन में पड़े हुए असीम चेतन के क्रन्दन को स्वीकारता है। डॉ. इन्द्रनाथ मदान ने इसको भारतीय समाज में परतन्त्र नारी के क्रन्दन का भी प्रतीक माना है। महादेवी वर्मा की विरहानुभूति को निम्नांकित शीर्षकों के अन्तर्गत विवेचित किया जा सकता है।

11.2.1. प्रियतम के प्रति आकुलतापूर्ण विरह-निवेदन

हिन्दी आलोचकों का महादेवी पर यह आक्षेप है कि इनका प्रियतम काल्पनिक है, अतः इनकी विरह वेदना भी अवास्तविक और काल्पनिक है स्वयं कवयित्री इस आक्षेप का खण्डन करते हुए कहती हैं-

1. जो न प्रिय पहचान पाती ?
2. दौड़ती क्यों प्रति शिरा में प्यास विद्युत से तरल बन ?
3. क्यों अचेतन रोम पाते चिर-व्ययामय सजग जीवन ?
4. किसलिए हर साँस तम में सजल दीपक राग गाती ?
5. जो न प्रिय पहचान पाती ?

इससे स्पष्ट है कि कवयित्री का प्रियतम उसके लिए जाना-पहचाना है, जिसके विरह में वह रात-दिन दीपक की भाँति जलती रहती है। उसने प्रकृति के कण-कण से अपने प्रियतम का आभास पाया है, संसार के प्रत्येक प्रकाश में उसकी ज्योति देखी है पर फिर भी वह प्रियतम उसकी विरह वेदना को मिटा नहीं सकता है, बल्कि उसने तो निरन्तर उसकी वेदना को बढ़ाया ही है-

जीवन है उन्माद तभी से निधियों प्राणों के छाले,
माँग रहा है विपुल वेदना के मन प्याले पर प्याले।

अत्यधिक विरह ने कवयित्री के मन में दृढ़ता का अभाव में वह चुनौती सी देती हुई कह उठती है-

चिता क्या है है निर्मम ! बुझ जाये दीपक मेरा,
हो जाएगा तेरा ही पीड़ा का राज्य अंधेरा

विरह को सहते-सहते कवयित्री का पीड़ा से इतना लगाव हो जाता है कि वह पीड़ा को ही प्रियतम मिलन का साधन मान बैठी है-

पर शेष नहीं होगी यह मेरे प्राणों की क्रीड़ा,
तुमको पीड़ा में ढूँढा तुममें ढूँढूंगी पीड़ा।

यही पीड़ा अन्त में कवयित्री को वह शक्ति प्रदान करती है कि वह अपने प्रियतम से तादाकार हो जाती है, ठीक उसी तरह जिस तरह चित्र और रेखा का मधुर राग और स्वरों का अविच्छिन्न सम्बन्ध होता है और प्रेयसी तथा प्रियतम की द्वैत केवल भ्रमात्मक रह जाती है-

चित्रित तू मैं हूँ रेखा-क्रम,
मधुर राग तू में स्वर संगम
तू असीम मैं सीमा का भ्रम
काया छाया में रहस्यमय ?

इस प्रकार महादेवी वर्मा का विरह केवल दुख का भाव नहीं है, वरन यह एक प्रकार की साधना है जो परम प्रियतम से मिलन में सहायक सिद्ध होती है।

11.2.2. संसार तथा जीवन की नश्वरता

संसार तथा जीवन नश्वरता भी महादेवी वर्मा की विरह वेदना को बढ़ावा देती है। वह संसार की क्षण भंगुरता को देखकर अत्यन्त दुखी हो उठती हैं-

देकर सौरभ दान पवन से कहते जब मुरझाये फूल.
जिसके पथ में बिछे वही क्यों भरता इन आँखों में धूल ?
अब इसमें क्या सार मधुर जब गाती भौंरों की गुंजार,
मर्मर का रोदन कहता है कितना निष्ठुर है संसार।

इस निष्ठुर संसार में रहने वाला व्यक्ति केवल अपने ही सुख-दुख में लीन रहता है। किसी दूसरे के दुख में करुणा से विगलित होने का उसके पास समय ही नहीं है। तभी तो महादेवी वर्मा कहती हैं-

जब न तेरी ही दशा पर दुख हुआ संसार को,
कौन रोयेगा सुमन हमसे मनुज निःसार को

जीवन-जगत की क्षण भंगुरता को उन्होंने एक शाश्वत सत्य के रूप में व्यक्त किया है-

सूखे यह माया का संसार, क्षणिक है तेरा मेरा संग,
यहाँ रहता काँटो में बन्धु सुमन का यह चटकीला रंग

इसी संदर्भ में उन्होंने उत्सर्ग अथवा बलिदान की भावना व्यक्त की है-

स्निग्ध अपना जीवन कर झार दीप करता आलोक प्रसार,
गला कर मृत पिंडों में प्राण,
बीज करता असंख्य निर्माण,
सृष्टि का है यह अमिट विधान,

एक मिटने में सौ वरदान

इससे स्पष्ट हो जाता है कि उन पर जीवन जगत की क्षणिकता और उत्सर्ग से निर्माण की दिशा में उन पर आस्तिक दर्शनों के शाश्वत सत्य का प्रभाव अधिक है।

11.2.3. करुणा भाव

करुणा महादेवी वर्मा की विरहानुभूति का आधार है। यह करुणा बौद्धों की महाकरुणा है जिसमें दूसरों के दुखों से द्रवीभूत होने की क्षमता है। इसी करुणा के चलते कवयित्री अपने सम्पूर्ण जीवन को दूसरों के दुख दूर करने के लिए बलिदान करने के लिए कटिबद्ध है। उसकी साध यही है कि या तो मैं नीर भरी दुख की बदली बनकर संतप्त जगत पर बरसकर उसे शान्ति प्रदान करूँ या अचंचल दीप की भाँति निरन्तर जलकर पथ भ्रष्ट पथिकों का पथ-प्रदर्शन करूँ। वह एक मात्र वरदान चाहती हैं कि दूसरों के सुख के लिए स्वयं को निरन्तर मिटाती रहूँ-

नित घिरुँ झर-झर मिटू प्रिय

घन बनूँ पर दो मुझे प्रिय

बादल एवं दीपक के प्रतीक इनकी अजन करुणा के परिचायक हैं। करुणा में आ कंठ निमग्न होने के कारण दुख और पीड़ा से इनका सहज लगाव हो गया है। दुःख इनका प्रिय सहचर बन गया है जिससे पृथक होना उन्हें अभीष्ट नहीं। वह तो अपना समर्पण भी उसी व्यक्ति को करना चाहती है जिसने इनकी भाँति दुख से मित्रता कर ली हो -

प्रिय जिसने दुख पाला हो।

वर दो यह मेरा आँसू उसके उर की माला हो।

इस प्रकार कवयित्री अपनी संकीर्ण परिधि से निकल कर जीवन और जगत की उस व्यापक सीमा पर आ गई है जहाँ वह सभी के दुख को पहचान सकती हैं। उन्हीं के शब्दों में -

अलि मैं कण-कण को जान चली,

सबका क्रंदन पहचान चली।

कवयित्री के मन में दूसरों के दुख दूर करने की प्रबल आकांक्षा है वह धूप बनकर दूसरों का जीवन एवं दीप बनकर सबको प्रकाश देने की कामना करती हुई कहती हैं-

पथ में मृदु स्वेद कण चुन, छाँह से भर प्राण उन्मन

तम- जलधि में नेह का मोती रखूंगी सीप-सी मैं धून-सा तन दीप-सी मैं

महादेवी की विरहानुभूति ने इन्हें दृढ़ आत्म-विश्वास भी प्रदान किया है जिसके बल पर वह संसार की सभी बाधाओं से जूझ जाने की क्षमता रखती हैं। निम्नलिखित पंक्तियों में इनका यही दृढ़ आत्म-विश्वास मुखरित होता है-

और होंगे नयन सूखे तिल बुझे औं पलक रूखें,

आर्द्र चितवन में यहाँ रात विद्युतों में दीप खेला।

अतः महादेवी की विरहानुभूति निराशाजन्य नहीं वरन् आशा से पूर्ण है उनका विचार है आग हो डर में तभी दृग में सजेगा आज पानी मात्र करुणा सार्थकता तभी है जब हम इस स्थिति को दूर करने के लिए कटिबद्ध हो जाये।

यह शक्ति, यह संघर्ष उनके विरह की विशेषता है। ये आँसू प्रभात की चाह लेकर आँखों में आए हैं। उनकी पलकों में जो स्वप्न हैं वे उसे प्रत्येक व्यक्ति तक पहुँचाना चाहती है-

यह चंचल सपने भोले मैंने मृदु

पलकों पर तोते हैं

वे सौरभ से पंखा इन्हें सब नयनों में पहुँचाना है।

हिन्दी आलोचकों ने महादेवी को विरहानुभूति की कवयित्री तो माना परन्तु उन्हें अन्तर्मुख वैयक्तिक अनुभूतियों तक ही सीमित रखा और उन्हें पलायनवादी भी कहा गया। उनकी इस प्रवृत्ति को डॉ. नगेन्द्र आध्यात्मिक से न जोड़कर मानसिक शारीरिक अतृप्तियों और कुण्ठा से जोड़ते हैं। डॉ. विनय मोहन वर्मा के अनुसार महादेवी के काव्य में पीड़ा और पलायन के सिवा कुछ नहीं। डॉ. लक्ष्मी नारायण सुधांशु कहते हैं कि उनका काव्य उनके एकाकी जीवन का प्रतिबिम्ब है। किसी अभाव ने ही उनके जीवन को विरहानुभूति से भर दिया है। परन्तु यदि महादेवी का सही मूल्यांकन किया जाये तो हम पाते हैं कि यदि उनमें निराशा और दुख है तो दूसरी ओर आशा और जीवन की आकांक्षा भी हैं। उनमें पीड़ा और पलायन है तो विद्रोह और संघर्ष भी है। इस संदर्भ में डॉ. मैनेजर पाण्डेय का कथन अक्षरशः सही है - महादेवी वर्मा की कविता के साथ आलोचनात्मक पूर्वाग्रह की स्थिति दिखाई देती है। यह ठीक है कि उनकी कविता में दुख है, वेदना है, निराशा है, आँसू हैं, अन्तर्मुखता है और अभिव्यक्ति शैली में परोक्ष की प्रधानता है। पर साथ ही है वहाँ असन्तोष है, आक्रोश है और संघर्ष की चेतना भी आलोचकों ने उनके आँसुओं पर ध्यान दिया है लेकिन उनके आक्रोश पर नहीं प्रायः आलोचकों न यह थी देखने समझने की कोशिश नहीं की है कि महादेवी वर्मा की कविता में जो दुख, वेदना, निराशा और अन्तर्मुखता है वह सब उनके समय की और आज की थी भारतीय स्त्री के जीवन की वास्तविकताएं हैं और संभावनाएं थी।

11.2.4. दुःखवाद

महादेवी की कविताओं का केन्द्र बिन्दु दुख है। यह दुखवाद दो आधार भूमियों पर टिका है आध्यात्मिक और मानवतावादी भावभूमि। मनुष्य ही नहीं उनकी चिंता तो पक्षियों के प्रति भी दिखाई देती है-

पथ न भूले एक पग भी

घर न खाए लघु विहग भी

स्निग्ध लौ की तूलिका से

आँक सबकी छाँह उज्जवल।

उनकी कविताओं में दिन के उजाले की अपेक्षा रात का अंधेरा अधिक है। रात के अपार अन्धकार और निस्तब्धता में एक जलते हुए दीपक का चित्र बार-बार उभरता है। जलना मानो उनके जीवन का पर्याय बन गया। "दीपशिखा के दो शब्द में वे लिखती है- "आलोक मुझे प्रिय है पर दिन से अधिक रात का दिन में तो अंधकार से उसके संघर्ष का पता ही नहीं चलता। परन्तु रात में हर झिलमिलाती लौ योद्धा की भूमिका में अवतरित होती है।"

डॉ. रामविलास वर्मा कहते हैं कि महादेवी की कविता का परिचय नीर भरी दुःख की बदली कहकर नहीं दिया जा सकता वरन् उसके लिए उपयुक्त पंक्ति है- रात के उर में दिवस की चाह का शर हूँ। यह दुःख, यह अकेलापन, यह

अंधकार तथा निराशा का भाव इसलिए चित्रित है क्योंकि जीवन की चाह है, सुख की कामना है तथा प्रकाश की प्रतीक्षा है महत्वपूर्ण बात यह है कि इस दुःख तथा संघर्ष से वे हार मानने वाली नहीं हैं। वे कहती हैं मनुष्य मेरे लिए मेरे निकट निरंतर बड़ा है। जीवन से उन्हें अथाह प्रेम है तभी वे ऐसी बातें कह सकी हैं।

1. पंथ होने दो अपरिचित

प्राण रहने दो अकेला

अन्य होंगे चरण हारे

और हैं जो लोटते दे शूल को संकल्प सारे

दुःख उनके जीवन पथ की क्षणिक अनुभूति नहीं, उनकी सम्पूर्ण साहित्य साधना का मूलाधार है और सबसे महत्वपूर्ण बात यह कि उनमें लोक में व्याप्त दुख और निजी दुख को दूर करने की प्रबल आकांक्षा है। पीड़ा के चित्रण मात्र से कोई जीवन को अस्वीकार नहीं। डॉ. राम विलास शर्मा ने उचित ही लिखा है करने लग जाता। जीवन में वांछित सौंदर्य और आनन्द के मिलने से भी मनुष्य को पीड़ा होती है। संसार में अगणित मनुष्यों को शोषित और त्रस्त देखकर किसी भी सदस्य को पीड़ा होगी। इस तरह की पीड़ा की अभिव्यक्ति जीवन की स्वीकृत ही मानी जायेगी। वस्तुतः उनमें वस्तुजगत के साथ संबंध कहीं भी शिथिल नहीं हुआ है। यह विश्व और उसकी विरह वेदना उनके चिन्तन के दायरे में बनी रहती है।

डॉ. शिव कुमार मिश्र मानते हैं कि महादेवी जीवन और जगत को अपनी कविताओं में नहीं भूली हैं। जीवन के प्रति उनका आत्मीय लगाव है और धरती के सौन्दर्य की वे अदभुत चितेरी हैं। डॉ. मिश्र लिखते हैं-जहाँ तक महादेवी के काव्य में पीड़ा और वेदना की विवृत्ति का, आँसुओं के साम्राज्य का अथवा चिर विरह की अनुभूति का प्रश्न है, अपने रहस्यवादी ओवरटोन्स में भी ये सब मानवीय और लौकिक संदर्भों से विरहित नहीं है। जगह-जगह उन्होंने अपनी इस वैयक्तिक पीड़ा तथा वेदना को अथवा आँसुओं की अथाह राशि को विश्व में व्याप्त पीड़ा तथा वेदना से एकीकृत किया है? अपनी करुणा की अक्षय पूँजी को संसार की निर्धनता एवं अभावों पर लुटाया है रहस्यवाद के छद्म को हटाकर देखें महादेवी की कविता की आधारभूमि नितांत मानवीय हैं।

11.3. रहस्यवाद

रहस्य - भावनाओं का चिन्तन एवं उनकी अभिव्यक्ति भारतीय दर्शन तथा काव्य की प्रमुख प्रवृत्ति रही है। हिन्दी का निर्गुण साहित्य तो एक प्रकार से दर्शनों की काव्यभिव्यक्ति कहा जा सकता है। यह प्रवृत्ति मध्ययुगीन कवियों से लेकर आधुनिक कवियों तक दिखाई देती हैं। परन्तु रहस्यवाद हिन्दी में छायावादी काव्य आन्दोलन से सम्बद्ध है। डॉ. नामवर सिंह के अनुसार "हिन्दी साहित्य में रहस्यवाद" शब्द का प्रयोग 1920 से पहले नहीं दिखायी पड़ता। जब मुकुटधर पाण्डेय, सुमित्रानंदन पंत, जयशंकर प्रसाद की नवीन कविताएँ प्रकाश में आयीं तो उनकी आलोचनाप्रत्यालोचन के सिलसिले में 'रहस्यवाद' शब्द का प्रयोग किया गया। कवीन्द्र रवीन्द्र की अंग्रेजी गीतांजलि' को देशी-विदेशी आलोचनों ने मिस्टिक कहा था इसलिए हिन्दी में भी उस तरह की कविताओं को मिस्टिसिज्म समझकर उनके लिए हिन्दी शब्द रहस्यवाद चलाया गया।

11.3.1. रहस्यवादः परिभाषा

रहस्य, रहस्यानुभूति, रहस्यवाद शब्द अंग्रेजी के मिस्ट्री (Mystry) मिस्टिक (Mystic) और मिस्टिसिज्म (Mysticism) से सम्बद्ध हैं। 'मिस्ट्री' का सामान्य अर्थ है कोई गुप्त या छिपी हुई बात जिसे 'रहस्य' कहा गया। 'मिस्टिसिज्म' का अर्थ है- अन्तिम सत्य या परमात्मा से एकता की तात्कालिक अनुभूति। अतः कहा जा सकता है कि रहस्यवाद का सम्बन्ध एक विशिष्ट अनुभूति से है। इसका क्षेत्र आध्यात्मिक है और इसका लक्ष्य आत्मा और परमात्मा की एकता की अनुभूति प्राप्त करना है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रहस्यवाद के आध्यात्मिक रूप पर अधिक बल दिया है। उनके अनुसार साधना के क्षेत्र में जो अद्वैतवाद है, काव्य के क्षेत्र में वही रहस्यवाद हैं। इन्होंने रहस्यवाद को दो प्रकार का माना है- साधनात्मक और भावात्मक / साधनात्मक रहस्यवाद प्राचीन कवियों में पाया जाता है और भावात्मक रहस्यवाद छायावादी कविता में शुक्ल जी ने छायावादी कवियों में केवल महादेवी को ही रहस्यवादी कवयित्री स्वीकार किया है। उनके अनुसार अन्य कवि तो प्रतीकात्मक और लाक्षणिक अभिव्यंजना के द्वारा छायावाद के अन्तर्गत आते हैं। शुक्ल अद्वैतवादी और रहस्यवादी को समान मानते हैं अद्वैतवादी चिन्तन और तर्क को प्रधानता देता है और अपने लक्ष्य की प्राप्ति पर आश्चर्यचकित हो उठता है जबकि रहस्यवादी उस स्थिति पर पहुँचकर अपना सब कुछ खोकर आनन्दविहवल हो उठता है।

सर्वत्र उसे प्रिय का ही दर्शन होता है। डॉ. रामकुमार वर्मा रहस्यवाद की परिभाषा करते हुए लिखते हैं कि - "रहस्यवाद जीवात्मा की उस अन्तर्निहित प्रवृत्ति का प्रकाशन है जिसमें वह दिव्य और अलौकिक सत्य से अपना शांत और निश्छल संबंध जोड़ना चाहती है, यह संबंध यहाँ तक बढ़ जाता है कि दोनों में कुछ भी अंतर नहीं रह जाता।" डॉ. वर्मा के अनुसार ब्रह्म और जीव का संबंध उन्हें अभिन्न स्थिति तक पहुँचा देता है। जीव अपनी पृथक सत्ता को भूलकर ब्रह्म में लीन हो जाता है। डॉ. विश्वम्भर मानव का कथन भी लगभग यही है। उनके अनुसार "आत्मा और ब्रह्म की इसी पारस्परिक प्रणयानुभूति को रहस्यवाद कहते हैं। डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी लिखते हैं- "रहस्यवाद रहस्यदर्शियों का वह सांकेतिक कथन या वाद है जिसके मूल में अखंडानुभूति और तत्वानुभूति निहित हैं।"

जयशंकर प्रसाद रहस्यवाद की परम्परा को अत्यन्त प्राचीन मानते हैं और अपने कथन को पुष्ट करने के लिए आगम ग्रंथों से उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। उनकी दृष्टि में "काव्य में आत्मा की संकल्पात्मक मूल अनुभूति की मुख्यधारा रहस्यवाद है।" प्रसाद रहस्यानुभूति की इस आनन्दावस्था को संकल्पात्मक मानते हैं और उसमें तर्क या बौद्धिकता को स्थान नहीं देते हैं।

महादेवी वर्मा का मानना है कि अखण्ड चेतना से तादात्म्य की स्थिति बौद्धिक भी हो सकती है किन्तु बुद्धि की अपेक्षा इसमें हृदय का विशेष महत्व है। उन्होंने प्राचीन और नए रहस्यवाद पर विचार करते हुए लिखा है- "प्राचीन काल के दर्शन में इसका अंकुर मिलता अवश्य है, परन्तु इसके रागात्मक रूप के लिए उसमें स्थान कहाँ ? वेदान्त के द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत आदि या आत्मा की लौकिकी या पारलौकिकी सत्ता विषयक मत-मतान्तर मस्तिष्क से अधिक संबंध रखते हैं, हृदय से नहीं, क्योंकि वही तो शुद्ध-बुद्ध चेतना को विकारों में लपेट रखने का एकमात्र साधन है। आज गीत में हम जिसे नए रहस्यवाद के रूप में ग्रहण कर रहे हैं, वह इन सबकी विशेषताओं से युक्त होने पर भी उन सबसे भिन्न है। उसने पराविद्या की अपार्थिवता ली, वेदान्त के अद्वैत की छाया मात्र ग्रहण की, लौकिक प्रेम से तीव्रता उधार ली और इन सबको कबीर के संकेतिक दाम्पत्य भावसूत्र में बाँधकर एक निराले स्नेह संबंध की सृष्टि कर डाली जो

मनुष्य के हृदय को आलंबन दे सका, उसे पार्थिव प्रेम के ऊपर उठा सका तथा मस्तिष्क को हृदयमय और हृदय को मस्तिष्कमय बना सका।" महादेवी रहस्यवाद में भावना को विशेष स्थान देती हैं। रहस्यवाद दर्शन और ज्ञान से आधार लेता है। परन्तु उसके भीतर जो अथाह अनुभूति का स्रोत है वह लौकिक प्रणयानुभूति पर आधारित है इसीलिए इतना मार्मिक, रागात्मक और संवेदनपरक है।

उपर्युक्त परिभाषाओं का विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट होता है कि रहस्यवाद का संबंध विश्वासात्मक सत्ता की अनुभूति से है। इसका दार्शनिक आधार अद्वैतवाद है। इसमें जीवात्मा परमात्मा के साथ निकट का संबंध स्थापित करना चाहती है। महादेवी जी के अनुसार प्रकृति के माध्यम से असीम चेतन से उस पर मधुरतम व्यक्तित्व का आरोपण करते हुए रागात्मक संबंध की स्थापना का प्रणय निवेदन रहस्यवाद है।

महादेवी रहस्यवाद को परिभाषित करते हुए कहती हैं- जब प्रकृति की अनेकरूपता में परिवर्तनशील विभिन्नता में, कवि ने ऐसा तारतम्य खोजने का प्रयास किया जिसका एक छोर किसी असीम चेतन और दूसरा उस के असीम हृदय में समाया हुआ था तब प्रकृति का एक-एक अंश एक अलौकिक व्यक्तित्व लेकर जाग उठा। परन्तु इस संबंध में मानव हृदय की सारी प्यास न बुझ सकी, क्योंकि मानवीय संबंधों में जब तक अनुरागजनित आत्मविसर्जन का भाव नहीं घुल जाता तब तक वे सरस नहीं हो पाते और जब तक यह मधुरता सीमातीत नहीं हो जाती तब तक हृदय का अभाव नहीं दूर होता। इसी से इस अनेक रूपता के कारण पर एक मधुरतम व्यक्तित्व का आरोपण कर उसके निकट आत्मनिवेदन कर देना इस काव्य का दूसरा सोपान बना जिसे रहस्यमय रूप के कारण ही रहस्यवाद का नाम दिया गया।

11.4. महादेवी वर्मा की रहस्य भावना

महादेवी वर्मा का रहस्यवादी चिन्तन उपनिषदों तथा वेदान्त की अद्वैत दर्शन पर आधारित है। उनका जीवन दर्शन बौद्धमत से प्रभावित है परन्तु अपने रहस्यवादी चिन्तन में उन्होंने बौद्ध दर्शन की मान्यताओं को कम स्वीकार किया है। उनकी ब्रह्म, जीव, सृष्टि, माया आदि से सम्बन्धित अवधारणाएं अद्वैत दर्शन से ली गई हैं। अद्वैत दर्शन और बौद्ध दर्शन भारतीय चिन्तन के दो परस्पर विरोधी धाराओं की सर्वोत्तम उपलब्धियाँ हैं। महादेवी वर्मा ने इन दोनों को आत्मसात् करके एक ऐसा रूप प्रदान किया है जहाँ दोनों में कोई विरोध नहीं।

11.4.1. बौद्ध दर्शन

बौद्ध-दर्शन के प्रति उनका आकर्षण छोटी आयु में ही हो गया था। इस संदर्भ में वह कहती हैं- "बचपन से ही भगवान् बुद्ध के प्रति एक भक्तिमय अनुराग होने के कारण उनके संसार को दुखात्मक समझने वाले दर्शन से मेरा असमय ही परिचय हो गया था।" उनके साहित्य में दुःख की भावना को प्रमुख स्थान मिला है। वह दुःख को जीवन दर्शन के रूप में व्याख्यायित करती हैं। उन्हें दुःख प्रिय है क्योंकि दुःख ही व्यक्ति को एक सूत्र में बाँधने की क्षमता रखता है।

दुःखवाद उनके चिन्तन का प्रमुख स्वर है। उन्होंने दुःखवाद को चार सूत्रों में प्रस्तुत किया है। संसार दुखों से परिपूर्ण है, दुःखों के पीछे कारण हैं, सांसारिक दुःख का निरोध हो सकता है और दुःख ही निरोध का उचित मार्ग है। वह परमात्मा को दुःख के रूप में ही देखना चाहती हैं-

तुम दुःख बन इस पथ से आना,

शूलों में नित मृदु पटल-सा,

खिलने देना मेरा जीवन,

क्या हार बनेगा वह जिसने

सीखा न हृदय को बिंधवाना।

कवयित्री संसार की प्रत्येक उपलब्धि, चाहे वह कितनी ही मूल्यवान क्यों न हो, दुःख के अस्तित्व को बनाये रखने के लिए त्याग देना चाहती है। वह मुक्ति का तिरस्कार भी इसीलिए करती है कि वहाँ वेदना के लिए कोई स्थान नहीं है।

जिसमें कसक न सुधि का दंशन

प्रिय में मिट जाने के साधन

ये निर्वाण मुक्ति उनके

जीवन के शत बंधन मेरे हों।

महादेवी वर्मा के रहस्यवादी चिन्तन पर बौद्ध मत का प्रभाव उनकी दुःख सम्बन्धी धारणाओं पर पड़ा है तो अद्वैत का प्रभाव उनकी रहस्यवादी कविताओं में मिलता है।

11.4.2. अद्वैत दर्शन

अद्वैत्त दर्शन आत्मा और परमात्मा को अभिन्न मानता है अथात् आत्मा परमात्मा का ही एक अंश है, पर शरीर का आवरण बीच में आने से दोनों भिन्न-भिन्न भासित होते हैं जब यह आवरण हट जाता है तो अंश अंशी में मिलकर तदाकार हो जाता है। आत्मा और परमात्मा के इसी प्रकार के सम्बन्ध को अद्वैत- द्वैत-भाव से रहित सम्बन्ध कहते हैं। महादेवी के काव्य में इस भावना का चित्रण भी पर्याप्त मात्रा में मिलता है यथा-

चित्रित तू मैं हूँ रेखा क्रम,

मधुर राग तू मैं स्वर-संगमः

तू असीम मैं सीमा का भ्रम,

काया छाया में रहस्यमय।

इन पंक्तियों में कवयित्री ने बताया है कि मेरा और परमात्मा का वही सम्बन्ध है जो रेखा और चित्र का, स्वर और राग का होता है। आत्मा भी परमात्मा की भाँति असीम ही है, किन्तु भ्रम के कारण शरीर का आचरण बीच में आने के कारण उसे ससीम मान लिया गया है। निम्नलिखित पंक्तियों में आत्मा और परमात्मा की द्वैत स्थिति का चित्रण है-

"बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ!

नाश भी हूँ मैं अनन्त विकास का क्रम भी

त्याग का दिन भी चरम आसक्ति का तम भी,

तार भी आघात भी, झंकार की गति भी,

पात्र भी मधु भी, मधुप भी मधुर विस्मृति भी

अधर भी हूँ और स्मित की चाँदनी भी हूँ।"

इन पंक्तियों में आत्मा के विविध रूपों से यही प्रतिपादित किया गया है कि ब्रह्म का अंश होने से आत्मा भी विविध रूपी है।

11.4.3. ब्रह्म

महादेवी ब्रह्म का असीम, अगोचर और शाश्वत सत्ता के रूप में मानती हैं। ब्रह्म के स्वरूप के प्रति उनकी पूर्ण आस्था है। ब्रह्म ही सृष्टि के आदि कारण हैं और अंत में सृष्टि उन्हीं में विलीन हो जाती है- तुम्हीं में सृष्टि तुम्हीं में नशा ब्रह्म और सृष्टि के संबंधों को उपनिषद में दृष्टांत देकर बताया गया है जैसे मकड़ी जाले को अपने आप में से उत्पन्न करती है और अंत में उसे पुनः निगल लेती है उसी प्रकार ब्रह्म से सृष्टि का सृजन और लय होता है। जिस प्रकार बीज से पेड़-पौधे उत्पन्न होते हैं उसी प्रकार ब्रह्म से सृष्टि उत्पन्न होती है और जैसे शरीर पर अपने आप केश और रोएँ उत्पन्न होते हैं वैसे ही बिना आयास के ब्रह्म से सृष्टि का आदि और अवसान ब्रह्म में ही निहित है। महादेवी की विचारधार अद्वैतवाद पर आधारित है अतः वे निर्गुण ब्रह्म की आराधिका हैं परन्तु उनमें कट्टरवादिता नहीं है। उन्होंने निर्गुण और सगुण के भेद को गौण कर दिया है। प्रियतम के रूप में उनका ब्रह्म गुणों से विभूषित हो जाता है। उदाहरणार्थ-

1. उनमें अनन्त करुणा है इसमें असीम सूनापन।

2. मैं मतवाली इधर उधर प्रिय मेरा अलबेला सा है।

3. करुणामय को भाता है तम के परदे में आना।

4. वे ब्रह्म की सत्ता कण-कण में व्याप्त देखती हैं इस तरह उन्हें सर्वात्मवादी भी कहा जा सकता है।

महादेवी इस असीम से रागात्मक संबंध स्थापित करती है। इस असीम की सत्ता अव्यक्त होते हुए भी जगत, और उसके क्रियाकलापों में व्यक्त भी होती है। उनके अनुसार "जीवन का यह असीम और चिरंतन सत्य जो परिवर्तन की लहरों में अपनी क्षणिक अभिव्यक्ति करता रहता है। अपने व्यक्त और अव्यक्त दोनों की रूपों में एकता लेकर साहित्य में व्यक्त होता है।" महादेवी कवयित्री के साथ ही साथ तत्व चिंतक भी हैं। परन्तु उनका चिन्तन शुष्क न होकर अनुभूतियों ये युक्त होकर काव्यमय बन गया है यह विराट चेतन अत्यन्त मनमोहक तथा करुणामय है। यह स्वप्नलोक की सृष्टि करता है और चुपचाप आकर मुरली की तान सुना जाता है-

मूक प्रणय से मधुर व्यथा से

स्वप्न लोक के से आन

वे आये चुपचाप सुनाने

तब मधुमय मुरली की तान

11.4.4. सृष्टि

यह सृष्टि ब्रह्म की ही अभिव्यक्ति है। पहले केवल ब्रह्म की ही सत्ता थी। एकाकी ब्रह्म का मन न रमा अतः उसने सोचा कि मैं एक से अनेक को जाऊँ, सृष्टि करूँ। ब्रह्म की इसी अनादि वासना के फलस्वरूप सृष्टि की रचना संभव हुई। महादेवी इस पर आश्चर्य व्यक्त करते हुए कहती हैं-

स्वर्णलता सी कब सुकुमार,

हुई उसमें इच्छा साकार

उगल जिसने तिन रंगे तार

बुन लिया अपना ही संसार।

सृष्टि का निर्माण करके स्वयं ब्रह्म भी इस भौतिक में व्याप्त हो गया। चिन्तकों ने इस संसार को कारागार कहा है। निराला कहते हैं गहन है यह अंध कारा। महादेवी कहती हैं कि जगत प्राणियों के लिये ही नहीं स्वयं परमात्मा के लिये भी कारागार है।

11.4.5. जीवात्मा

मूलतः आत्मा और परमात्मा एक है। आत्मा परमात्मा का ही व्यक्त रूप है। यही आत्मा जब देह धारण कर संसार में आती है तो परमात्मा से उसकी दूरी हो जाती है परमात्मा से अभिन्न रहकर भी वह उससे भिन्न दिखायी पड़ती है। इसी को जीवात्मा कहते हैं सृष्टि में आकर यही जीवात्मा परमात्मा से विरह का अनुभव करती है। परमात्मा अलौकिक, असीम, अनश्वर तथा विराट है तो जीवात्मा लौकिक, ससीम, नश्वर तथा लघु-क्षुद्र है मेरे बुद बुद्ध प्राण।

तुम्ही में सृष्टि, तुम्हीं में नाश।

11.4.6. माया

अद्वैत्तवादियों के अनुसार परमात्मा की मूल शक्ति माया है। महादेवी ने माया को जगत की सृष्टि का मूल कारण, ब्रह्म का आवरण तथा जीवात्मा का बंधन बताया है। इसी 'माया' के द्वारा ब्रह्म जगत की सृष्टि करता है। जगत के नाना रूप भेद माया के ही कारण हैं या यही माया जीवात्मा में यह बोध कराती है कि वह परमात्मा से भिन्न है। माया एक आवरण की तरह परमात्मा और जीवात्मा के बीच विद्यमान रहती है इसी कारण जीवात्मा अपने मूल रूप को भूलकर संसार के मोहक, रंगीले तथा सजीले रूपों में उलझकर रह जाती है। जीव में पृथकता का बोध होता है। इसी पृथकता बोध के कारण राग-द्वेष लालसा, कामना, आशा-निराशा के भाव जगाते हैं। माया से मुक्त होते ही स्थिति बदल जाती है। महादेवी इसे दर्पण के रूपक के द्वारा बहुत अच्छी तरह अभिव्यक्त करती हैं। जिस प्रकार दर्पण के कारण एक ही व्यक्ति के अनेक रूप दिखायी पड़ते हैं उसी प्रकार माया के कारण एक ही ब्रह्म पृथक-पृथक रूपों में दिखायी पड़ता है। माया रूपी दर्पण के टूट जाने पर पुनः अभिन्नता का भाव आ जाता है-

टूट गया वह दर्पण निर्मम।

अपने दो आकार बनाने,

दोनों का अभिसार दिखाने

भूलो का संसार बसाने
जो झिलमिल झिलमिल सा तुमने
हँस-हँस दे डाला था निरूपम !
आज कहाँ मेरा अपनापन
तेरे छिपने को अवगुण ठन
मेरे बंधन तेरा साधन,
तुम मुझमें अपना सुख देखो
मैं तुममें अपना दुःख प्रियतम !

महादेवी माया के उन रूपों की चर्चा करती हैं जिनका वर्णन अद्वैत दर्शन में है परन्तु वे उसे लौकिक आधार प्रदान करती हैं ये अद्वैतवादियों की भाँति माया की निन्दा नहीं करती वरन् उसके प्रभाव का अंकन करती हैं।

11.4.7. मुक्ति

संसार के नाना जन्मों के बंधन से मुक्ति पा जाना ही मोक्ष हैं। महादेवी के रहस्यवादी चिन्तन की खास विशेषता है कि वे अपने अहं की रक्षा करती हैं- अपने व्यक्तित्व का विलय नहीं करना चाहती। उनका यह अभिमान देखने योग्य है ये कहती हैं-

सजनि मधुर निजत्व दे
कैसे मिलूँ अभिमानिनी मैं।

ये गर्व से अपने व्यक्तित्व की घोषणा करती हैं-

उनसे कैसे छोटा है,
मेरा यह भिक्षुक जीवन
उसमें अनन्त करुणा है.
इसमें अनन्त सूनापन।

वस्तुतः मुक्ति एक अनुभूति है जिसे जीवन रहते ही प्राप्त किया जा सकता है। सात्विकता के उदय से जब जीवात्मा मनोविकारों से छुटकारा पा लेती है तो परमात्मा से एकता की अनुभूति होती है। इसे ही मुक्ति कहते हैं। ज्ञान तथा जीवनमुक्त योग के द्वारा जीवन में ऐसी मुक्ति संभव है। यह मानवता के लिए बहुत बड़ा संदेश है। महादेवी ने इस मुक्ति को स्वीकार किया है।

11.4.8. रहस्यवाद के सोपान

रहस्यवाद आत्मा और परमात्मा के मिलन का साधन है पर आत्मा परमात्मा से एकदम नहीं मिल पाती. परमात्मा तक पहुँचाने के लिए उसे विविध सोपानों को पार करना पड़ता है। प्रेममार्गी कवियों ने इन्हें बसेरे कहा है। महादेवी के रहस्यवाद में भी विविध सोपानों का उल्लेख मिलता है। जब आत्मा किसी अदृश्य, अज्ञात एवं विराट

सत्ता के प्रति कुतूहल तथा जिज्ञासा के भावों से आवेष्टित रहती है, तो यह रहस्यवाद का प्रथम सोपान कहलाता है। महादेवी की 'नीहार कृति उनकी इसी अवस्था की द्योतक है। इस सम्बन्ध में कवयित्री ने स्वयं कहा है- नीहार के रचना काल में मेरी अनुभूतियों में वैसी ही कौतूहल- मिश्रित वेदना उमड़ आती थी, जैसी बालक के मन में दूर दिखाई देने वाली अप्राप्य सुनहली उषा और स्पर्श से दूर सजल मेघ के प्रथम दर्शन से उत्पन्न हो जाती है। इससे स्पष्ट है कि कवयित्री की आत्मा को ब्रह्म का आभास तो हो चुका था। पर वह उसके समूचे रूप को भली प्रकार नहीं जान पाई थी। उनके मन में ब्रह्म की सत्ता का ज्ञान जिज्ञासा से भरा हुआ था-

दुलखते आँसू-सा सुकुमार बिखरते सपनों सा अज्ञात,

चुराकर अराणा का सिन्दूर मुस्कराया जब मेरा गात

छिपाकर लाली में चुपचाप सुनहला प्याला लाया कौन?"

प्रथम सोपान को पार करके जब आत्मा दूसरे सोपान में प्रवेश करती है तो उसे समूची प्रकृति में परमात्मा की सत्ता परिलक्षित होने लगती है। इस सोपान को सर्ववाद की स्थिति भी कहा जा सकता है, क्योंकि इस स्थिति में आकर आत्मा प्रकृति के प्रत्येक कण में परमात्मा की सत्ता की अनुभूति करने लगती है। रवि, शशि, चपला, तारे आदि सभी में उसे परम सत्ता दिखाई देने लगती है। महादेवी की निम्नलिखित पंक्तियों में आत्मा की इसी स्थिति का वर्णन है-

रवि शशि तेरे अवतंस लोल

सीमंत जटित तारक अमोल

चपला विभ्रम स्मित इन्द्रधनुष

हिमकण बन झरते स्वेद-निकर

प्रकृति के माध्यम से कवयित्री को परम सत्ता का संदेश भी मिलता है-

सिहर सिहर उठता सरिता उर

खुल-खुल पडते सुमन सुधा पर

मचल मचल आते पल फिर-फिर

सुन प्रिय की पदचाप हो गई पुलकित यह अवनी !"

दूसरे सोपान के पश्चात् आत्मा परमात्मा से अपना सम्बन्ध जोड़ने का प्रयत्न करती है। वह उस परम सत्ता से नित नये सम्बन्ध जोड़ने लगती है। महादेवी ने उसे प्रियतम के रूप में ग्रहण किया है जिसके कारण के स्वयं को 'अमर सुहाग भरी मानती हैं-

सखि। मैं हूँ अमर सुहाग भरी

प्रिय के अनन्त अनुराग भरी!'

तीन सोपानों को पार करने के पश्चात आत्मा प्रियतम या परम सत्ता के इतने निकट आ जाती है कि वह स्वयं को अपना मूल्यांकन करने में समर्थ समझने लगती है। महादेवी अपने प्रिय की अपार सुन्दरता का वर्णन इन शब्दों में करती हैं-

तेरी आमा का कण नम को

देता अगणित दीपक दान

दिन को कनक- रश्मि पहनाता

विधु को चाँदी का परिधान !

कवयित्री अपने प्रियतम के सम्पूर्ण रूप से परिचित हो चुकी है। उसकी धारणा है कि समूची प्रकृति में बिखरा हुआ अपार सौन्दर्य उसके प्रियतम की आभा का ही प्रतिबिम्ब है, उस असीम सौन्दर्यागार के समक्ष आत्मा का सौन्दर्य अमित छवि की तुलना में एक लघु तारे के समान है-

तुम असीम विस्तार ज्योति के मैं तारक सुकुमार,

तेरी रेखा-रूप हीनता है जिसमें साकार

पंचम सोपान में पहुँचकर आत्मा परम सत्ता के प्रति बिरहानुभूति करने लगती है और उसके विरह में निरन्तर व्यथित रहती है। इसी दशा में आने से आत्मा और परमात्मा के समस्त व्यवधान समाप्त होते हैं तथा वे दोनों एकाकार जो जाते हैं। महादेवी अपनी विरह व्यथा का वर्णन करती हुई कहती हैं-

इन ललचाई आँखों पर पहरा जब था ब्रीडा का

साम्राज्य मुझे दे डाला उस चितवन ने पीड़ा का उस सोने के सपने को देखे कितने युग बीते

आँखों के कोष हुए है मोती बरसाकर रीते।

और अपने प्रियतम के साथ अपनी एकाकारता का वर्णन वे इन शब्दों में करती हैं-

प्रिय मुझी में खो गया अब दूत को किस देश भेजूँ?

X X X

तुम मुझमें प्रिय फिर परिचय क्या?"

X X X

बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ।"

इस विवेचन से स्पष्ट है कि महादेवी के रहस्यवाद में विविध सोपानों का पूर्ण उल्लेख मिलता है। महादेवी के रहस्यवाद का विश्लेषण करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा- 'छायावादी कहे जाने वाले कवियों में महादेवी ही रहस्यवाद के भीतर रही है। आचार्य शुक्ल का यह मंतव्य निर्भ्रान्त है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं।

11.5. सारांश

महादेवी वर्मा की कविताओं का केन्द्र बिन्दु दुःख है। उनमें जीवन, प्रेम और सौन्दर्य के लिए विश्वल आकांक्षा है। वह मार्ग की कठिनाइयों से विचलित नहीं होती बल्कि उनसे टकराने की प्रवृत्ति उनमें दिखाई देती है। यह विरहानुभूति निराशाजन्य नहीं वरन् आशा से पूर्ण है। उनके अनुसार मात्र आँसू कुछ नहीं कर सकते। आँसू तभी सार्थक हैं जब कुछ करने की प्रेरणा मन में हो आग हो उर में तभी आँख में सजेगा आज पानी। निराशावाद की अंधेरी

रात में जीवन प्रभात की चाह महादेवी की रचनाओं में बार-बार दीप्त हो उठती है और जितना ही यह अंधेरा घना होता है, उतनी ही यह चाह और भी तीव्र हो जाती है। महादेवी वर्मा की रहस्य भावना की प्रमुख विशेषताएं हैं- मनुष्य का प्रकृति से तादात्म्य, प्रकृति पर चेतना का आरोप, प्रकृति की समष्टि में रहस्यानुभूति असीम की अनन्त सत्ता में मधुर व्यक्तित्व का आरोपन करके उसके प्रति समर्पण, सार्वभौमिक करूणा आदि का तत्व चिन्तन आत्मा को परमात्मा से मिलने के लिए जिन विविध सोपानों को पार करना पड़ता है वे सभी इनके काव्य में उपलब्ध हैं।

11.6. बोध प्रश्न

1.महादेवी की रहस्यभावना पर प्रकाश डालिए।

2. महादेवी के काव्य में रहस्यवाद के अन्तर्गत ब्रह्म के स्वरूप को स्पष्ट करें।

3. महादेवी के काव्य में प्रकृति पर लेख लिखें।

11.7. सहायक ग्रंथ

1. कवि निराला- नंददुलारे वाजपेयी- मैरूमिलन, दिल्ली।

2. क्रांतिकारी कवि निराला- बच्चन सिंह- विश्वविद्यालय, वारणासी।

3. प्रसाद का काव्य- प्रेमशंकर- भारती अण्डारख प्रयाग।

4. सुमित्रानंदन पंत-नगेन्द्र- नेशनल।

5. कवि पंत और उनकी छायावादी रचनाएँ- प्रो. पी. ए. राव, प्रगति प्रकाशन, आगरा।

6. हिंदी साहित्य- 20वीं शताब्दीः आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी।

7. छायावादः पुनर्मूल्यांकनः सुमित्रानन्दन पन्त।

8.छायावाद युगः शंभुनाथ सिंह, सरस्वती मंदिर, वाराणसी; 1962 छायावाद के गौरव चिह्नः प्रो. क्षेमेन्द्र।

9. छायावादी कवियों का सौन्दर्य विधानः डॉ. सूर्यप्रसाद दीक्षित।

10. छायावादः राजेश्वरदयाल सक्सेना।

11. छायावादी काव्यः डॉ. कृष्ण चन्द्र वर्मा; मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, म.प्र.।

12. नवजागरण और छायावादः महेन्द्र नाथ राम, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली।

डॉ. सूर्य कुमारी. पी.

405HN21

Model paper - 1

PAPER-V: SPECIAL STUDY - CHAYAVAD

विशेष अध्ययन: छायावाद

किन्हीं पाँच प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

सभी प्रश्नों के अंक समान है।

Time: 3Hours **Max-70 Marks**

1) सप्रसंग व्याख्या कीजिए। (5x14=70)

A (i) निकल रही थी मर्म वेदना करुणा विकल कहानी थी,
वहाँ अकेली प्रकृति सुन रही, हँसती-सी पहचानी सी।

(अथवा)

(ii) मधुमय बसंत जीवन - वन के, वह अंतरिक्ष की लहरों में,
कब आये थे तुम चुपके से राजनी के पिछले पटरों में?

B (i) 'थे अश्रु राम के' आते ही मन में विचार,
उद्वेग हो उठा शक्ति - खेल - सागर अपार,
हो प्रवसित पवन उनचास पिता पक्ष से तुमुल
एकत्र वक्ष पर बहा वाष्प को उड़ा अतुल,
शत पूर्णवत, तरंग - भंग उठते पहाड़
जन राशि - राशिजल पर चढ़ता खता पछाड

(अथवा)

(ii) क्रम-क्रम से हुए पार राघव के पञ्च दिवस,
चक्र से चक्र मन चढ़ता गया ऊर्ध्व निरलस
कर जप पूजा कर एक चढ़ाते इन्दीवर
निज पुरखरण इस भाँति रहे हैं पूरा करें।

C. (i) एक थे नकाब

फ़ारस के माँगाऐ थे गुलाब

बड़ी बाड़ी में लगाए

रखे माली कई नौकर

गजननी का बाग मनहर

लग रहा था।

(अथवा)

(ii) कुकुरमुत्ता अब नहीं रहा है, अर्ज हो मंजूर,

रहे हैं अब सिर्फ गुलाब

गुस्सा आया, काँपने लगे नव्वाबा।

बोले, चल गुलाब जहाँ थे, डगा,

D. (i) देखा विवाह आमूल नवल,

तुझ पर शुभ पड़ा कलश का जल,

देखती मुझे तू हँसी मंद

होंगें में बिजली फँसी स्पंद

उर में भर झूली छवि सुंदर

(अथवा)

(ii) सासु ने कहा लख एक दिवस-

भैया अब नहीं हमारा बस,

पालना - पोसना रहा काम,

देना 'सरोज' को धन्य-धाम,

शुचि वर के कर, कुलीन लखकर।

2) छायावाद - पृष्ठभूमि का परिचय देते हुए विभिन्न विद्वानों द्वारा दिए गये छायावाद की परिभाषाओं पर प्रकाश डालिए।

(अथवा)

छायावाद की अन्तर्वस्तु पर प्रकाश डालते हुए छायावाद का रचना - विधान को बताइए।

3) कामायनी में दर्शाया गया दर्शन के बारे में विस्तृत चर्चा कीजिए।

(या)

प्रकृति के बेजोड़ कवि पंत - यह उक्ति कहा तक सही है ?

4) कविवर निराला का व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डालिए।

(या)

महादेवी वर्मा ने अपने साहित्य में आम आदमी का चित्रण किस रूप में किया है ?

5) किन्हीं दो पर टिप्पणि लिखिए।

a) कामायनी इड़ा सर्ग की विशेषता

b) कुकुरमुत्ता कविता संग्रह का महत्व

c) पंत की काव्य यात्रा

d) महादेवी वर्मा का साहित्य - परिचय

(अथवा)

a) निराला का प्रकृति-चित्रण

b) कामायनी - समरसता भाव-दर्शन

c) छायावाद युग

d) महादेवी वर्मा के गद्य साहित्य की विशेषताएँ

****